

[सर्वाधिकार सुरक्षित—प्रबन्ध-संपादक के लिए]

वक्तृत्वकला के बीज

भाग ६

समन्वय-प्रकाशन

सम्पादन-सहयोग

स्व० श्री लालचंदजी बैद (भादरा)

प्रबन्ध-सम्पादक

मोतीलाल पारख

प्रकाशक .

वेगराज भंवरलाल चौरडिया—चैरिटेब्लुट्रिस्ट्स

५, सीनागोग स्ट्रीट, कलकत्ता १

संस्करण :

वि० स० २०३० चैत्र सुदि १

महावीर जयती

अप्रैल १९७३

२१०० प्रतिया

Rs 7 - 00

मुद्रक

संजय साहित्य मगम, आगरा-२ के लिए—

रामनारायन मेडतवाल

श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस

— श्री लाल चंदजी भादरा — २ ।

मूल्य :

चार रुपया पचास पैसे

प्राप्तिकेन्द्र :

- ◆ श्री वेगराज भेंवरलाल चोरड़िया—
चेरिटेवल ट्रस्ट,
५, सीनागोग स्ट्रीट
कलकत्ता-१

- ◆ श्री मोतीलाल पारख
C/o दि अहमदाबाद लक्ष्मी कादन मिलस, कं० लि०
पो० बा० नं० ४२
अहमदाबाद-२२

- ◆ श्री सम्पतराय वोरड़
C/o मदनचद सपतराय वोरड़
४०, धानमंडी,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

प्राक्कथन

मानव-जीवन में वाचा की उपलब्धि एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। हमारे प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में वाचा ही सरस्वती का अधिष्ठाता है, वाचा सरस्वती भिषग्^१—वाचा ज्ञान की अधिष्ठात्री होने से स्वयं सरस्वती-रूप है, और समाज के विकृत आचार-विचाररूप रोगों को दूर करने के कारण यह कुशल वैद्य भी है।

अन्तर के भावों को एक दूसरे तक पहुँचाने का एक बहुत बड़ा माध्यम वाचा ही है। यदि मानव के पास वाचा न होती तो, उसकी क्या दशा होती? क्या वह भी भूकपशुओं की तरह भीतर-ही-भीतर घुटकर समाप्त नहीं हो जाता? मनुष्य जो गूँगा होता है, वह अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए कितने हाथ-पैर मारता है, कितना छटपटाता है, फिर भी अपना सही आशय कहा समझा पाता है दूसरों को?

बोलना वाचा का एक गुण है, किंतु बोलना एक अलग चीज है, और वक्ता होना वस्तुतः एक अलग चीज है। बोलने को हर कोई बोलता है, पर वह कोई कला नहीं है, किंतु वक्तृत्व एक कला है। वक्ता साधारण से विषय को भी कितने सुन्दर और मनोहारी रूप से प्रस्तुत करता है कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। वक्ता के बोल श्रोता के हृदय में ऐसे उतर जाते हैं कि वह उन्हें जीवन भर नहीं भूलता।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण, भगवान्महावीर, तयागतबुद्ध, व्यास और भद्रबाहु आदि भारतीय प्रवचन-परम्परा के ऐसे महान् प्रवक्ता थे, जिनकी वाणी का

नाद आज भी हजारो-लाखो लोगो के हृदयो को आप्यायित कर रहा है । महाकाल की तूफानी हवाओ मे भी उनकी वाणी की दिव्य ज्योति न बुझी है और न बुझेगी ।

हर कोई वाचा का धारक, वाचा का स्वामी नहीं बन सकता । वाचा का स्वामी ही वाग्मी या वक्ता कहलाता है । वक्ता होने के लिए ज्ञान एव अनुभव का आयाम बहुत ही विस्तृत होना चाहिए । विशाल अध्ययन, मनन चिंतन एव अनुभव का परिपाक वाणी को तेजस्वी एव चिरस्थायी बनाता है । बिना अध्ययन और विषय की व्यापक जानकारी के भाषण केवल भ्रमण (भोकना) मात्र रह जाता है, वक्ता कितना ही चीखे-चिल्लाये, उछले-कूदे, यदि प्रस्तावित विषय पर उसका सक्षम अधिकार नहीं है, तो वह सभा में हास्यास्पद हो जाता है, उसके व्यक्तित्व की गरिमा लुप्त हो जाती है । इसलिए बहुत प्राचीनयुग में एक ऋषि ने कहा था—'वक्ता शतसहस्रेषु', अर्थात् लाखो में कोई एक वक्ता होता है ।

शतावधानी मुनिश्री धनराजजी जैनजगत् के यशस्वी प्रवक्ता है । उनका प्रवचन, वस्तुतः प्रवचन होता है । श्रोताओ को अपने प्रस्तावित विषय पर केन्द्रित एव मन्त्रमुग्ध कर देना उनका सहज कर्म है । और यह उनका वक्तृत्व—एक बहुत बड़े व्यापक एव गभीर अध्ययन पर आधारित है । उनका मन्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओ का ज्ञान विस्तृत है, साथ ही तलस्पर्शी भी । मालूम होता है, उन्होंने पांडित्य को केवल छुआ भर नहीं है, किन्तु नमप्रशक्ति के साथ उसे गहराई से अधिग्रहण किया है । उनकी प्रस्तुत पुस्तक 'वक्तृत्वकला के बीज' में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

प्रस्तुत कृति में जैन आगम, बौद्धवाङ्मय, वेदों से लेकर उपनिषद् ब्राह्मण पुराण, स्मृति आदि वैदिक साहित्य तथा लोककथानक, कहावतों, रूपक, ऐतिहासिक घटनाएँ, ज्ञान-विज्ञान की उपयोगी चर्चाएँ—इस प्रकार शृ खला-वद्रूप में संकलित हैं कि किन्नी भी विषय पर हम बहुत कुछ विचार-नानयी प्राप्त कर सकते हैं । नचमुच वक्तृत्वकला के अगणित बीज इसमें नन्निहित हैं । नृनिनयो का तो एक प्रकार से यह रत्नाकर ही है । अग्रजी

साहित्य व अन्य धर्मग्रंथों के उद्धरण भी काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रसंग आरंभ स्थल तो ऐसे हैं, जो केवल सूक्ति और सुभाषित ही नहीं हैं, उनमें विषय की तलस्पर्शी गहराई भी है और उसपर से कोई भी अध्येता अपने ज्ञान के आयाम को और अधिक व्यापक बना सकता है। लगता है, जैसे मुनिश्री जो वाङ्मय के रूप में विराट् पुरुष हो गए हैं। जहाँ पर भी दृष्टि पड़ती है, कोई-न-कोई वचन ऐसा मिल ही जाता है, जो हृदय को छू जाता है और यदि प्रवक्ता प्रसंगत अपने भाषण में उपयोग करे, तो अवश्य ही श्रोताओं के मस्तक झूम उठेंगे।

प्रश्न हो सकता है—'वक्तृत्वकला के बीज' में मुनिश्री का अपना क्या है? यह एक सग्रह है और सग्रह केवल पुरानी निधि होती है, परन्तु मैं कहूँगा—कि फूलों की माला का निर्माता माली जब विभिन्न जाति एवं विभिन्न रंगों के मोहक पुष्पों की माला बनाता है तो उसमें उसका अपना क्या है? बिखरे फूल, फूल हैं, माला नहीं। माला का अपना एक अलग ही विलक्षण सौन्दर्य है। रंग-विरंगे फूलों का उपयुक्त चुनाव करना और उनका कलात्मक रूप में संयोजन करना—यही तो मालाकार का काम है, जो स्वयं में एक विलक्षण एवं विशिष्ट कलाकर्म है। मुनिश्री जी वक्तृत्वकला के बीज में ऐसे ही विलक्षण मालाकार हैं। विषयों का उपयुक्त चयन एवं तत्सम्बन्धित सूक्तियों आदि का सकलन इतना शानदार हुआ है कि इस प्रकार का सकलन अन्यत्र इस रूप में नहीं देखा गया।

एक बात और—श्री चन्दनमुनिजी की संस्कृत-प्राकृत रचनाओं ने मुझे यथावसर काफी प्रभावित किया है। मैं उनकी विद्वत्ता का प्रशंसक रहा हूँ। श्री धनमुनि जी उनके बड़े भाई हैं—जब यह मुझे ज्ञात हुआ तो मेरे हर्ष की सीमाओं का और भी अधिक विस्तार हो गया। अब कैसे कहूँ कि इन दोनों में कौन बड़ा है और कौन छोटा? अच्छा यही होगा कि एक को दूसरे में उपमित कर दूँ। उनकी बहुश्रुतता एवं इनकी सग्रह-कुशलता से मेरा मन मुग्ध हो गया है।

मैं मुनिश्री जी, और उनकी इस महत्वपूर्णकृति का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ । विभिन्न भागों में प्रकाशित होनेवाली इस विराट् कृति से प्रवचनकार लेखक एव स्वाध्यायप्रेमीजन मुनि श्री के लिए ऋणी रहेंगे । वे जब भी चाहेंगे, वक्तृत्वकला के बीज में से उन्हें कुछ मिलेगा ही, वे रिक्तहस्त नहीं रहेंगे—ऐसा मेरा विश्वास है ।

प्रवक्तृ-समाज—मुनिश्रीजी का एतदर्थ आभारी है और आभारी रहेगा ।

जैन भवन
आश्विन शुक्ला-३
आगरा

—उपाध्याय अमरमुनि



मंगल-संदेश

मनुष्य विभिन्न शक्तियों का स्रोत है। नहीं, वह अनन्तशक्तियों का स्रोत है।

पर, जिन-जिन शक्तियों को अभिव्यक्त होने का समय और साधन मिल पाता है वही हमारे सामने विकसित रूप से प्रगट होती है, शेष अनभिव्यक्त रूप में अपना काम करती रहती हैं।

संग्राहक शक्ति भी उन्हीं में से एक है, जो अन्वेषण-प्रधान है और दूसरों के लिए बहुत उपयोगी बन जाती है।

मखन का आस्वादन करना एक बात है, पर उसे दही में से मयकर निकालकर सग्रहीत करना एक विशिष्ट शक्ति है।

मुनि श्री घनराजजी (सिरसा) में यह शक्ति अच्छी विकसित हुई है। शुरू से ही उनकी यह धुन रही है, आदत रही है, वे बराबर किसी न किसी रूप में खोज करते रहते हैं और फिर उसको सग्रहीत कर एक आकार दे देते हैं। वह साहित्य बन जाता है, जन-जन को खुराक बन जाता है।

“वक्तृत्वकला के बीज” एक ऐसी ही कृति हमारे समक्ष प्रस्तुत है जो मुनि घनराजजी की संग्राहकशक्ति का एक विशिष्ट उदाहरण है। उसमें प्राचीन, अर्वाचीन अनेक ग्रन्थों का मन्थन है, अनेक भाषाओं का प्रयोग है। मूल उद्धरण के साथ हिन्दी अनुवाद देकर और सरसता उसमें लाई गई है। बड़ा सुन्दर प्रयास है। अपनी वक्तृत्वकला का विकास चाहनेवाले वक्ता के लिए बहुत उपयोगी है यह ग्रन्थ, जो अनेक भागों में विभक्त है। मेरा विश्वास है—मह प्रयत्न बहुजन हिताय—बहुजन सुखाय सिद्ध होगा।

पुरु

—आचार्य तुलसी

प्रस्तावना

वक्तृत्वगुण एक कला है, और वह बहुत बड़ी साधना की अपेक्षा करता है। आगम का ज्ञान, लोकव्यवहार का ज्ञान, लोकमानस का ज्ञान और समय एवं परिस्थितियों का ज्ञान तथा इन सबके साथ निस्पृहता, निर्भयता, स्वर की मधुरता, ओजस्विता आदि गुणों की साधना एवं विकास से ही वक्तृत्वकला का विकास हो सकता है, और ऐसे वक्ता वस्तुतः हजारों लाखों में कोई एकाध ही मिलते हैं।

तेरापथ के अधिशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी में वक्तृत्वकला के ये विशिष्ट गुण चमत्कारी ढंग से विकसित हुए हैं। उनकी वाणी का जादू श्रोताओं के मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर देता है। भारतवर्ष की सुदीर्घ पदयात्राओं के मध्य लाखों नर-नारियों ने उनकी ओजस्विनी वाणी सुनी है और उनके मधुर प्रभाव को जीवन में अनुभव किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मुनिश्री धनराजजी भी वास्तव में वक्तृत्वकला के महान गुणों के धनी एक कुशल प्रवक्ता सत हैं। वे कवि भी हैं, गायक भी हैं, और तेरापथ शासन में सर्वप्रथम अवधानकार भी हैं, इन सबके साथ-साथ बहुत बड़े विद्वान् तो हैं ही। उनके प्रवचन जहाँ भी होते हैं, श्रोताओं की अपार भीड़ उमड़ आती है। आपके विहार करने के बाद भी श्रोता आपको याद करते रहते हैं।

आपकी भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वक्तृत्वकला का विकास करे और उसका सदुपयोग करे, अतः जनसमाज के लाभार्थ आपने वक्तृत्व के योग्य विभिन्न सामग्रियों का यह विशाल संग्रह प्रस्तुत किया है।

वहुत समय से जनता की विद्वानों की और वक्तृत्वकला के अम्यासियों की मांग थी कि इस दुर्लभ सामग्री का जनहिताय प्रकाशन किया जाय तो बहुत लोगों को लाभ मिलेगा। जनता की भावना के अनुसार हमने मुनिश्री की इस सामग्री को धारना प्रारंभ किया। इस कार्य को सम्पन्न करने में श्री डूंगरगढ़, मोमासर, भादरा, हिसार, टोहाना, उकलाना, कैथल, हासी, भिवानी, तोसाम, ऊमरा, सिसाय, जमालपुर, सिरसा और भटिंडा आदि के विद्यार्थियों एवं युवकों ने अथक परिश्रम किया है। फलस्वरूप लगभग मौ कापियों में यह सामग्री सकलित हुई है। हम इस विशाल संग्रह को विभिन्न भागों में प्रकाशित करने का सकल्प लेकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए हैं।

परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर ने पुस्तक के लिए अपना मंगल-संदेश देकर इस प्रयत्न को प्रोत्साहित किया—उनके प्रति मैं हृदय की असीम श्रद्धा व्यक्त करता हूँ। तथा पुस्तक की महत्ता और उपयोगिता के अनुसार ही इसकी भूमिका लिखी है जैनसमाज के बहुश्रुत विद्वान् तटस्थ विचारक उपाध्याय श्री अमर-मुनि जी ने। उनके इस अनुग्रह का मैं हृदय से आभारी हूँ।

इसके प्रकाशन का समस्त भार श्री वेगराज भवरलाल जी चोरडिया, चैरिटेबल ट्रस्ट, कलकत्ता ने वहन किया है, इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। इसके प्रकाशन एवं प्रूफ सशोधन-मुद्रण आदि की समस्त व्यवस्था 'सजय-साहित्य-संगम' के संचालक श्रीचन्द जी चुराना 'सरस' ने की है, तथा अन्य महयोगियों का जो हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है—उसके लिए भी हम हृदय से कृतज्ञता-जापित करते हैं। आशा है यह पुस्तक जन-जन के लिए, वक्ताओं और लेखकों के लिए एक संदर्भग्रंथ (विन्नोपाधी) का काम देगी और युग-युग तक इसका लाभ मिलता रहेगा। ..

आ त्म नि वे द न

०

‘मनुष्य की प्रकृति का बदलना अत्यन्त कठिन है’—यह सूक्ति मेरे लिए सवा सोलह आना ठीक सावित हुई। वचन में जब मैं कलकत्ता—श्री जैनश्वेताम्बर तेरापथी-विद्यालय में पढता था, जहाँ तक याद है, मुझे जलपान के लिए प्रायः प्रति-दिन एक आना मिलता था। प्रकृति में मग्न करने की भावना अधिक थी, अतः मैं खर्च करके भी उसमें कुछ न कुछ बचा ही लेता था। इस प्रकार मेरे पास कई रुपये इकट्ठे हो गये थे और मैं उनको एक डिब्बी में रखा करता था।

विक्रम संवत् १९७६ में अचानक माताजी की मृत्यु होने से विरक्त होकर हम (पिता श्री केवलचन्द्र जी में, छोटी बहन दीपाजी और छोटे भाई चन्द्रमल जी) परमकृपालु श्रीकालुगणीजी के पास दीक्षित हो गए। यद्यपि दीक्षित होकर रुपयों-पैसों का सग्रह छोड़ दिया, फिर भी मग्नवृत्ति नहीं छूट सकी। वह धनसग्रह से हटकर ज्ञानसग्रह की ओर झुक गई। श्री कालुगणी के चरणों में हम अनेक बालक मुनि आगम-व्याकरण-काव्य-कोष आदि पढ़ रहे थे। लेकिन मेरी प्रकृति इस प्रकार की बन गई थी कि जो भी दोहा-छन्द-श्लोक-डाल-व्याख्यान-कथा आदि सुनने या पढ़ने में अच्छे लगते, मैं तत्काल उन्हें लिख लेता या सत्सार-पक्षीय पिताजी से लिखवा लेता। फलस्वरूप उपरोक्त मामगी का काफी अच्छा सग्रह हो गया। उसे देखकर अनेक मुनि विनोद की भाषा में कह दिया करते थे कि “धनू तो न्यारा में जाने की [अलग विहार करने की] तैयारी कर रहा है।” उत्तर में मैं कहा कन्ता—क्या आप गारटी दे सकते हैं कि इतने (१० या १५) साल तक आचार्य श्री हमें अपने साथ ही

रखेंगे ? क्या पता, कल ही अलग विहार करने का फरमान कर दें । व्याख्या-नादि का संग्रह होगा तो धर्मोपदेश या धर्म-प्रचार करने में सहायता मिलेगी ।

समय-ममय पर उपरोक्त साथी मुनियों का हास्य-विनोद चल ही रहा था कि वि० स० १९५६ में श्री कालुगणी ने अज्ञानक ही श्रीकेवलमुनि को अग्रगण्य बनाकर रतननगर (थेलासर) चातुर्मास करने का हुक्म दे दिया । हम दोनों भाई (मैं और चन्दन मुनि) उनके साथ थे । व्याख्यान आदि का किया हुआ संग्रह उस चातुर्मास में बहुत काम आया एवं भविष्य के लिए उत्तमोत्तम ज्ञानसंग्रह करने की भावना बलवती बनी । हम कुछ वर्ष तक पिताजी के साथ विचरते रहे । उनके दिवगत होने के पश्चात् दोनों भाई अग्रगण्य के रूप में पृथक्-पृथक् विहार करने लगे ।

विशेष प्रेरणा—एक बार मैंने 'वक्ता बनो' नाम की पुस्तक पढ़ी । उसमें वक्ता बनने के विषय में खामी अच्छी बातें बताई हुई थी । पढ़ते-पढ़ते यह पक्ति दृष्टिगोचर हुई कि "कोई भी ग्रन्थ या शास्त्र पढ़ो, उसमें जो भी बात अपने काम की लगे, उसे तत्काल लिख लो ।" इस पक्ति ने मेरी संग्रह करने की प्रवृत्ति को पूर्वापेक्षया अत्यधिक तेज बना दिया । मुझे कोई भी नई युक्ति, सूक्ति या कहानी मिलती, उसे तुरन्त लिख लेता । फिर जो उनमें विशेष उपयोगी लगती, उसे औपदेशिक भजन, स्तवन या व्याख्यान के रूप में गूँथ लेता । इस प्रवृत्ति के कारण मेरे पास अनेक भाषाओं में निबद्ध स्वरचित सँकड़ों भजन और सँकड़ों व्याख्यान इकट्ठे हो गए । फिर जैन-कथा साहित्य एवं नास्तिकसाहित्य की ओर रुचि बढी । फलस्वरूप दोनों ही विषयों पर अनेक पुस्तकों की रचना हुई । उनमें छोटी-बड़ी लगभग २० पुस्तकें तो प्रकाश में आ चुकी, शेष ३०-३२ अप्रकाशित ही हैं ।

एक बार सगृहीत-सामग्री के विषय में यह सुझाव आया कि यदि प्राचीन साहित्य को व्यवस्थित करके एक ग्रन्थ का रूप दे दिया जाए, तो यह उत्कृष्ट उपयोगी चीज बन जाए । मैंने उन सुझाव को स्वीकार किया और अपने प्राचीन-संग्रह को व्यवस्थित करने में जुट गया । लेकिन पुराने संग्रह में कौन-सी सूक्ति, श्लोक या हेतु किस ग्रन्थ या शास्त्र के हैं अथवा किस कवि,

वक्ता या लेखक के हैं—यह प्रायः लिखा हुआ नहीं था। अतः ग्रन्थों या शास्त्रों आदि की साक्षिया प्राप्त करने के लिए—इन आठ-नौ वर्षों में वेद, उपनिषद्, इतिहास, स्मृति, पुराण, कुरान, बाइबिल, जैनशास्त्र, बौद्धशास्त्र, नीतिशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, शकुनशास्त्र, दर्शन-शास्त्र, संगीत शास्त्र तथा अनेक हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती, मराठी एवं पंजाबी सूक्तिसंग्रहों का ध्यानपूर्वक यथासम्भव अध्ययन किया। उससे काफी नया संग्रह बना और प्राचीन संग्रहों को साक्षी सम्पन्न बनाने में सहायता मिली। फिर भी खेद है कि अनेक सूक्तियाँ एवं श्लोक आदि विना साक्षी के ही रह गए। प्रयत्न करने पर भी उनकी साक्षिया नहीं मिल सकी। जिन-जिन की साक्षियाँ मिली हैं, उन-उनके आगे वे लगा दी गई हैं। जिनकी साक्षियाँ उपलब्ध नहीं हो सकी, उनके आगे स्थान रिक्त छोड़ दिया गया है। कई जगह प्राचीन-संग्रहों के आधार पर केवल महाभारत, वाल्मीकिरामायण, योग-शास्त्र आदि महान् ग्रन्थों के नाममात्र लगाए हैं, अस्तु !

इस ग्रन्थ के सकलन में किमी भी मत या सम्प्रदाय विशेष का खण्डन-मण्डन करने की दृष्टि नहीं है, केवल यही दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि कौन क्या कहता है या क्या मानता है ? यद्यपि विश्व के विभिन्न देशनिवासी मनीषियों के मतों का सकलन होने से ग्रन्थ में भाषा की एकरूपता नहीं रह सकी है। कहीं प्राकृत-संस्कृत, पारसी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा है तो कहीं हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पंजाबी और बंगाली भाषा के प्रयोग हैं, फिर भी कठिन भाषाओं के श्लोक, वाक्य आदि का अर्थ हिन्दी भाषा में कर दिया गया है। दूसरे प्रकार से भी इस ग्रन्थ में भाषा की विविधता है। कई ग्रन्थों, कवियों, लेखकों एवं विचारकों ने अपने सिद्धान्त निरवयवभाषा में व्यक्त किए हैं तो कई साफ-साफ भावव्यक्त भाषा में ही बोले हैं। मुझे जिम रूप में जिमके जो विचार मिले हैं, उन्हें मैंने उसी रूप में अंकित किया है लेकिन मेरा अनुमोदन केवल निर्वचन-सिद्धान्तों के माध्यम है।

ग्रन्थ की सर्वोपयोगिता—इस ग्रन्थ में उच्चस्तरीय विद्वानों के लिए जहाँ जैन-बौद्ध आगमों के गम्भीर पद्य हैं, वेदों, उपनिषदों के अद्भुत मंत्र हैं,

स्मृति एव नीति के हृदयग्राही श्लोक हैं, वहाँ सर्वसाधारण के लिए सीधी-सादी भाषा के दोहे, छन्द, सूक्तिया, लोकोक्तिया, हेतु, दृष्टान्त एव छोटी-छोटी कहानियाँ भी हैं। अतः यह ग्रन्थ निःसंदेह हर एक व्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी मेरी मान्यता है। वक्ता, कवि और लेखक इस ग्रन्थ से विशेष लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इसके सहारे वे अपने भाषण, काव्य और लेख को ठोस, सजीव, एव हृदयग्राही बना सकेंगे एव अद्भुत विचारों का विचित्र चित्रण करके उनमें निखार ला सकेंगे, अस्तु ।

ग्रन्थ का नामकरण—इस ग्रन्थ का नाम 'वक्त्वृत्त्वकला के बीज' रखा गया है। वक्त्वृत्त्वकला की उपज के निमित्त यहाँ केवल बीज इकट्ठे किए गए हैं। बीजों का वपन किसलिए, कैसे, कब और कहा करना—यह वक्ता [बीज बोनेवाला] की भावना एव बुद्धिमत्ता पर निर्भर करेगा। फिर भी मेरी मनोकामना तो यही है कि वक्ता परमात्मपदप्राप्तिरूप फलों के लिए शास्त्रोक्तविधि से अच्छे अवसर पर उत्तम क्षेत्रों में इन बीजों का वपन करेंगे। अस्तु ।

यहाँ मैं इस बात को भी कहे बिना नहीं रह सकता कि जिन ग्रन्थों, लेखों, समाचार पत्रों एव व्यक्तियों से इस ग्रन्थ के सकलन में सहयोग मिला है—वे सभी सहायकरूप से मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेंगे ।

यह ग्रन्थ कई भागों में विभक्त है एव उनमें सैकड़ों विषयों का सकलन है। उक्त संग्रह बालोतरा मर्यादा-महोत्सव के समय मैंने आचार्यश्री तुलसी को भेंट किया। उन्होंने देखकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की एव फरमाया कि इसमें छोटी-छोटी कहानियाँ एव घटनाएँ भी लगा देनी चाहिये ताकि विशेष उपयोगी बन जाए। आचार्यश्री का आदेश स्वीकार करके इसे सक्षिप्त कहानियाँ तथा घटनाओं में सम्पन्न किया गया ।

मुनि श्री चन्दनमलजी, डू गरमलजी, नथमलजी, नगराज जी, मधुकरजी, राकेशजी, रूपचन्दजी आदि अनेक माधु एव साध्वियों ने भी इस ग्रन्थ को विशेष उपयोगी माना। वीदात्तर महोत्सव पर कई मतों का यह अनुरोध रहा कि इस संग्रह को अवश्य धरा दिया जाए !

सर्व प्रथम वि० स० २०२३ मे श्री हूंगरगढ के श्रावको ने इसे धारना शुरू किया । फिर थली, हरियाणा एव पजाव के अनेक ग्रामो-नगरो के उत्साही युवको के तीन वर्षों के अथकपरिश्रम से धारकर इसे प्रकाशन के योग्य बनाया ।

मुझे दृढ विश्वास है कि पाठकगण इसके अध्ययन, चिन्तन एव मनन से अपने बुद्धि वैभव को क्रमश बढाते जायेंगे—

वि० स० २०२७, मृगसर वदी ४
मङ्गलवार, रामामढी, (पजाव)

—धनमुनि 'प्रथम'



अनुक्रमिका

पहला कोष्ठक

पृष्ठ १ से ६३ तक

१ सज्जन (सत्पुरुष), २ सज्जनो का स्वभाव, ३ सज्जनो के स्वभाव की निश्चलता, ४ सत्सगति, ५ सत्सगति का प्रभाव, ६ दुर्जन (दुष्ट), ७ दुर्जनो का स्वभाव, ८ दुर्जनसग-परित्याग, ९ कुसगति का असर, १० कुसगति से हानि, ११ दुष्टो का मुद्यार कठिन, १२ दुर्जनो के साथ व्यवहार, १३ घूर्त-दगावाज, १४ ढोग और ढोगी, १५ सज्जन-दुर्जन का अन्तर, १६ भलाई-सज्जनता, १७ बुराई-दुर्जनता, १८ भलाई बुराई की अमरता, १९ सगति के अनुमार गुण-दोष, २० महान्पुरुष-महात्मा, २१ महापुरुषो का पराक्रम, २२ महान् पुरुषो के विषय मे विविध, २३ महापुरुषो का सम्पर्क, २४ बडा आदमी और बडप्पन, २५ उत्तमपुरुष, २६ उत्तमपुरुषो का स्वभाव, २७ अधम (नीच) पुरुष, २८ शारीरिक दोष पर आधारित अधमता, २९ धीर-पुरुष, ३० धैर्य, ३१ उतावल, ३२ तेजस्वीपुरुष, ३३ समर्थपुरुष, ३४ शूरवीर पुरुष, ३५ कायर, ३६ शूरता और कायरता, ३७ बलवान व्यक्ति ३८ अद्भुत बलिष्ठ व्यक्ति, ३९ निर्बल, ४० बल-पराक्रम, ४१ कुलीन पुरुष ।

दूसरा कोष्ठक .

पृष्ठ ६४ मे १७४ तक

१ गुण, २ गुणो का महत्त्व, ३ विभिन्न प्रकार के गुण, ४ गुणो का नाश एव प्रनाश, ५ गुणज्ञ, ६ गुणी, ७ गुणग्राहक बनो । ८ गुणग्राही के अभाव मे, ९ गुणहीन, १० गुणहीन नाम. ११ दोष, १२ स्वदोष, १३ पर-दोष, १४ गुणो मे दोष १५ दृष्टि-दोष एव उमके आश्चर्य, १६ उपकार (अहमान), १७ परोप-कार, १८ प्रत्युपकार (उपकार वा बदला), १९ कृतज्ञता और कृतज्ञ, २० परोपकारि, २१ निरुपकारि, २२ कृतघ्न, २३ उदार और उदारता, २४ दाता,

२५ दाता के उदाहरण, १६ दान, २७ दान की महिमा, २८ दान की प्रेरणा, २९ दान में विवेक, ३० दान के भेद, ३१ अभयदान, ३२ सुपात्रदान, ३३ कुपात्रदान, ३४ पात्र-कुपात्र, ३५ ज्ञानदान, ३६ कृपण, ३७ याचक, ३८ याचना ।

तीसरा कोष्ठक

पृष्ठ १७५ से २३४

१ धन, २ धन की भूख, ३ धन का प्रभाव, ४ धन का उत्पादन, ५ धन का उपयोग, ६ धन का खजाना अमेरिका में, ७ धन के विविधरूप, ८ धन की निंदनीयता, ९ अन्याय का धन, १० न्यायार्जित धन, ११ वास्तविक धन, १२ लक्ष्मी, १३ लक्ष्मी का मूल आदि, १४ लक्ष्मी की नश्वरता एव अस्थिरता, १५ लक्ष्मी का निवास, १६ लक्ष्मी के अप्रिय स्थान, १७ लक्ष्मी के विकार, १८ धनवान, १९ दुनिया के बड़े धनी, २० धनिकों की स्थिति, २१ निर्धन और निर्धनता, २२ गरीब और गरीबी, २३ गरीबी के चित्र, २४ दरिद्र, २५ दरिद्रता, २६ आय, २७ व्यय, २८ अपव्यय निषेध, २९ ऋण (कर्ज), ३० उधार, ३१ सग्रह, ३२ व्याज ।

चौथा कोष्ठक

पृष्ठ २३५ से ३१६ तक

१ आत्मा, २ आत्मा का स्वरूप, ३ आत्मा की शाश्वतता आदि, ४ आत्मा का कर्तृत्व, ५ आत्मा का दर्शन, ६ आत्मा का ज्ञान, ७ आत्मज्ञ, ८ आत्मरक्षा, ९ आत्मकरक्षक, १० आत्मसम्मान, ११ आत्मविश्वास, १२ आत्मप्राप्ति, १३ आत्मशुद्धि, १४ आत्मदमन, १५ आत्मविजय, १६ आत्मचिन्तन, १७ आत्मा की महिमा, १८ आत्मा के भेद, १९ इन्द्रिय, २० इन्द्रियों की शक्ति, २१ इन्द्रियदमन, २२ जितेन्द्रिय, २३ कान और वधिरता, २४ आँख, २५ अन्धा, २६ जिह्वा, २७ मन, २८ मन का स्वभाव, २९ मन के आश्रित बन्ध-मोक्षादि, ३० मन की मुख्यता, ३१ मन के बिना कुछ नहीं, ३२ मन शुद्धि, ३३ मन-शुद्धि दुष्कर, ३४ मन शुद्धि के अभाव में, ३५ मन की शिक्षा, ३६ मनोनिग्रह, २७ मनोनिग्रह के मार्ग, ३८ मनोनिग्रह में लाभ, ३९ मन का तार, ४० विलपावर-दृढसकल्प, ४१ मन की उपमाएँ, ४२ मन के विषय में विविध ।

चारों कोष्ठकों में कुल १५३ विषय तथा दस भागों

में लगभग १५०० विषय एव उपविषय हैं ।

संश्लेषण तालिका

[पृष्ठ सं.]

संश्लेषण तालिका

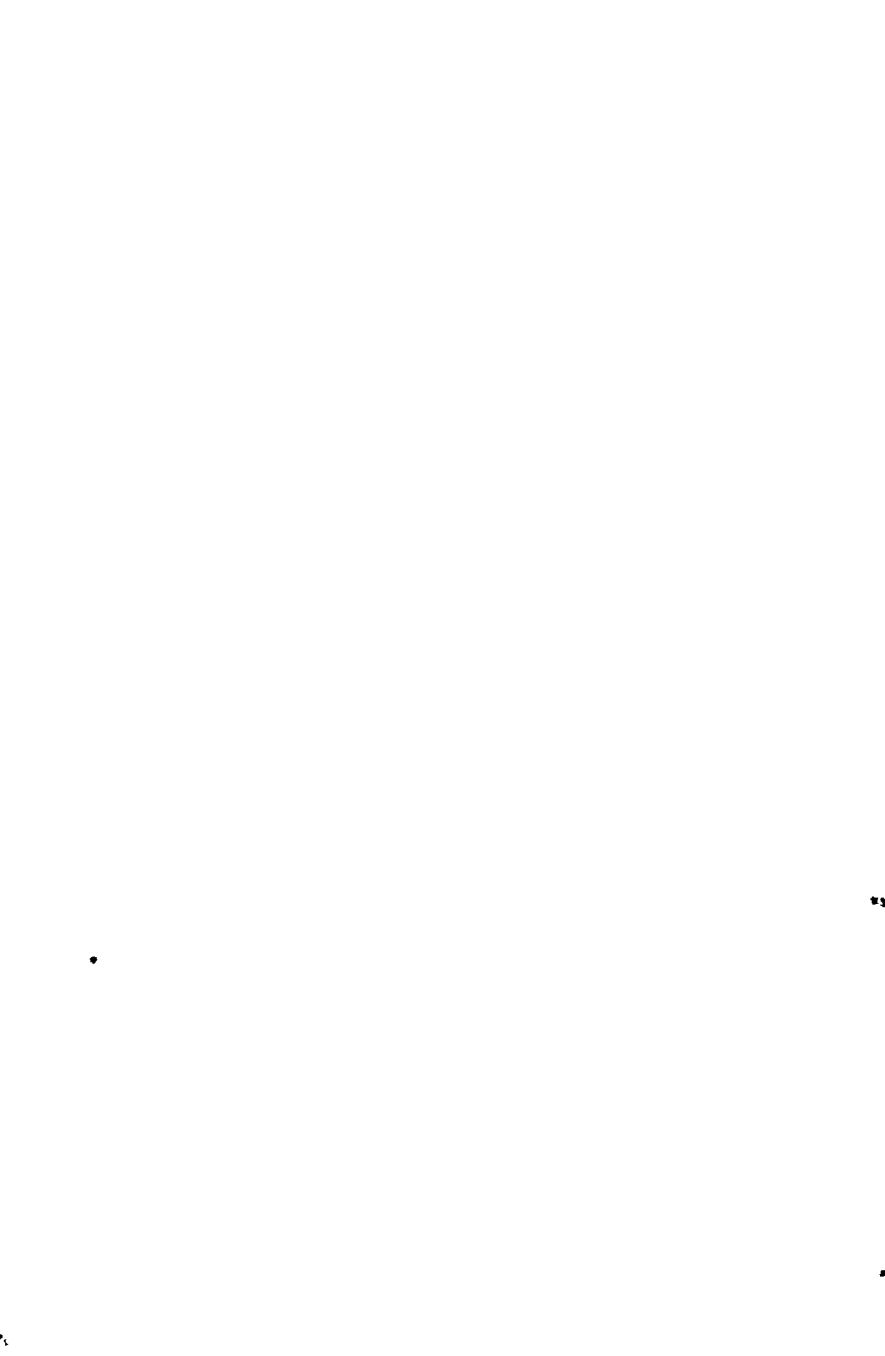
क्र. सं.	विवरण	मूल्य
१	संश्लेषण तालिका	२०००
२	संश्लेषण तालिका	२०००
३	संश्लेषण तालिका	२०००
४	संश्लेषण तालिका	२०००
५	संश्लेषण तालिका	२०००
६	संश्लेषण तालिका	२०००
७	संश्लेषण तालिका	२०००
८	संश्लेषण तालिका	२०००
९	संश्लेषण तालिका	२०००
१०	संश्लेषण तालिका	२०००
११	संश्लेषण तालिका	२०००
१२	संश्लेषण तालिका	२०००
१३	संश्लेषण तालिका	२०००
१४	संश्लेषण तालिका	२०००
१५	संश्लेषण तालिका	२०००
१६	संश्लेषण तालिका	२०००
१७	संश्लेषण तालिका	२०००
१८	संश्लेषण तालिका	२०००
१९	संश्लेषण तालिका	२०००
२०	संश्लेषण तालिका	२०००
२१	संश्लेषण तालिका	२०००
२२	संश्लेषण तालिका	२०००
२३	संश्लेषण तालिका	२०००
२४	संश्लेषण तालिका	२०००
२५	संश्लेषण तालिका	२०००
२६	संश्लेषण तालिका	२०००
२७	संश्लेषण तालिका	२०००
२८	संश्लेषण तालिका	२०००
२९	संश्लेषण तालिका	२०००
३०	संश्लेषण तालिका	२०००

गरीबी के चित्र	२१७	दुर्जनो का स्वभाव	१८
गुण	६४	दुर्जनो के साथ व्यवहार	२६
गुणग्राहक बनो ।	१०६	दुर्जन सग परित्याग	२२
गुणग्राही के अभाव मे	१११	दुनियाँ के बडे घनी	२१०
गुणहीन	११२	दुष्टो का सुधार कठिन	२७
गुणशून्य नाम	११४	दोष	११६
गुणज्ञ	१०३	घन	१७५
गुणी	१०४	घन का खजाना (अमेरिका मे)	१८३
गुणो का नाश एवं प्रकाश	१०२	घन का उत्पादन	१८०
गुणो का महत्व	६६	घन का उपयोग	१८१
गुणो मे दोष	१२३	घन की निन्दनीयता	१६१
जितेन्द्रिय	२७८	घन का प्रभाव	१७८
जिह्वा	२८५	घन की भूख	१७६
डोग और डोगी	३३	घनवान	२०८
तेजस्वी पुरुष	७५	घन के विविधरूप	१८४
दरिद्र	२१६	घनिको की स्थिति	२१२
दरिद्रता	२२१	धीरपुरुष	६८
दाता	१३६	धूर्त-दगाबाज	३१
दाता के उदाहरण	१४२	धैर्य	७०
दान	१४३	न्यायाजित घन	१६५
दान की प्रेरणा	१४६	निर्धन और निर्धनता	२१३
दान की महिमा	१४४	निर्वल	८८
दान के भेद	१५२	निरूपकारी	१३५
दान मे विवेक	१४६	प्रत्युपकार-उपकार का	
दृष्टिदोष एव उसके		बदला	१३०
आञ्चर्य	१२४	परदोष	१२१
दुर्जन (दुष्ट)	१५		

परोपकार	१२८	याचना	१७१
परोपकारी	१३३	ऋण (कर्ज)	२२८
पात्र-कृपात्र	१६०	लक्ष्मी	१६७
व्याज	१३४	लक्ष्मी का निवास	२०२
बडा आदमी और वरुपन	६०	लक्ष्मी का मूल आदि	१६८
बलवान व्यक्ति	८४	लक्ष्मी की नश्वरता एव	
बल-पराक्रम	६०	अस्थिरता	२००
बुराई-दुर्जनता	४१	लक्ष्मी के अप्रियस्थान	२०३
भलाई (सज्जनता)	३८	लक्ष्मी के विकार	२०५
भलाई और बुराई की अमरता	४४	व्यय	२२५
मन	२८७	वास्तविक धन	१६६
मनका तार	३१०	विभिन्न प्रकार के गुण	६८
मनका स्वभाव	२६१	विलपावर-दृढसकल्प	३१२
मनके आश्रित बन्ध-मोक्षादि	२६६	शारीरिकदोष पर आघा-	
मन के बिना कुछ नहीं	२६७	रित अधमता	६७
मन के विषय मे विविध	३१६	शूरता और कायरता	८३
मन की उपमाएँ	३१३	शूरवीर पुरुष	७८
मन की मुख्यता	२६४	स्वदोष	११६
मन की शिक्षा	३०३	सज्जन (सत्पुरुष)	१
मनोनिग्रह	३०४	सज्जन-दुर्जन का अन्तर	३४
मनोनिग्रह के मार्ग	३०६	सज्जनो का स्वभाव	५
मनोनिग्रह से लाभ	३०८	सत्सगति	१०
मन शुद्धि	२६६	सज्जनोके स्वभावकी निश्चलता	८
मन शुद्धि के अभाव मे	३०२	सत्सगति का प्रभाव	११
मन शुद्धि दुष्कर	३०१	समर्थपुरुष	७७
महापुरुषो का पराक्रम	५३	सग्रह	२३२
महापुरुषो का सम्पर्क	५८	सगति के अनुसार गुण-दोष	४५
महान्पुरुषोके विषयमे विविध	५५	सुपाप्रदान	१५६
महान्पुरुष-महात्मा	४६	ज्ञानदान	१६१
याचक	१६८		

भाग छठा

वक्तृत्वकला के बीज



पहला कोष्ठक

१

सज्जन (सत्पुरुष)

१. उपकारिषु यः साधु, साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः, स साधुः सद्भिरिष्यते ॥

—पंचतन्त्र १।१६६

उपकारी के साथ उपकार करने में सज्जनता की कोई विशेषता नहीं है, किन्तु अपकार करनेवालो पर भी जो उपकार करता है, सत्पुरुष उसे ही सज्जन मानते हैं ।

२. व्यवहारो को शुद्धि और दूसरों के प्रति आदरभाव, सज्जन मनुष्य के ये ही दो लक्षण हैं ।

—द्विजराइली

३. सज्जनश्च गुणग्राही ।

—सुभाषित-संचय

सत्पुरुष गुणग्राही होते हैं ।

४. स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेक सतामग्रणीः ।

जो परहित को ही अपना हित समझता है, वही सत्पुरुषो में अग्रगण्य है ।

५. प्रियंवदः स्यादकृपणः, शूरः स्यादविकल्पनः ।

दाता नाऽपात्रवर्षी च, प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः ॥

सत्पुरुष प्रियवादी होते हुए भी उदार होते हैं, शूर होने पर भी अपनी प्रशंसा नहीं करते, दाता होने पर भी कुपात्रों को नहीं देते और साहसी होने पर भी निष्ठुर नहीं होते ।

६. सज्जन ऐसा होत है, जैसे सूप सुहाय ।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देत उडाय ॥

—कबीर

७. सिंह-सगम सज्जन-वयण, कदली फले एक वार ।
तिरिया-तेल हमीर-हठ, चढे न दूजी वार ॥

८. आदानं ही विसर्गयि, सता वारिमुचामिव ।

—रघुवंश

वादलो के समान मज्जन-पुरुष भी दान करने के लिए ही किसी वस्तु को ग्रहण करते हैं ।

९. कण्ठे मुधावसति वै खलु सज्जनानाम् ।

—सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा

सत्पुरुषों के गले में अमृत निवास करता है ।

१०. लोभं प्रयाता अपि नैव सन्तो, दुष्टामशिष्टां गिरमुद्गिरन्ति ।

—रश्मिमाला १८।१३

क्षुब्ध होने पर भी मज्जन दुष्ट एवं अशिष्ट वाणी का व्यवहार नहीं करते ।

११. परोपकाराय सतां विभूतय ।

—उद्भटसागर

सत्पुरुषों की विभूतियां परोपकार के लिए ही होती हैं ।

१२. पारस मे अरु मुजन में, बड़ो आतरो जाण ।

वो लोहा कंचन करे, वो करे आप समान ॥

१३. अरे त्रिनोले वावरे ! मन के बड़े अधीर ।
आप उघाडो रहत है, पर का ढकै शरीर ॥
- १४ मुख मीठा सज्जन घणा, मिजलस मित्र अनेक ।
काम पढ्या कायम रहे, सो लाखन मे एक ॥
- १५ काछ-दृढा कर वरसणा, मन चगा मुख-मीठ ।
रग-शूरा जग-वल्लभा, सो मैं विरला दीठ ॥
- १६ शूरा. सन्ति सहस्रश प्रतिपद विद्याविदोऽनेकश ।
सन्ति श्रीपतयो निरस्तधनदास्तेपि क्षितौ भूरिश ॥
किन्त्वाकर्ण्य निरोक्ष्य वान्यमनुज दु खार्दित यन्मन-
स्ताद्रूप्य प्रतिपद्यने जगति ते सत्पुरुषा पञ्चपा ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार; पृष्ठ ५५

कदम-कदम पर हजारो शूर-वीर हैं, अनेक विद्वान् हैं, धनद को पराजिन करनेवाले लक्ष्मीपति भी बहुत हैं, किन्तु दु गी मनुष्य को सुनकर या देखकर जिनका मन दु ख मे पोडित हो जाता है—ऐसे सत्पुरुष विश्व मे पाच-छ ही हैं अर्थात् विरले हैं ।

- १७ न सन्त्येव ते येपा सतामपि सता न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रव'
—हर्षचरित

मसार मे ऐसे लोग हैं ही नही, जिनके स्वयं सज्जन होने पर भी मित्र, उदासीन और शत्रु न हो ।

- १८ जाके सौ सज्जन नही, दुर्जन नही पञ्चास ।
तसु जननी गुत जनम के, भार मरी दस मास ॥
१९. सज्जनो के शीश पर, संकट रहेगे कितने दिन !
चाँद को घेरे हुए, बादल रहेगे कितने दिन !
२०. सज्जन व्यक्ति को गमभने के लिए भी एक और सज्जन चाहिए ।

२१. मेरा तो यह भी विश्वास है कि सत्पुरुषों के कार्य का सच्चा आरम्भ उनके देहान्त के बाद होता है।

—गांधी

२२. साजन साकड़ा ही भला।

- साजन जिसा भोजन।
- मीठी रोटी तोडे जठी नें ही मीठी।

—राजस्थानी कहावतें



१ उपकतुं प्रिय वक्तु, कतुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनाना स्वभावोऽय, केनेन्दुशिशिरीकृत ?

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ४७

उपकार करना, प्रिय बोलना और स्वाभाविक स्नेह करना—सज्जनों का चन्द्रमा के समान यह शीतल स्वभाव किसने बनाया ?

२. असन्तो नाम्यर्थ्या सुहृदपि न याच्यः कृशधनः,
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ।
विपद्युच्चै स्थेय पदमनुविधेय च महता,
सता केनोद्दिष्ट विपममसिधाराव्रतमिदम् ? २८ ॥
प्रदान प्रच्छन्न गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः,
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ।
अनुत्सेको लक्ष्म्या निरभिभवसाराः परकथा,
सता केनोद्दिष्टं विपममसिधाराव्रतमिदम् ? ६४ ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक

असत्पुरुषो से नहीं मागना, धनहीन मित्रका (दिया हुआ) नहीं लेना, न्याय से आजीविका चलाना, प्राणान्त में भी नीचकर्म नहीं करना, विपत्ति में अधीर न होना और महान् पुरुषों के पीछे चलना—यह खड्गधारावत् कठोर व्रत करना सज्जनों को किमने सिखाया ? २८ ॥

गुप्तदान करना, घर आये व्यक्ति का मत्कार करना, भलाई करके मौन रहना, दूमरे के किए हुए उपकार को सभा में कहना, धन का अभिमान नहीं करना और पराई चर्चा में उसके निरादर की बात बचाकर कहना

— यह खड्गधारावत् कठोर व्रत सत्पुरुषो को किसने मिखाया ? (सिखाने वाला कोई नहीं, उनका स्वभाव ही ऐसा है ।) ६४ ॥

३. वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकात्तराणा चैतासि, को नु विज्ञातुमर्हति ?

— उत्तर रामचरित २।७

श्रेष्ठ पुरुषों के वज्र से भी कठोर और फूलों में भी कोमल चित्तों को कौन जान सकता है ?

४. अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि, वासयन्ति करद्वयम् ।
अहो ! मुमनसा वृत्ति-वामदक्षिणयोः समा ।

— प्रसंग-रत्नावली

अञ्जलि-बोवों में रहे हुए फूल दोनों हाथों को सुवासित करते हैं । सदहृदय-वालों की वृत्ति समान हुआ करती है, उममें वाम-दक्षिण का भेद नहीं रहता ।

५. कुसुमस्तवकस्येव, द्वे गतो स्तो मनस्विनाम् ।
मूढनि वा सर्वलोकस्य, विगीर्येत वनेऽथवा ॥

— भर्तृहरि-नीतिशतक-३३

फूलों के गुच्छों के समान मनस्वी पुरुषों की दो तरह की गति होती है । वे या तो सब के मिर पर रहे या वन में ही कुम्हला जाएं ।

६. के हसा मांती चुगो, के निरणा रह जाय ।

७. तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेद सिन्धावगाधता ।
अलङ्घनीयता हेतु-रुभयं तन् मनस्विनि ॥

— शिमुपालवध

पर्वत में ऊँचाई है, गहराई नहीं है और समुद्र में गहराई है, ऊँचाई नहीं है, किन्तु अलङ्घनीय होने के ये दोनों ही कारण मनस्वि-पुरुष में विद्यमान रहते हैं अर्थात् वह पर्वत के समान ऊँचा और समुद्र के समान गहरा होता है ।

८. अम्बरमनूरुलङ्घ्यं, वसुन्धरा सापि वामनेकपदा ।
अब्धिरपि पीतलङ्घ्यः, सतां मनः केन तुल्यं स्यात् ?

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-५०

आकाश चरणरहित सूर्य के सारथी द्वारा लाघा जाता है, पृथ्वी वामन अवतार के एक पग में समा जाती है और ममुद्र जहाज से पार किया जा सकता है, किन्तु सन्तो के विशाल मन की किससे तुलना की जाय ?



३

सज्जनों के स्वभाव की निश्चलता

१. स्वभावं नैव मुञ्चन्ति, सन्तः संसर्गतोऽसताम् ।

दुष्टो का संसर्ग होने पर भी सज्जन अपना स्वभाव नहीं छोड़ते ।

२. न त्यजति रतं मञ्जु, काकसंसर्गतः पिक ।

—कुसुमदेव

कौवे के साथ रहने पर भी कोयल अपने मधुर वाणीविलास को नहीं छोड़ती ।

३. मूले भुजङ्गा शिखरे विहङ्गा, शाखासुकीशाः कुसुमेषु भृङ्गा ।

तिष्ठन् सदैव किल दुष्टमध्ये, न चन्दनो मूञ्चति चारुगन्धम् ॥

—हितोपदेश २।१६१

मूल में साप हैं, शिखर पर पक्षी हैं, शाखाओं पर वानर हैं और फूलों पर भंवरे हैं । इन सब दुष्टों के बीच में रहता हुआ भी चन्दन अपनी सुगन्धि को नहीं छोड़ता ।

४. युगान्ते प्रचलेन्मेरुः, कल्पान्ते सप्त सागराः ।

साधवः प्रतिपन्नार्थाद्, न चलन्ति कदाचन ॥

—चाणक्यनीति १३।२०

युगान्त में मेरु एव कल्पान्त में सातों समुद्र चल जाते हैं, किन्तु सत्पुरुष स्वीकार किए हुए अपने सिद्धान्त से नहीं चलते ।

५. कान द्यावा पण कानू न द्यावा ।

—मराठी कहावत

सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी सज्जन अपना मार्ग नहीं छोड़ते ।

६. शिरश्छेदेपि वीरस्तु, धीरत्व नैव मुञ्चति ।

वीर पुरुष शिर कट जाने पर भी धैर्य को नहीं छोड़ता ।

७. सिंहनी मर जाती है, पर घास को खाती नहीं ।

आग में जल जाय सोना, पर चमक जाती नहीं ॥

८. तुलसी उत्तम प्रकृति को, का करि सकत कुसंग ।

चन्दन विष व्यापै नहीं, लिपटे रहत भुजग ॥

९. लोह-कञ्चन री लाट, रात-दिवस भेली रहै ।

कदे न लागै काट, सोना ऊपर सगतिया ।

—सोरठा संग्रह

१०. कोकिलानां खल्वपत्यं, काक्या पुष्टोऽपि कोकिल ।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र ३।३

कोयल का वच्चा कौवी द्वारा पोये जाने पर भी कोयल ही रहता है ।

११. घनाम्बुभिर्वहुलितनिम्नगाजलै-

र्जल नहि व्रजति विकारमम्बुधे ।

— शिशुपालवध

मेघ के जल में भरी हुई नदियों के पानी में समुद्र कभी विकृत नहीं होता ।

१२. आवेष्टितो महासर्पैश्चन्दन किं विपायते ।

—सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा

जहरीले सर्पों के घेर लेने पर भी चन्दन जहरीला नहीं होता ।



१. सता सद्भि सग कथमपि हि पुण्येन भवति ।

—उत्तर रामचरित २।२

सज्जनो को भी मज्जनो का संग किसी विशेष पुण्य के उदय से ही मिलता है ।

२. सत्सगश्च विवेकश्च, निर्मल नयनद्वयम् ।

—गरुड़पुराण

सत्संग और विवेक ये दोनो निर्मलनेत्र हैं ।

३. ससार विपवृक्षस्य, द्वेफले अमृतोपमे ।

सुभाषितरसास्वाद, सगतिः सृजनं सह ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-३०

ससाररूपी विपवृक्ष के दो फल अमृतोपमे हैं—एक तो सुभाषित रस का आस्वादन और दूसरा सज्जनो का संगम ।

४. सङ्ग सर्वात्मना त्याज्य, स चेत् त्यक्तु न शक्यते ।

स सद्भि सह कर्त्तव्य, सता सङ्गो हि भेषजम् ॥

—हितोपदेश ५।६३

सभी प्रकार के मग (आमक्ति) का त्याग करो । न कर सको तो सत्पुरुषो का संग करो, क्योंकि सत्संग ही दिव्य औषधि है ।

५. सद्भिरेव सहासीत, सद्भिः कुर्वीत सगतिम् ।

सद्भिर्विवादं मंत्री च, नासद्भिः किञ्चिदाचरेत् ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार पृष्ठ-१५६

मज्जनो के साथ बैठो ! उन्हीं की संगति करो ! तथा उन्हीं से विवाद एवं मित्रता करो ! दुर्जनों के साथ कुछ भी मत करो !



१. जाह्यं धियो हरित सिञ्चति वाचि मत्य,
मानोन्नति दिशति पापमपाकरोति ।
चेत. प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्ति,
सत्संगति कथय कि न करोति पुसाम् ?

—मनुहरि-नीतिशतक-२३

सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में मत्य को सींचती है, सम्मान की वृद्धि करती है, पापों को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दशों दिशाओं में कीर्त्ति को फैलाती है। अब तुम ही कहो ! सत्संगति मनुष्यों का क्या काम नहीं करती ?

- २ मित्तो हवे सत्तपदेन होति, सहायो पन द्वादसकेन होति ।
मासड्ढमासेन च ज्ञाति होति, तनुत्तरि अत्तसमो पि होति ॥

—जातक-१।८३।८३

सत्पुरुषों के साथ सात कदम चलने से व्यक्ति मित्र हो जाता है, बारह कदम चलने से महायक हो जाता है। महीना-पन्द्रह दिन साथ रहने में शान्ति बन्धु बन जाता है, और इसमें अधिक साथ रहने से तो आत्मा के समान ही हो जाता है।

- ३ दर्शन-ध्यान-सस्पर्शाद्, मत्स्यी कूर्मी च पक्षिणी ।
शिशु पालयते नित्य, तथा सज्जनसंगति ॥

—चाणक्यनीति ५।३

मछली, कन्दुई और पक्षिणी क्रमशः जैसे—दर्शन, ध्यान और स्पर्श से

बच्चों का पालन करती हैं, सरसंगति भी ठीक वैसे ही व्यक्ति का सरक्षण करती है।

४. क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका,
भवति भवार्णवतरणे नौका।

—शङ्कराचार्य

क्षणभर की सत्संगति ससारसमुद्र से तारने के लिए एक नाव के समान हो जाती है।

५. तात ! स्वर्ग-अपवर्ग सुख, घरिय तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव-सतसग ॥

—रामचरितमानस

६. तुलयामि लवेनापि, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सद्भिः सद्भिः स्य, मर्त्याना किमुतागिप ॥

—श्रीमद्भागवत १।१८।१३

भगवत्संगी प्रेमियों के निमेष-मात्र सद्ग की तुलना स्वर्ग-अपवर्ग के साथ भी नहीं की जा सकती, फिर मर्त्यलोक के राज्यादि सम्पत्ति की तो बात ही क्या !

७. दस हजार वर्ष की तपस्या और आधे क्षण का सत्सग—

एक बार महर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ में एक विवाद हो गया। विश्वामित्र तप को बड़ा कह रहे थे और वशिष्ठ मत्संग को। निर्णय के लिए दोनों शोपनाग के पास पहुँचे। शोपनाग ने कहा—मैं पृथ्वी के भार से विग्रह हूँ। कोई इसे थोड़ी देर के लिए ले ले तो मैं निर्णय कर सकता हूँ। विश्वामित्र बोले—मैं दस हजार वर्ष की तपस्या का फल देता हूँ। मेरे शिर पर पृथ्वी ठहर जाये। पृथ्वी उगमगाने लगी। सारे विश्व में सहलवा मच गया। यह दृश्य देखकर वशिष्ठ ने आधे क्षण के सत्सग के

फल का सङ्कल्प किया तो पृथ्वी उनके सिर पर टिक गई। जब शेष पृथ्वी को वशिष्ठ से वापस लेने लगे तब विश्वामित्र ने कहा—हमारा निर्णय तो कर दीजिये। शेष ने हंसकर फरमाया—क्या आप नहीं समझें कि आभे क्षण के सत्सग की बराबरी दस हजार वर्ष की तपस्या नहीं कर सकती ?

—कल्याण 'संत अक' से

८. ज्ञान बढ़े गुणवत की सगत, ध्यान बढ़े तपसी सग कीन्हे ।
मोह बढ़े परिवार की सगत, लोभ बढ़े धन मे चित दीन्हे ।
श्रीध बढ़े नर भूढ की सगत, काम बढ़े तिरिया सग भीने ।
बुद्धि-विचार-विवेक बढ़े, 'कवि दीन' सुसज्जन सगति लोन्हे ।

९ विनु सतसंग विवेक न होई, रामकृपा विनु सुलभ न सोई ।
सठ सुघरहिं सतसगति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई ।

—रामचरितमानस

१०. सत संगत परताप तै, मिटै अविद्या-जाल ।
वार-वार बरनन करे, नानक देव-दयाल ॥

११. संगति का फल देखलो, वही तिली वही तेल ।
जाति नाम निज छोडकर, पाया नाम फुलेल ॥

१२. असज्जनः सज्जनसङ्गि-सगात्,
करोति दु साध्यमपीह साध्यम् ।
पुष्पाश्रया. शंभुशिरोऽघिरुन्धा,
पिपीलिका चुम्बति चन्द्रविम्बम् ॥

—कल्पतरु

सतसंगी के नग से असज्जन भी दु साध्य कार्य साध लेता है। फूलों के सहारे शिवजी के मस्तक पर चढ़ी हुई चींटी भी चन्द्रविम्ब का चुम्बन नार लेती है।

१३. कश्चिदाश्रय-सौन्दर्याद्, धत्ते शोभामसज्जनः ।

प्रमदालोचनन्यस्तं, मलीमसमिवाञ्जनम् ॥

—हितोपदेश २।१५१

आश्रय की सुन्दरता ने असज्जन भी शोभित हो जाता है । जैसे—स्त्री की आँखों में डाला हुआ काला कज्जल ।

१४. कुशल वृद्ध की मगति में विष अमृत का काम करने लगता है । चतुर कलमकार के हाथ पाकर नीवू नारंगी का रूप ले लेता है ।

१५. कालियो गोरियों कने बैठे, रंग नहीं परा अवकल तो आवे ही ।

—राजस्थानी कहावत

१६ भगवान महावीर के सत्संग में अर्जुनमाली एवं चण्डकौशिक तर गये । जम्बूकुमार के सत्संग में प्रभवचोर एवं गण्धर्षियों के सत्संग से डाकू अग्निगर्मा (जो आगे चलकर महर्षि वाल्मीकि कहलाए) पार हो गये । महात्मा बुद्ध के सम्पर्क में कलिग-विजय के बाद सम्राट् अशोक दयावान बन गया तथा उन्हीं के उपदेश में डाकू अंगुलिमाल (जो राजा प्रमेनजित् ने भी नहीं पकड़ा गया) प्रतिबुद्ध होकर माघु बन गया । इसी प्रकार यूरोपीय प्रसिद्ध चर्च के अविष्टाता सेंटपाल (जो डाकू-नुटेरे थे) सत्संगति से ईसाईधर्म के महान् प्रचारक बन गए ।

—अध्ययन के आधार पर

१७. सत्संग में जाकर भी यदि कुछ लाभ नहीं कमाया तो उसके लिए वे ही कहावतें चरितार्थ हुईं, जैसे—चारह वर्ष दिल्ली में रहकर भी भाट भोकी, चौबीस वर्ष अफ्रीका में रहकर रुई धुनी, छत्तीस वर्ष अमेरिका में रहकर ग्राक छानी, दस लाख वर्ष नंदनवन में रहकर अमगखी की कुर्मियाँ बिछाई और करोड़ वर्ष इन्द्रलोक में रहकर ढोल बजाया ।

—संकलित



१. तक्षकस्य विष दन्ते, मक्षिकाया शिरोविषम् ।

वृश्चिकस्य विषं पुच्छे, सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम् ॥

—चाणक्यनीति १७।८

माप के दात में, मक्खी के शिर में और बिच्छू के केवल पूँछ में ही विष होता है, किन्तु दुर्जन के सारे ही अंग विषमय हैं ।

२ विषधरतोऽप्यतिविषम, खल इति न मृपा वदन्ति विद्वांस ।

यदय नकुलद्वेषी, मुकुलद्वेषी पुनः विशुन ॥

—सुबन्धु

दुर्जन माँप में भी ज्यादा खतरनाक है, यह बात विद्वान सत्य ही कहते हैं, क्योंकि माँप तो नकुल का ही द्वेषी है, दुर्जन तो मुकुल-सज्जनो से भी द्वेष रखता है ।

३ दुर्जनस्य विशिष्टत्व, परोपद्रवकारणम् ।

व्याघ्रस्य चोपवामेन, पारण पशुमारणम् ।

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-५६

दूसरों को उपद्रव करना ही दुर्जनों की विशेषता है । जैसे—पशुओं को मारना ही बाघ के उपवास का पारणा होना है ।

४. नदीरयस्तरूणामङ्घ्रीन् क्षायलन्तप्युन्मूलयति ।

—नीतिवाक्यामृत

नदी का वेग बढ़ते के चरणों का क्षान्न करता हुआ भी उन्हें उखाड़ता ही है । (ऐसे ही दुर्जन पैरों में गिरजर भी नाश करता है ।)

६. क्षणो रुष्टः क्षणो तुण्टो, रुष्टस्तुण्ट क्षणो-क्षणो ।
अनवस्थितचित्तस्य, प्रसादोऽपि भयंकरः ॥

—घटखपर का नीतिसार

जो क्षण-क्षण में रुष्ट एवं तुण्ट होता रहता है, ऐसे अस्थिर चित्तवाले तुच्छ व्यक्ति की प्रसन्नता भी भयकर है ।

६. फांस मिसरी की भले हो, किरकिराती है बराबर ।
भूल चाहे प्यार की हो, रग लाती है बराबर ॥
लाख फूलों में बसाओ ! गन्ध की चादर ओढाओ ।
किन्तु कांटा तो चुभेगा, सी तरह उसको रिभाओ ॥

—रामानन्द बोधी

७. स्पृशन्नपि गजो हन्ति, जिघ्रन्नपि भुजङ्गमः ।
पालयन्नपि भूपालः, प्रहसन्नपि दुर्जनः ॥

—पञ्चतन्त्र ३।८२

हाथी स्पर्श करता हुआ, साप सूँघता हुआ, राजा पालन करता हुआ
एवं दुर्जन हँसता हुआ भी मार डालता है ।

८. असूयकः पिशुनः कृतघ्नो दीर्घरोपइति कर्मचाण्डालाः ।

—नीतिवाक्यामृत २२।११

ईर्ष्यालु, चुगल, कृतघ्न और अधिक समय तक क्रोध रखनेवाला—ये
कर्म-चाण्डाल हैं ।

९. चुगल बधक गुहसेजरति, चोर कृपण गुणचोर ।
कृण बधतो घटतो कवण, एकज गिरि का टोल ॥

१०. सबकी औपधि जगत में, खल की औपधि नाहि ।
औपधि हूँ चूरन हूँ, परिके खल के माहि ॥

११. सर्पाणां च खलानां च, सर्वेषां दुष्टचेतसाम् ।
अभिप्रायाः न सिध्यन्ति, तेनेद वर्तते जगत् ।

१२. खल करोति दुर्वृत्त, नूनं फलति साधुषु ।
दशाननोऽहरत् सीता बन्धन स्याद् महोदधे ।

—हितोपदेश ३।२२

दुष्ट, दुष्टता करता है और उसका फल सज्जनों को भोगना पड़ता है ।
देखो ! रावण ने सीता का हरण किया और समुद्र को बँधना पड़ा ।

१३ गलियो एकज पान, सगलाहि विगाड' ।
भरियो माटो दूध, छांट काजी री फाड़े ॥
कुल मे हुवे कपूत, वंग आपणो लजावै ।
पंचा थापी बाड, चुगल चिमठियाँ उठावै ॥

सूत मे कुसूत भेलो करे, पापी ने काढो परो !
कवि गद कहे सुण राय हर ! पंचां मे खडवो बुरो ॥

१४. साँप किसका वाप और अग्नि किसकी माँ ?

—हिन्दी कहावत

१५. सर्प रै किसी सँघ ।

- सर्प रै बच्चें रो काई छोटो र काई मोटो ?
- दीसती तो गिलारी, कर जावै विच्छू रो गटको ।

१६. दीसत दीसे टावर्यो, बोलै घणो नरम ।
जाणै-वीणै काई नहीं, फोड नाखे करम ॥

—राजस्थानी कहावतें

१७. बिल्ली का खेल, चूहे की मौत ।

—हिन्दी कहावत

१. निसर्गतो ऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः ।

—सुभाषितरत्नलण्डमजूषा

दुर्जन स्वभाव से ही मन के मैले होते हैं ।

२. प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः ।

—किराताजुनीय १४।२१

दुष्ट लोग स्वभाव से ही सज्जनों के शत्रु हुआ करते हैं ।

३. अकरुणत्वमकारणाविग्रहः, परघने परयोपिति च स्पृहा ।
सुजनवन्धुजनेष्वसहिष्णुता, प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।

—भट्टहरि-नीतशतक-५२

निर्दयीपन, वेमत्तलव लडना, परघन और परस्त्री की इच्छा रखना,
स्वजन-बन्धुओं से ईर्ष्याभाव रसना—ये दुर्जनों के स्वाभाविक लक्षण हैं ।

४. त्यक्त्वा निजप्राणान्, परहितविघ्न खल. करोत्येव ।
कवले पतिता सद्यो, वमयति मक्षिकाऽन्नभोक्तारम् ॥

—प्रसंगरत्नायली

दुर्जन अपने प्राण देकर भी दूसरों के हित में विघ्न करता है । जैसे-कवल
में पटी हुई मयखी भोजन करनेवाले को वमन करवा देती है ।

५. देखो ! सण की दुष्टता, नेक न आवं लाज ।
खाल खिचावें आपणी, पर-बन्धन के काज ॥

६. नाक वाढी ने अपशकुन करवा ।

—गुजराती कहवावत

७. घर तो घोसी रो बलसी परा सोहरा ऊंदरा ही को रैवनी ।

● भाई भलाई मर जाओ भोजाई रो बट निकलणो चाहिजें ।

● खाट गाय आप तो दूध को देवै नी, दूजी रो ढोलाय दे ।

● मिनकी दूध पीवै नही तो ढुला तो देवै ।

—राजस्थानी कहावतें

८. न विनापरवादेन, रमते दुर्जनो जनः ।

काक सर्वरसान् भुङ्क्त्वा, विनाऽमेघ्यं न तृप्यति ॥

—प्रसंगरत्नावली

दुर्जन परनिदा किये बिना खुश नहीं होता । रसीले पदार्थ खाकर भी काक (कौवा) गंदगी में मुँह दिए बिना तृप्त नहीं होता ।

९. अग्निरिव स्वाश्रयमेव दहन्ति दुर्जनाः ।

—नीतिवाक्यामृत

अग्नि की तरह दुर्जन अपने आश्रय को ही जला देते हैं ।

१०. खलः सर्षपमात्राणि, परच्छिद्राणि पश्यति ।

आत्मनोविल्वमात्राणि, पश्यन्नपि न पश्यति ॥

—शाकुन्तल

दुष्ट व्यक्ति दूसरो के सरसो जितने छोटे-छोटे दोषो को भी देख लेता है, किन्तु अपने विल्वफल जितने बड़े दोष को भी नहीं देखता ।

११. स्तोकेनोन्नतिमायाति, स्तोकेनायात्यघोगतिम् ।

अहो ! सुसदृशी चेष्टा, तुलायष्टेः खलस्य च ॥

—शाङ्गधर

तराजू की डंडी और दुष्ट व्यक्ति—इन दोनों की प्रवृत्ति एक जैसी है । ये षोड़े में ऊँचे एवं षोड़े में नीचे हो जाते हैं ।

१२. त्यजति च गुणान् सुदूरं, तनुमपि दोष निरीक्ष्य गृह्णाति ।

मुक्त्वाऽलकृतकेभान्, यूकामिव वानरः पिशुनः ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-६०

दुर्जन बड़े-बड़े गुणो को छोड़कर छोटे से दोष को उसी तरह खोजकर पकड़ता है, जैसे—वानर शृंगारयुक्त केशों में से केवल जूँ को ही पकड़ता है ।

१३. अवेक्षते केलिवन प्रविष्टः, क्रमेलकः कण्टकजालमेव ।

—वित्हणकवि

अनेक फलो-फूलो वाले क्रीडावन में चले जाने पर भी ऊँट तो काटेवाले वृक्षो को ही खोजेगा ।

१४. मुपक्वमपि निम्बस्य, फलं वीजे कटु स्फुटम् ।

वयसः परिणामेऽपि, यः खलः खल एव स ॥

—विवेकविलास

निम्बू का फल पक जाने पर भी उसका बीज कड़ुवा ही रहता है । बूढ़ा हो जाने पर भी दुष्ट-दुष्ट ही रहता है ।

१५. त्रिखरे काटे राह में, सज्जन रहे बुहार ।

हँस-हँस के दुर्जन वहाँ, और रहे हैं डार ॥

—बोहासंदोह

१६. भूंडो भूंडा नो भाव भज्या वगैर न रहै,

खौडी त्रिलाडी, अपगकुन कर्याँ वगैर न रहै ।

—गुजराती कहावत

१७. तिगनगारा नुमायद अंदर ख्वात्र ।

हमा आलम व चश्म चश्मये आव ॥

—फारसी कहावत

विल्ली को स्वप्न में भी माँग दीखता है ।

१८. चोर न कहै चोरो कर, कुत्ते न कहै भूँस अने साह न कहै जाग ।

—राजस्थानी कहावत

१६. आंगली आपीए तो पहोचो पकडे अने हाथ आपीए तो गलुं पकडे अने वैस कहे तो सूई जाय ।

बाबाजी, “नमो नारायण” तो कहे—तेरे घर घामा ।

—गुजराती कहावतें

२० प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमास,
कणं कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।

छिद्रं निरुप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः,
सर्वं खलस्य चरितं मशक करोति ॥

—हितोपदेश १।८०

जैसे—दुष्ट पुरुष पहले पैरो मे गिरता है, फिर दूसरो की बुराई करता है । पहले कानो मे मीठी-मीठी बातें करता है और फिर मौका पाकर अन्दर घुस जाता है । मच्छर भी दुष्टो की सी सारी क्रियाए करता है ।

२१. तीखी निष्ठुर कुटिल अति, रखती जरा कृपा न ।

इस अन्तिम गुण से पडा, तेरा नाम कृपान ॥



१. अलं बालस्स संगेण ।

—आचारांग १।२।५

बाल-अज्ञानियो की संगति से दूर रहना चाहिए ।

२. खुड्डेहि सह संसग्गिं, हास कीडं च वज्जए ।

—उत्तराध्ययन १।६

क्षुद्रजनो का समर्ग एवं उनके साथ हास्य और क्रीडा नही करनी चाहिए ।

३. दुसग सर्वथैव त्याज्य. । काम-क्रोध-मोह-स्मृतिभ्रंश-बुद्धिनाश-सर्वनाश कारणत्वात् ।

—भक्तिसूत्र ४३-४४

दुसग का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए, क्योंकि वह काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है ।

४. दुर्जनः परिहृत्तव्यो, विद्यया भूपितोऽपि सन् ।

मणिनालंकृतः सर्पः, किमसौ न भयकरः ॥

—मत्तुं हरि-नीतिशतक १३

विद्या मे अलंकृत हो तो भी दुर्जन छोडने योग्य है, क्योंकि मणि से विभूषित होने पर भी माँप भयकर ही है ।

५. वदो की सोहवत मे मत वैठो, है उसका अंजाम बुरा ।

वद न बने पर वद कहलाए, वद अच्छा, वदनाम बुरा ॥

—उबूँ शेर

६. शकट पञ्चहस्तेन, दशहस्तेन वाजिनम् ।

हन्ती हन्तसहस्रेण, देशत्यागेन दुर्जनम् ॥

—घाणव्यनीति ७।७

वैलगाडी को पाँच हाथ से, घोड़े को दश हाथ से, हाथी को हजार हाथ से और दुर्जन को देश त्यागकर भी छोड़ देना चाहिए ।

७. दुर्जनेन सम वैर, प्रीति चापि न कारयेत् ।

उष्णो दहति चाङ्गारः, शीत कृष्णायते करम् ॥

—हितोपदेश १।८०

दुर्जन के साथ वैर और प्रीति दोनों ही नहीं करने चाहिए । वह अगार के समान है । अगर गर्म हो तो हाथ को जलाता है और ठंडा हो तो हाथ को काला करता है ।

८. अलस अण्वद्व वैर, सच्छंदमती पयहीयव्वो ।

—व्यवहारभाष्य १।६६

आलसी, वैर-विरोध रखनेवाले और स्वच्छन्दाचारी का साथ छोड़ देना चाहिए ।

९. त्यज दुर्जनससर्गं, भज सावु-समागमम् ।

कुरु धर्ममहोरात्रं, स्मर नित्यमनित्यताम् ॥

—घाणव्यनीति १४।२०

दुर्जनो का ससर्ग छोड़ो, मज्जनो का समागम करो । दिन-रात धर्म करो और सदा संसार की अनित्यता का चिन्तन करो ।



१. संगत जिसी रंगत, सगत जिसो असर ।
—राजस्थानी कहावत
२. सगतेवो रग, वान न आवे पण शान आवे, गधेडा साथे घोडु
वाँघे तो भूंकता न सीखे पण आलोटता तो सीखेज ।
● दालनी सगति थी चोखो नर मटी नारी थयो ।
—गुजराती कहावत
३. यदि तुम सदा नगडो के साथ रहोगे तो लगडाना मीख जाओगे ।
—लैटिन लोकोक्ति
४. फास्ता का जब कौवो से संयोग होता है तो उसके पर तो श्वेत रहते हैं,
पर हृदय काला हो जाता है ।
—जर्मन लोकोक्ति
५. कोयला री दलाली में काला हाथ ।
—राजस्थानी कहावत
- कुसंगति मे जाता देखकर पिता ने पुत्र को रोका । पुत्र बोला—मेरे पर
असर कहाँ होता है ? पिता ने उसके हाथ मे कोयला देकर समझाया कि
जैसे—इमका दाग अवश्य लगता है, जसी प्रकार कुसंगति का असर भी
होता है ।
६. चिराग गुल पगड़ी गायव ।
—पारसी कहावत

१. खलसगेन किं नाम न भवत्यनिष्टम् ?

—नीतिवाक्यामृत

दुर्जन के सग से क्या अनिष्ट नहीं होता ?

२. असता सङ्गदोषेण, साधवो यान्ति विक्रियाम् ।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणेगतः ॥

—पञ्चतन्त्र १।२७४

दुष्टों के सग से साधु-सत्पुरुष भी विगड जाते हैं । देखो दुर्योधन के प्रमंग से भीष्मपितामह भी गोहरण जैसे निकृष्ट कार्य के लिये चले गये ।

३. अहो ! दुर्जन संसर्गाद्, मानहानिः पदे-पदे ।
पावको लोहसङ्गेन मुद्गरैरभिहन्यते ॥

—प्रसंगरत्नावली

दुर्जनो की संगति से बरदम-कदम पर मानहानि होती है । देखो ! लोहे की संगति से अग्नि भी मुद्गरो से कूटी जाती है ।

४. रहिमन नीचन संग वसि, लगत कलक न काहि ।

दूध कलारिन हाथ लिखि, मद समुझहि सब ताहि ॥

५. कर कुसग चाहत कुशल, तुलसी यह अफसोस ।

महिमा घटी समुद्र की, रावण वने पड़ांस ॥

६. संगति भली न खान की, दोनूँ कानी दुःख ।

खीज्या काटै टांगड़ी, रीझ्यां चाटै मुख ॥

७. काक रू हंस वसे तर ऊपर, दोहू परस्पर चित्त मिलायो ।
 सांभ ससे कोठ भूपति खेलत, छांह निहार जसा तिहां आयो ।
 काग कुजात ने बीठ करी, नृप तान के बान सुजान पठायो ।
 काग गयो रह्यो हंस सुवंश को, नीच की संगति मृत्यु हि पायो ॥

—भाषाश्लोकसागर

८. दुर्जन दूषितमनसा, पुंसा सुजनेऽप्यविश्वासः ।
 बालः पयसा दग्धो, दध्यपि फूत्कृत्य भक्षयति ॥

—प्रसंगरत्नावली

दुष्टो द्वारा ठगे गये पुरुषो का सज्जनो मे भी अविश्वास हो जाता है ।
 जैसे—दूध मे जला हुआ बालक दहो को भी फूंक मारकर खाता है ।

९. पिशुन छल्यो नर सुजन सौ, करत विशास न चूक ।
 जैसे दाघ्यो दूध को, पिवत छाछ को फूंक ॥



१. न दुर्जनः साधुदशामुपैति, बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाण ।
आमूलसिक्तः पयसा घृतेन, न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ॥

—चाणक्यनीति ११।६

अनेक प्रकार से शिक्षा देने पर भी दुर्जन सज्जनता को प्राप्त नहीं होते ।
जैसे—वार-वार दूध-घृत में सीचा हुआ भी नीम का वृक्ष मीठा नहीं
होता ।

२. नलिका गतमपि कुटिल, न भवति सरल शुन पुच्छम् ।
तद्वत् खलजन हृदय, बोधितमपि नैव याति माधुर्यम् ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २६

नली में रहने पर भी कुत्ते की पूँछ मीठी नहीं होती, टेढ़ी ही रहती है ।
इसी प्रकार बोध देने पर भी दुष्टों का हृदय मधुर नहीं होता ।

३. काली ऊन कुमाणसां, चढै न दूजो रग । —राजस्थानी कहावत

४. खल सत्क्रियमाणोऽपि, ददाति कलहं सताम् ।
दुग्धघोतोऽपि किं याति, वायस-कलहसताम् ॥

—शाङ्गधर

सत्कार करने पर भी दुर्जन मज्जनो को बलेश ही देता है, दूध से घोने
पर भी काग हंस नहीं बनता ।

५. Black will take no other hue,

वर्नैक विल टेक नो अदर ह्य ।

—अंगरेजी कहावत

शुकर घोने में बद्यिया नहीं होता ।

६. गधेड़ी गगा नहाय पण घोडी न
सीदी भाई सी मण सावुण

७. कि मर्दितोऽपि कस्तू

कस्तूरी से मयने पर

८. अपि निर्वाणमाया

आग बुझ भले ही जा

९. गधे को उटादो जो

दुलत्ता चलाना न

जाहिल के नेकी-वदी

के होते हैं अन्धे के दिन-रात

१०. दुर्जन कवहु न सूधने, माँ साधन के सग ।

सूँज भिजोवै ग ग मे, ज्यूं भीजें ज्यू तंग

११. दुष्ट मे अलग होते समय एक साधु रोने लग

“मेरे साथ इतने दिन रह कर भी तू न

रहा हूँ ।”

१२. विगड्या तीवण कदे आगें ही मुघ

१३. दुगुनी फीस—दो विद्यार्थी बीन बजाने व

षा बीर दूसरा कुछ सीया हुआ । शिक्षक

बीर दूसरे से पूंगे । वयोकि नए मनुष्य की

फठिन हे ।

१. दुर्जनं प्रथमं वन्दे, सज्जन तदनन्तरम् ।

मुखप्रक्षालनात्पूर्वं, गुदप्रक्षालनं यथा ।

—सुभाषितरत्नभांडागार पृष्ठ ५५

जैसे—मुंह धोने से पहले गुदा धोई जाती है, उसी प्रकार मैं सज्जनो से पहले दुर्जनों को नमस्कार करता हूँ ।

२. शाम्येन् प्रत्यपकारेण, नोपकारेण दुर्जन ।

—कुमारसम्भव

दुर्जनों को अपकार-चुराई से शातं करना चाहिए, उपकार-भलाई से नहीं ।

—दस्ती ह्यङ् कुशमात्रेण, वाजी हस्तेन ताड्यते ।

लकुटहस्तेन, खड्गहस्तेन दुर्जनः ।

—चाणक्यनीति ७।८

अकुश में, घोड़ों को हाथ से, सींगवाले जन्तुओं को नि कां तलवार से मारा जाता है ।

ना च, द्विविधं च प्रतिक्रिया ।

वा, दूरतो वा विसर्जनम् ॥

—चाणक्यनीति १५।३

के दो ही इनाज हैं—जूतों से उनका मुंह तोड़ देना या

जं मत्तं, रण्डा च बहुभाषिणीम् ।

मत्तोन्मत्तं, दूरतः परिवर्जयेत् ।

—सुभाषितरत्न भांडागार, पृष्ठ १६१

६. गधेड़ी गगा नहाय पण घोडी न थाय,

सीदी भाई सौ मण साबुए धुए तो पण काला ना काला ।

—गुजराती कहावत

७. कि मर्दितोऽपि कस्तूर्या, लशुनो याति सौरभम् ?

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

कस्तूरी से मथने पर भी लहसुन क्या अपनी दुर्गन्धि को छोड़ता है ?

८ अपि निर्वाणमायाति, नानली याति शीतताम् ।

बाग बुझ भले ही जाय ! ठडी नही होती ।

९ गधे को उछादो जो मखमल की भूल,

दुलत्ता चलाना न जाएगा भूल ।

जाहिल के नेकी-वदी बात एक,

के होते है अन्धे के दिन-रात एक ॥

—उर्दू शेर

१०. दुर्जन कबहु न सूधरै, सौ साधन के सग ।

मूंज भिजोवै गग मे, ज्यू भीजै ज्यू तंग ।

११. दुष्ट मे अलग होते समय एक साधु रोने लगा । कारण पूछने पर कहा—

“मेरे साथ इतने दिन रह कर भी तू नही सुधर सका इसलिये रो रहा हूँ ।”

१२. विगड्या तीवरा कदे आगै ही सुधर्या हा ।

—राजस्थानी कहावत

१३. बुगुनी फीस—दो विद्यार्थी वीन वजाने की कला सीखने गए । एक नया

था और दूसरा कुछ सीखा हुआ । शिक्षक ने नए से आधी फीस मागी

और दूसरे से पूरी । क्योंकि नए मनुष्य की अपेक्षा विकृत को सुधारना

फठिन है ।



१. दुर्जनं प्रथमं वन्दे, सज्जन तदनन्तरम् ।

मुखप्रक्षालनात्पूर्वं, गुदप्रक्षालनं यथा ।

—सुभाषितरत्नभांडागार पृष्ठ ५५

जैसे—मुंह धोने से पहले गुदा धोई जाती है, उसी प्रकार मैं सज्जनों से पहले दुर्जनों को नमस्कार करता हूँ ।

२. शाम्येन् प्रत्यपकारेण, नोपकारेण दुर्जन ।

—कुमारसम्भव

दुर्जनों को अपकार-बुराई से शातं करना चाहिए, उपकार-भलाई से नहीं ।

३. हस्ती ह्यङ्कुशमात्रेण, बाजी हस्तेन ताड्यते ।

शृङ्गी लकुटहस्तेन, खड्गहस्तेन दुर्जन ।

—चाणक्यनीति ७।८

हाथी को केवल अकुश से, घोड़ों को हाथ से, सींगवाले जन्तुओं को लाठी से और दुर्जनों को तलवार से मारा जाता है ।

४. खलाना कण्टकानां च, द्विविधं च प्रतिक्रिया ।

उपानद्मुखभङ्गो वा, दूरतो वा विसर्जनम् ॥

—चाणक्यनीति १५।३

दुष्टों और काटों के दो ही इलाज हैं—जूतों से उनका मुंह तोट देना या उनसे दूर रहना ।

५. खर श्वान गजं मत्तं, रण्डां च बहुभाषिणीम् ।

कोषवन्तं मदोन्मत्तं, दूरतः परिवर्जयेत् ।

—सुभाषितरत्न भांडागार, पृष्ठ १६१

गदहा, कुत्ता, मत्त हाथी, अधिक बोलनेवाली विधवा स्त्री, क्रोधी और मदोन्मत्त—इन सबका दूर से ही त्याग कर देना चाहिए ।

६. खीरा मुख तें काटिये, मलिये लौण लगाय ।
रहिमन कडुवे मुखन को, चहिये यही सजाय ।

७. मुख ऊपर मीठास, घटमांही खोटा घड ।
इसडा सू डकलास, राखीजे नहि राजिया ।

—सोरठा सप्रह

८. शठे शाठ्य समाचरेत् ।

—सस्कृत कहावत

दुष्ट से दुष्टता करनी चाहिए ।

९. Tit for tat

टिट फोर टैट

—अंग्रेजी कहावत

जैसे को तैसा ।

१०. वाप सूं करै वी रें वाप सूं करणी ।

● कांकरै री मारसी, जिको पसेरी री खासी ।

—राजस्थानी कहावतें



१. मुख पद्मदलाकारं, वाचा चन्दनशीतला ।
हृदय क्रोधसयुक्त, त्रिविधं धूर्तलक्षणम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५७

धूर्त व्यक्ति के तीन लक्षण हैं । उसका मुंह कमलपत्रवत् खिला होता है वाणी चन्दनवत् शीतल होती है और हृदय क्रोध से भरा हुआ होता है ।

२ असती भवति सलज्जा, क्षार नीरं च शीतल भवति ।
दम्भी भवति विवेकी, प्रियवक्ता भवति धूर्तजन ॥

—पञ्चतन्त्र १।४५१

कुलटा स्त्री अधिक लज्जा करती है, खारा जल ज्यादा ठंडा होता है, कपटी व्यक्ति विवेक अधिक दिखलाता है और धूर्त मनुष्य मीठा बोलता है ।

३. धूर्त-सम्बन्धीकहावतें—

● टु मच करटिसी टु मच क्रैपट ।

—अंग्रेजी कहावत

● अतिभक्तिश्चौरस्य लक्षणम् ।

—संस्कृत कहावत

● अतिभक्ति चारेर लखन ।

—बंगला कहावत

● शकल मोमना, करतुत काफरां ।

—पंजाबी कहावत

- बँवर्ता-बँवतां आंख्यां में घूड नाख दे ।
- बेच र जगात को भरै नी ।
- रोटी खाणी शक्कर स्यूं, दुनियां ठगणी मक्कर स्यूं ।
—राजस्थानी कहावतें
- ठाठ तिलक और मधुरी बानी, दगावाज की यही निशानी ।
- ओछी गर्दन दगावाज ।
- आंख का अन्धा गाठ का पूरा । उगली पकडते पहुँचा पकड़ा ।
—हिन्दी कहावतें

४. नराणा नापित्तो घूर्तं, पक्षिणा चैव वायसः ॥

चतुष्पदां शृगालस्तु, स्त्रीणां घूर्ता च मालिनी ॥

—घ्राणकथनोक्ति ५।२१

- पुरुषो मे नाई, पक्षियो मे काग, पशुओ मे गीदड़ और स्त्रियो मे मालिन-
ये घूर्तं माने जाते हैं ।
- ५. बिल्ली गुरु बगलो कियो, वरण ऊजलो देख ।
पार किसी विघ ऊतरै, दोना री गति एक ।



१ जो गुण अपने में नहीं है, उसे दिखाने की कोशिश करना ढोंग है।

—कल्पयुशियस

२. सफेद कमीज के नीचे गन्दी बनियान हो सकती है, सीता-मावित्री के गीत गानेवालों के कमरे में कुलटाओं के चित्र हो सकते हैं, गीता-भागवत टेबल पर रखनेवालों के पुस्तकालय में कोकशास्त्र मिल सकते हैं तथा मुर्खों का ढोंग करनेवाले अन्दर ने परम दुखी हो सकते हैं। अतः बाहर के रूप से अन्दर के गुणों का अन्दाज नहीं लग सकता।

—आत्मविकास

३. ऊंची दुकान का फीका पकवान।

—हिन्दी कहावत

४. मिन्नी केदारककण पहर्यो।

● मिन्नी तीर्था न्हा र आई।

—राजस्थानी कहावतें

५. कल का जोगी पाँव तक जटा।

—हिन्दी कहावत

६ जीवता पूमडु पाणी न्हि ने मूर्झा मस्राणा मा गाय।

● जीवता सेक्या कालजा ने मूर्झा द्वाजियानो शोर।

● सो-मो ऊँदरा मारी ने मिन्नीवाई पाट्टे व्रैठा।

● नात धणी बदली ने सती थया।

—गुजराती कहावतें

७. मारया मार र तीसमारत्तां वप्या।

—राजस्थानी कहावत

१. मृद्घटवत् सुखभेद्यो, दुःसधानश्च दुर्जनो भवति ।
सुजनस्तु कनकघटवद्, दुर्भेद्यश्चाशुसधेय ॥

—पञ्चतन्त्र २।३८

दुर्जन को मिट्टी के घड़े की तरह फोड़ना सरल है, किन्तु उसे फिर से जोड़ना कठिन है तथा सज्जन को स्वर्ण-घटवत् फोड़ना कठिन है, किन्तु कदाच फूट जाय तो उसे जोड़ना सरल है ।

२. मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्, कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं, कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥

—हितोपदेश १।१०१

दुरात्माओ का सोचना, कहना और करना भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है तथा महात्माओ के मोचने, बोलने और करने में समानता होती है ।

३. विद्यामदो धनमद-स्तृतीयोऽभिजनो मद ।
मदा एतेऽवलिप्ताना—मेत एव सता दमा ॥

—चिदुरनीति २।४४

विद्या का मद, धन का मद और तीसरा ऊँचे कुल का मद—अभिमानियों के लिए तो ये मद हैं, लेकिन सज्जनों के लिए ये ही दम के माधन हैं ।

४. रक्तत्वं कमलाना, सत्पुरुषाणा परोपकारित्वम् ।
असनां च निर्दयत्व, स्वभावमिद्ध त्रिपु त्रितयम् ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ८७

कमलो मे खतता, सज्जनो मे परोपकार वृद्धि और दुर्जनो मे निर्दयता क्रमश तीनों मे ये तीन बातें स्वभावसिद्ध हैं ।

- ५ शरदि न वर्षति गर्जति, वर्षति वर्षानु नि स्वनो मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ४६

शरदऋतु मे मेघ गर्जता है—वर्षता नहीं, किन्तु वर्षाऋतु मे चुपचाप बरसने लगता है । नीच व्यक्ति बोलता है पर करता नहीं, किन्तु सत्पुरुष बोलता नहीं—करता है ।

- ६ नालिकेरसमाकारा, दृश्यन्ते हि सुहृज्जना ।
अन्ये वदरिकाकारा, वहिरेव मनोहरा ॥

—हितोपदेश १।६४

सज्जन नाग्यल के समान ऊपर से कडे होते है और अन्दर मोठे होते हैं एव दुर्जन बेरो की तरह केवल बाहर मे ही मनोहर होते हैं ।

- ७ विद्या विवादाय धन मदाय, शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य माधोर्विपरीतमेतज्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

—भवभूति के गुणरत्न से

दृष्टपुण्यो की विद्या विवाद के लिए, धन अभिमान के लिए और शक्ति (बल) दूनगो को दु व देने के लिए है तथा सज्जनो को पूर्वोक्त चीजें इनमे बिलकुल विपरीत हैं । यथा—विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति दूनगो को ध्सा करने के लिए होती है ।

- ८ सत्यज्य सूर्पवह्नीपान् गृह्णाति पण्डितः ।
दोषगाहो गुणत्यागी, पल्लोनीव हि दुर्जनः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५६

पण्डित छाज की तरह दोषो को छोडकर गुणो को ग्रहण करता है और दुर्जन पालिनी की तरह गुणो को त्यागकर दोषो को ग्रहण करता है ।

६. श्लोकस्तु श्लोकतां याति, यत्र तिष्ठन्ति साधवः ।

लकारो लुप्यते तत्र, यत्र तिष्ठन्त्यसाधवः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ४७

साधुओं के पास श्लोक सुयश को प्राप्त होता है और असाधुओं के पास उसका लकार लुप्त होकर वह श्लोकरूप में परिणत हो जाता है ।

१०. सूची मुख अरु पीठ सम, दुर्जन-सुजन वखान ।

छिद्र करत इक शठ सहस, पूरत इक गुनवान ॥

११. दुर्जन री किरपा बुरी, भली सज्जन री त्रास ।

जद सूरज गरमी करै, तव वरसण री आस ॥

● दुर्जन री वाता बुरी, भली सज्जन री लात ।

वै वातां लातां जिसी, वै लातां है वात ॥

—राजस्थानी बोहे

१२. गुरु नानक शिष्यो सहित एक गाव मे ठहरे, लोगो ने खूब सेवा की ।

प्रातः विदा होते ममय कहा—उजड जाओ । दूमरे एक गाव मे फिर

ठहरे, लोगो ने पत्यर मारे । जाते समय बोले—बसते रहो । शिष्यो के

पूछने पर गुरु नानक ने तत्त्व बतलाया—वे सज्जन है, जहाँ जाएँगे

दुनियाँ को सुघारेंगे और ये विगाड़ेंगे, क्योंकि दुष्ट है ।

१३. दुर्जन जाता है जहाँ, फैलाता है पाप ।

काला करता कोयला, पानी को चुपचाप ॥

—दोहा-संदोह

१४. यात्री ने एक वृद्ध मे पूछा—यह गाव कैसा है, मैं यहाँ बसना चाहता हूँ ?

वृद्ध—पहने बता कि तू जहाँ से आया है, वह गाँव कैसा-क है ?

यात्री—वह तो एक नरक के गमान है ।

वृद्ध—तो फिर यह गाव उमगे भी नराव है ।

इतने में दूमरे यात्री ने आकर पूछा—गाँव कैसा है ?

वृद्ध—तेरेवाला कैसा-क है ?

यात्री—मेरेवाला तो स्वर्ग जैसा है ।

वृद्ध—यह उससे भी अच्छा है ।

पहला विस्मित होकर तत्त्व पूछने लगा ।

वृद्ध ने कहा—बुरे के लिए नारा नंसार बुरा है एवं अच्छे के लिए अच्छा है, अतः तू खुद अच्छा बन ।



१. भलाई-बुराई का अभाव नहीं, वरन् उस पर विजय है ।
—सर अनैस्ट बोर्न
२. संपूर्ण भलाई और श्रेष्ठता का किरीट है—बन्धुत्व की भावना ।
—एडविन मार्कहम
३. भलाई जितनी अधिक की जाती है, उतनी ही अधिक फलनी है ।
—मिल्टन
४. जो नेकी लेकर आए, उसके लिए उसका दसगुना है । जो बदी लेकर आये, उसे उमका बराबर बदला दिया जाएगा, उम पर जुल्म नहीं किया जाएगा ।
—कुरान ६।१६०
५. जो व्यक्ति भलाई में प्रेरित होकर भलाई करता है, वह न तो प्रशंसा का आकांक्षी होता है और न पुरस्कार का ।
—विलियम पेन
६. हमारा उद्देश्य संसार के प्रति भलाई करना है, अपना गुणगान करना नहीं ।
—घिवेकानन्द
७. नेकी कर दरियाव में डाल ।
—हिन्दी-कहावत
८. बुराई का बदला भलाई से दो ।
—कुरान २३।८६

६ घुराई करने के अवसर तो दिन मे सौ-सौ बार आते हैं, किन्तु भलाई का अवसर तो वर्ष मे ही एक बार आता है ।

—वाल्टेयर

१०. जो तोको काँटा बुवै, ताहि वोव तू फूल ।
तोहि फूल को फूल है, ताको है तिरसूल ॥

—कवीर

11 Bless them those curse you

—वाइबिल

ब्लेस देम दोज कर्स यू ।
तुम्हे शाप दे, उन्हे भी आशीर्वाद दो ।

12. Love your enemies

—अप्रैजो कहावत

लव योर एनीमीज !
तुम्हारे शत्रुओं से भी प्रेम करो ।

१३ समर्थगुरु रामदास के शिष्यों ने श्वेत से ईख तोड़ ली । मालिक ने गुरु-सहित शिष्यों को पीटा । पता चलने पर राजा ने श्वेतवाले को बुलाकर गुरुजी में पूछा—इसे क्या मजा दू ? गुरु ने कहा—जगत माफ करदो ।

१४ श्रावक बनारसीदासजी ने मड़क पर पेगाव किया । मिपाही ने घप्पड़ माग । उन्होंने बादशाह याहजहाँ ने कहकर उनको नौकरी बढवाई ।

१५. मजबूतीपनो रखनो मन में, दुख दीनपनो दरसावनो ना ।
वहनी कुलरोत सुमारग में, हरितें हिय हेत हटावनो ना ॥
“चिमनेश”। खुशी हंस बोलन मे, बिन म्बारथ वर वसावनो ना ।
जग जेती भलाई बने सो करो, मर जावनो हे फिर आवनो ना ॥१॥
घर स्वारथ हो या कुम्वारथ हो, कहि वात पिछे सिट जावनो ना ।
हरिनाम भरोसे कियो सो कियो, करि काम पिछे पिछतावनो ना ॥
दुख आनि परे महनो सब ही दुख देख घनो घबरावनो ना ।
जग जेती भलाई बने सो करो, मर जावनो हे फिर आवनो ना ॥२॥

- कोई खूबी नहीं होती है, जिस इन्सान में 'दानिश' ।
समझता फख अपना है, वह औरों की बुराई में ॥

—उर्दू शेरों

६. Evil to him who evil thinks

—अंग्रेजी कहावत

इविल टू हिम, हू इविल थिंक्स ।

बुरा पराया जो करे, बुरा आपका होय ।

७. चाह करना चाह दरपेश ।

—पारसी कहावत

कुआं खोदनेवाले के आगे कुआं ।

८. हार्म सेट हार्म गेट ।

—अंग्रेजी कहावत

कर बुरा हो बुरा ।

९. पुवा बणाया चीनी घाली, सत्ता नै जीभावण हाली ।

कीधा स्त्री खाधा भरतार, खाड खणें तो कूवो त्यार ॥

साधु को मारने के लिए सेठानी ने मीठा जहर डालकर बनाए,
लेकिन उन्हें उमी के पति ने खाया और मृत्यु को प्राप्त हो गए।

१०. रुपिया दीजो रोकडा, मत दीजो

घर में आघो घाल ने, काटी ली

ब्राह्मण के माय बुराई करने से पुरं

कटी

११. बुरा किसी का मत करो, गर्चे

बुरा बुराई का करो, बेशक

१२. कोयला खासी जिकों रो मुँहडो कालो हुसी ।

● सेर नै सवा सेर त्यार है ।

—राजस्थानी कहावतें

१३. विलाडी ने कह्ये शीकु दूटतु नथी ।

राडी-राड ना शाप लागता नथी ।

● सती शाप दे नही अने गखणी ना शाप लागे नहि ।

—गुजराती कहावतें

१४. कागला री दुराशीप सू ऊँट को मरैनी ।

ढेढा री दुराशीप सू गाय को मरैनी ।

राडां री दुराशीप सू टावर को मरैनी ।

—राजस्थानी कहावतें

१५. बुराई की माँ गरीबी है और बाप अज्ञान है ।

१६. बुराई नहीं करने के तीन कारण होते हैं—

(१) राज्यभय (२) समाजभय (३) आत्मभय ।

१७. पुलिस की बुराइयाँ—रिश्वत लेना, मद्य पीना, चोरो-डाकुओं से मिल जाना आदि ।

१८. लोग कहते हैं, अहिंसा आदि में आज के जमाने में काम नहीं चलता, तो क्या हिंसा आदि में चल सकता है ? क्या कोई मनुष्य धोलेने का एव धमा करने का त्याग कर सकता है ?

१९. मूर्ख रोगी बाबलो, बाल चिया मतवाल ।

उनका बुरा न मानिये, जो देवें लख गाल ॥



१. संसर्गजा दोषगूणा भवन्ति ।

—सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा

दोष और गुण ससर्ग-भगति से ही उत्पन्न होते हैं ।

२ संतप्तायसि सस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वात्या सागरशुक्तिमध्यपतित तन्मूर्त्तिक जायते,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणा. ससर्गतो देहिनाम् ॥

—भट्ट हरिनीतिशतक, ६७

तप्तलोहे पर पड़ा हुआ पानी का बिन्दु नष्ट हो जाता है, कमलपत्र पर रहा हुआ वही मोती के समान मुगोभित होता है तथा स्वाती नक्षत्र में नमुद्रम्वित मीप के मुह में पड़ा हुआ वही जलबिन्दु मोती बन जाता है । तात्पर्य यह है कि अधम, मध्यम एवं उत्तम गुण मनुष्यों को संसर्ग में ही प्राप्त होते हैं ।

३. हीयते च मतिस्तात । हीनं सह समागमात् ।

समंश्च समतामेति, विशिष्टं च विशेषताम् ।

—हिनीपदेशप्रान्ताविष्णु, ४२

नीचो के नमागम में बुद्धि क्षीण होती है, समान-व्यक्तियों के नमागम में नमान रहती है और विशिष्ट-पुण्यों के नमागम में बढ़ जाती है ।

४. अध्व शन्त्र शान्ता, वीणा वाणी नरद्व च नारी च ।

पुण्यविशेष प्राप्ता, भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ॥

—हितोपदेश २।७५

घोडा, शस्त्र, शास्त्र, वीणा, वाणी, नर और नारी—ये पुरुषविशेष की संगति से योग्य-अयोग्य बन जाते हैं ।

- ५ गुणायन्ते दोषा सुजनवदने दुर्जनमुखे,
गुणा दोषायन्ते तदिदमपि नो विस्मयपदम् ।
महामेघ क्षार पिवति कुरुते वारि मधुर,
फणी क्षीर पीत्वा वमति गरल दुस्सहतरम् ॥

—शाकुंतल

सज्जनो के वदन में दोष गुण बन जाते हैं और दुर्जनो के वदन में गुण दोष का रूप धारण कर लेते हैं । मेघ समुद्र का खारा जल लेकर उसे मीठाकर देता है और साप दूध पीकर भी दुस्सह विष छोड़ता है ।

६. सगति शोभा पाइये, सुग सज्जन के वैण ।
वो ही कज्जल ठीकरी, वोही कज्जल नैण ॥

७. गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिर, लभ्यते करिकपौलमौक्तिकम् ।
जम्बुकालयगते च लभ्यते, वत्सपुच्छ-खरचर्मखण्डनम् ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २४

मनुष्य यदि सिंह को गुफा में जाता है तो वहाँ गजकुम्भस्थल के मोती मिलते हैं और यदि मियाल (गोदड़) के स्थान पर जाता है तो बछड़े के पूंछ व गदहों के चाम का टुकड़ा मिलना है ।

८. यादृशं मनिवसते, यादृशाँश्चोपमेवने ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं, तादृग् भवति पूरुष ॥

—विदुर्नीति ४।१३

मनुष्य जैसी के पास बैठता है, जैसी की सेवा करता है और जैसा खुद बनना चाहता है—वैसा ही बन जाता है ।

९. A man is Known by the Company he keeps

—अंग्रेजी कहावत

ए मैन इज नोन वाई दी कम्पनी ही कीप्स ।

सगति के अनुमार मनुष्य पहचाना जाता है ।

१० जैसी सगति वैठिए, तैसी इज्जत पाय ।

सिर पर मखमल सेहरे, पनही मखमल पाय ॥

११ सगति से गुण होत हैं, वृधजन करत बखान ।

गाधी और कलाल की, देखो वैठ दुकान ॥

१२. कदली-सीप-भुजगमुख, एक स्वाति गुण तीन ।

जैसी सगति पाडये, तैसो ही गुण दीन्ह ॥

—रहीम

१३. एक युवक मसुर, पिता व मित्र के साथ चलता है । तीनों समय का व्यवहार भिन्न-भिन्न रहेगा ।

१४. मनुष्य कृपण या दानी जैसे भी व्यक्ति के साथ रहेगा, उम पर उसका प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य पड़ेगा ।

१५. भेड़ों के साथ रहनेवाला जगली मनुष्य, भेड़ों की तरह पानी पीने लगा ।

● एक बालक (जो लखनऊ के बनरामपुर अस्पताल में था ।) हिमक पशुओं में १२ वर्ष रहने में गान-पान एवं गमन उन्हींकी तरह करने लग गया ।

१६. तीन देव के व्यक्ति यदि साथ रहे तो उनके रहन-गहन, गान-पान एवं भाषा आदि मिश्रित होकर एक नया रूप ले लेते हैं । जंम—बीपरमेट पोदोना-कपूर में समूहधारा बन जाती है ।

१७. सगति न करने योग्य व्यक्ति—

(क) यस्य न ज्ञायते दीर्य, न कुन् न विचेष्टितम् ।

न तेन सगति कुर्या-दित्युवाच बृहस्पति ॥

जिसका बल, कुल, चेष्टायें ज्ञात न हो, उसकी सगति मत करो । (ऐसा बृहस्पति ने कहा है ।)

(ख) लोकयात्रा भय लज्जा, दाक्षिण्यं त्यागशीलता ।
पंच यत्र न विद्यन्ते, न कुर्यात् तत्र संगतिम् ॥

—चाणक्यनीति १।१०

आजीविका, भय, लज्जा, चतुराई और देने की भावना—ये पाच बातें जहाँ न हों, वहाँ सम्पर्क नहीं रखना चाहिए ।



१. अक्षोभ्यतैव महता, महत्त्वस्य हि लक्षणम् ।

—कयासरित्सागर

प्रतिकूल परिस्थिति में क्षुब्ध न होना, महापुरुषों की महत्ता का लक्षण है ।

२. निर्दम्भता सदाचारे, स्वभावो हि महात्मनाम् ।

महापुरुषों का यह स्वभाव है कि वे अपने सदाचरणों पर बनावटीपन नहीं आने देते ।

३. विवेक सह सपत्त्या, विनयो विद्यया सह ।

प्रभुत्व प्रश्रयोपेतं, चिह्नमेतन्महात्मनाम् ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ४७

संपत्ति के साथ विवेक का होना, विद्या के साथ विनय का होना और प्रभुत्व के साथ प्रश्रय-विनय का होना—ये महात्माओं के लक्षण हैं ।

४. विपदि धैर्यमधाम्बुदये क्षमा,

सदसि वाक्पटुता युधिविक्रम ।

यशसि चाभिरुचिर्व्यसन श्रुतौ,

प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६३

विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में महिष्णुता, नशा में यत्न की चतुराई, सश्रम में पराक्रम, सुख में रुचि, शास्त्रपठन में व्यग्न—ये बातें महात्माओं में स्वाभाविक होती हैं ।

५. करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गरुपाद-प्रणमनं,
मुखेसत्या वाणी विजयिभुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वच्छावृत्ति श्रुतमधिगतैकव्रतफल,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहता मण्डनमिदम् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६५

हाथों में सुपात्रदान, मस्तक पर गुरुजनो के चरणों का अभिवादन, मुँह में सत्यवचन, विजयी भुजाओं में अतुल पराक्रम, हृदय में स्वच्छ भावना और कानों में शास्त्रों का श्रवण । जो प्रकृति से महापुरुष होते हैं, उनके ये सब गुण बिना ऐश्वर्य के आभूषण हैं ।

६. पापाणरेखैव प्रतिपन्न महात्मनाम् ।

महात्माओं द्वारा लिया हुआ प्रण पत्थर की रेखा की तरह अमिट होता है ।

७. न कालमतिवर्तन्ते, महान्त स्त्रेपुकर्मपु ।

—योगवाशिष्ठ ५।१०।६

महापुरुष अपने कार्यों में कलातिक्रम नहीं होने देते अर्थात् समय के पाबन्द होते हैं ।

८. मनस्वी म्रियते कामं, कार्पण्यं न तु गच्छति ।

अपि निर्वाणमायाति, नाननो याति शीतताम् ॥

—हितोपदेश १।१३३

महापुरुष मर जाते हैं, किन्तु टूटपणता कभी नहीं करते । जाग बुझ जाती है परन्तु शीतल कभी नहीं होती ।

९. संपत्तौ च विपत्तौ च, महतामेक्यता ।

उदये मविता रक्तो, रक्तोऽन्नममये तथा ॥

—पञ्चतन्त्र २।७

महापुरुष सपत्ति और विपत्ति में एकरूप रहते हैं। देखो! सूर्य उदय होने के समय भी लाल रहता है और अस्त होने के समय भी लाल रहता है।

१०. अहो किमपि चित्राणि, विचित्राणि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं नृणाय मन्यन्ते, तद्भारेण नमन्त्यपि ॥

—देवेश्वर

महापुरुषों के चित्र कुछ विचित्र ही होते हैं। वे लक्ष्मी को तृण के समान समझते हैं, पर लक्ष्मी के भार से नम भी जाते हैं।

११. हिताय नाहिताय स्याद्, महान् सतापितोऽपि हि ।
पश्य । रोगापहाराय, भवेद्दुष्णीकृत पयः ॥

महान्पुरुष सतापित होकर भी हितकारी ही होता है, अहितकारी नहीं होता। देखो! अग्नि में गर्म कर लेने पर भी दूध रोगनाशक होता है।

१२. दुर्जनवचनाद्धारं-दग्धोऽपि न विप्रिय वदत्यार्यः ।
नहि दह्यमानोऽप्यङ्गुलं, स्वभावगन्ध परित्यजति ॥

—प्रसङ्गरत्नामली

दुष्टों के बुरावचन अंगारों में जला हुआ भी आर्यपुरुष कभी अप्रिय नहीं बोलता। जैसे-जलता हुआ भी अगर-दूध अपनी सुगन्धि नहीं छोड़ता।

१३. मपन्तु महता वित्त, भवत्युत्तलकोननम् ।
आपन्तु च महाशैल-शिखा-सघातकर्षणम् ॥

—भट्टहरि-नीतिशतक ६६

अपत्ति के समय महात्माओं का वित्त कमलवत् फीसल रहना है और आपत्ति के समय महान् पर्वत की शिखाओं के समुद्रवत् घटोर हो जाना है। तरबूट वृक्ष है कि अपत्ति में वे अमिमान नहीं करते और आपत्ति में घबराते नहीं।

१४. गवादीनां पयोऽन्येद्युः, सद्योवा जायते दधि ।
क्षीरोदधेस्तु नाद्यापि, महतां विकृतिः कुत ॥

—देवेश्वर

गाय आदि का दूध दूसरे ही दिन दही बन जाता है, किन्तु क्षीर-समुद्र का जल आज तक दही नहीं बन सका, क्योंकि बडो में विकार नहीं आता ।

१५. महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिण ।

—शिशुपालवध २।१३

महान्पुरुष स्वभाव से ही मितभाषी (कम बोलनेवाले) होते हैं ।

१६. महापुमांसो गर्भस्था, अपि लोकोपकारिण ।

—त्रिपण्डि-शलाकापुरुषचरित्र २।२

महापुरुष गर्भ में होते हुए भी लोकोपकारी होते हैं ।

१७. बडे सनेह लघुन पर करही, गिर निज सिरन सदा तृन धरही ।
निजगुन श्रवन सुनत सकुचाही, परगुन सुनत अधिक हरपाही ॥

—रामचरितमानस

१८. दोषाकरोपि, कुटिलोपि कलङ्कितोपि,
मित्रावसानसमये विहितोदयोपि ।

चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति

न ह्याश्रितेषु महतां गुण-दोषचिन्ता ॥

—चन्द्रचरित्र, पृष्ठ ७५

चन्द्रमा दोषा-रात्रि का करनेवाला है, कुटिल है, कलङ्कसहित है, मित्र-सूर्य के अस्त होने पर उदय होनेवाला है । फिर भी महादेव को प्रिय लगता है, क्योंकि महापुरुष आश्रितों के गुण-दोषों का विचार नहीं करते ।



१. विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि—

विपक्षो लङ्केशो रणभुवि सहायाञ्च कपयः ।
तथाप्येको रामः सकलमदघीद् राक्षमकुलं,
क्रियासिद्धिं सत्त्वे वसति महता नोपकरणे ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५४

लका पर विजय पानी थी, समुद्र पंरो मे तरता था, रावण जैसा दुश्मन था, रणभूमि के सहायक केवल वानर थे । इतने पर भी अकेले राम ने राक्षसकुल को नष्ट कर दिया । क्योंकि महापुरुषों के पराक्रम में ही उनकी कार्यसिद्धि रहती है, सहायक उपकरणों में नहीं ।

२. रथसूर्यकं चक्र भुजगयमिता सप्ततुरगा,

निरालम्बो मार्गश्चरणरहित सारथिर्गपि ।

व्रजत्यन्त सूर्यं प्रतिदिनमपारम्य नभसः,

क्रियामिद्धिः सत्त्वे वसति महता नोपकरणे ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५४

रथ के पहिया एक हैं, छोटे मान हैं, जिनके पैरों में नाप लिपटे हुए हैं, मार्ग निरालम्ब आकाश है एक मार्गही पागला है । इतने पर भी सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश को पार कर देता है । कारण यही है कि महापुरुषों के पराक्रम में ही उनकी कार्यसिद्धि रहती है, सहायक उपकरणों में नहीं ।

३. अनुहकुम्भे धनध्वनि, नहि गोमायु-स्तानि केमरी ।

—शिशुपालबध

सिंह मेघ के पीछे गर्जा करता है, किन्तु गीदड के पीछे नहीं। ऐसे ही बड़े आदमी छोटे के साथ नहीं उलझते।

४. तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो, मृद्गानि नीचे प्रणतानि सर्वतः ।
समुच्छृतानेव तरुन् प्रवाधते, महान् महत्येव करोति विक्रमम् ॥
—हितोपदेश २।८८

नीचे की ओर झुके हुए कोमल तृणों को वायु नहीं उखाड़ती, वह तो उच्छृंखलता से खड़े हुए वृक्षों का ही उन्मूलन करती है, क्योंकि बड़ा-बड़े के सामने ही अपना पराक्रम दिखाता है।

५. ग्राम्यशूकर ने सिंह से कहा—मेरे साथ युद्ध कर, अन्यथा मैं सबसे बड़ा दूंगा कि मैंने सिंह को जीत लिया। सिंह ने उत्तर दिया—

गच्छ शूकर । भद्रं ते, वद सिंहो जितो मया ।

पण्डिता एव जानन्ति, सिंह-शूकरयोर्वलम् ॥

—दृष्टान्तशतक

शूकर । तेरा कल्याण हो। जा, मने ही कहदे कि मैंने सिंह को जीत लिया। विद्वान्, सिंह और शूकर के बल को जानते हैं।

६. सूर-मिन्टन अंधे थे, कर्ण-ईशा में बस की कमी थी, अष्टावक्र, चाणक्य, सुकरात व धर्माईशा में रूप की कमी थी, नेपोलियन और हिटलर में धन एवं प्रतिष्ठा की कमी थी, किन्तु इन महापुरुषों ने कभी अपने में कमी महसूस नहीं की।



१. कुछ व्यक्ति जन्मजात महान् हैं, कुछ महानता प्राप्त करते हैं और कुछ पर महानता लाद दी जाती है।

—शेषशपियर

२. ऐसा कोई वास्तव में महान् व्यक्ति नहीं हुआ, जो वास्तव में नदाचारी न रहा हो।

—फ्रैंकलिन

३. मगार के इतिहास में कभी भी काफी सुलभे हुए आदमी कभी जगह नहीं हुए।

—विजम

४. न खलु परमाणोरल्पत्वेन महान् मेर किन्तु स्वगृणेन।

—नीतिवाक्यामृत २२।१६

मेर पर्यन्त अपने गुण से महान् है, परमाणु के छोटापन से नहीं।

५. कोई भी व्यक्ति अतुल्य-मात्र में आज तक महान् नहीं हुआ।

—सेमुएल जॉनसन

६. पानी जैसा घनत्व व्यक्ति, कभी महान् नहीं होता।

—यफ़

७. निकट जाने में पता लगता है कि महान्पुरुष केवल मानव ही है अतएव निकटवर्ती व्यक्तियों को वे सभी महान् प्रतीत नहीं होते।

—साइबेर

८. महान् व्यक्ति हमें महान् इसलिए लगते हैं कि हम घुटनो पर टिके हुए हैं ।

—स्टनर

९. परिमाण किसी भी व्यक्ति एवं राष्ट्र की महानता की निकृष्टतम कसौटी है ।

—जवाहरलाल नेहरू

१०. महान् दोषो से संपन्न होना भी महान्पुरुषो का ही अधिकार है ।

—रोसफ़ो

११. विश्व को महान्पुरुषो की आवश्यकता है, किन्तु उनके पुजारियो एवं खुशामदियो की नहीं ।

—वीरजी

१२. महान्पुरुष वही है, जो कहने से पहले करके दिग्गता है ।

—कन्प्यूसियस

१३. मनुष्य को तुच्छ (छोटी) बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, यदि वह उन्हीं में फंसा रहेगा तो बड़े काम कब करेगा एवं महान् कब बनेगा ।

—कन्प्यूसियस

१४. किसी महापुरुष को तब तक महान् नहीं गमकना चाहिये, जब तक उसकी मृत्यु नहीं हो जाती ।

१५. स्वामी रामतीर्थ (जब कालेज में प्रापेसर थे) ने काले पट्टे (फ़ैक बोर्ड) पर लकीर नीच कर कहा—उंग छोटी बनाओ । तब एक लड़का उंगें मिटाने लगा, स्वामी जी ने कहा—मिटानो मत । मर्गो छात्र स्तब्ध थे । इतने में एक बुद्धिमान छात्र ने उंग लकीर के नीचे बड़ी लकीर नीच दी तब वह छोटी बन गई । तब यह है कि दूसरों को मिटानो मत, अपने गुणों को बढ़ाकर महान् बनो ।

१६. गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरंधरा. ।

पंकनिमग्न हाथियो का उद्धार हाथी ही कर सकते हैं, इसी प्रकार महापुरुषो की सहायता महापुरुष ही कर सकते हैं ।

१७. महानता के विघातक दोष—

बालस्यं स्त्री-सेवा, सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम् !
सन्तोषो भीरुत्व, षड् व्याघाता महत्त्वस्य ॥

—हितोपदेश १।५

बालस्य, स्त्री-सेवा, अस्वम्यता, जन्मभूमि से प्रेम, सन्तोष और भय—ये छह दोष महानता का नाश करनेवाले हैं ।



१. महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।

—भक्तिमूत्र ३६

महात्माओं का सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है ।

२. महाजनस्य संसर्गं, कस्य नोन्नतिकारकं ?
पद्मपत्रस्थित वारि, घत्ते मारकतिं द्युतिम् ।

—पञ्चतन्त्र ३।५६

महापुरुषों का संसर्ग किसे उन्नत नहीं करता ? देखो कमलपत्र पर
ठहरा हुआ जलबिन्दु मरकतमणिवत् चमकने लगता है ।

३. कीटोऽपि सुमनसंगा-दारोहति सता शिरः ।
अश्मानि याति देवत्व, महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥

—हितोपदेश-प्रास्ताविका ४५

कीड़ा भी फूलों की संगति से सज्जनों के सिर पर पहुँच जाता है तथा
महापुरुषों द्वारा स्थापित किया हुआ पत्थर भी देवता कहलाने
लगता है ।

४. काचः काञ्चनसमगद्, घत्ते मारकती द्युतिम् ।

—हितोपदेश-प्रास्ताविका ४१

सौने के संसर्ग से काँच भी मरकतमणिवत् प्रभा धारण करने लगता है ।

५. मलयाचल गन्धेन, त्विन्धन चन्दनायते ।

मलयाचल पर रहे हुए चन्दन की सुगन्धि से साधारण वृक्ष भी चन्दन
बन जाते हैं ।

६. रथाम्बु जाह्नवी सगात्, त्रिदशैरपि पूज्यते ।

—प्रसंगरत्नावली

गलियो का गदा पानी भी गंगा में मिलने में गंगाजल कहलाकर देवों द्वारा वन्दनीय बन जाता है ।

७. स्वर्गीस्याता सिद्धरमे, शीशक-त्रपुणो अपि ।

—त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र २।३

रत्न के संयोग में शीशा और त्रपु भी सोना बन जाते हैं ।



१ He who humbles shall be exalted

—अग्नेजी कहावत

हि हू हम्बल्स शैल वि एग्जाल्टेड ।

बड़ा बनना हो तो छोटा बनो ।

२. गांधीजी थर्डक्लास में मुसाफिरी कर रहे थे । किसी के पूछने पर बोले—
“भारत की जनता गरीब है और मैं जनता का सेवक हूँ । फोर्थ क्लास
तो है नहीं, अन्यथा उसी में बैठता ।”

३. प्रभुता मेरुसमान, आप रहै रजकण जिसा ।
तिके पुरुष धन जाण, रविमण्डल में राजिया ।

—सोरठा संग्रह

४. हाथी हीडत देख, खर कूकर लव-लव करे ।
बड़पण तगो विवेक, क्रोध न आणै किसनिया ।

—सोरठा संग्रह

५ छोटे आदमियों से गदव्यवहार करके बड़े आदमी अपना बड़प्पन प्रकट
करते हैं ।

—फार्लाइल

६. तीन बड़प्पन पाते हैं—(१) दूसरों को थोटा भगमा देकर अधिक काम
करनेवाले (२) काम कर देने के बाद अहंकार न करनेवाले (३) दूसरों
को सफल होते देखकर रंज न करनेवाले ।

७. वाताम्यू बड़ा को हुवैनी ।

—राजस्थानी कहावत

८ पहले थे हम मंद, पीछे नारी कहाये ।
कर गंगा में स्नान, पाप सब धोय गमाये ॥
कर शिल्ला से युद्ध, घाव वरछिन के खाये ।
उछल पडे अग्निकुड में, तब हम बडे कहाये ॥

—भाषाश्लोकसागर

९. मुमेर की वंठक में दो डोरा हुवे ।

● बडा लाज री खातर मरे ।

—राजस्थानी कहावतें

१०. High winds blow on high hills

—अंग्रेजी कहावतें

हाई विंड्स ब्लो ओन हाई हिल्स ।

बडो की बडी वात ।

११. बडी रात रा बडा तडका ।

● बडा रा बडा काम ।

● मोटां री पंसेरी ही भारी ।

● बडा कहै ज्यूं करणो, करै ज्यूं नही करणो ।

● मोटा री वात करै मो बिना मौत मरे ।

● मोटारे मांयने बडनो सोहरो, पण निकलणो दोहरो ।

● बडा रे कान हुवे, आंर्या को हुवैनी ।

● राम जठे अयोध्या,

● रागाजी धरपे जठे उदयपुर ।

—राजस्थानी कहावतें



१. गुणैरुत्तमता यान्ति, नोच्चैरासनसस्थिता ।

प्रासादशिखराहूढ, काक किं गरुडायते ॥

—चाणक्यनीति १६।६

ऊँचे आसन पर बैठने-मात्र से मनुष्य उत्तम नहीं बन जाता, गुणों से बढ़ता है। क्या महल के शिखर पर बैठने से काग गरुड बन जाता है ? कभी नहीं।

२. सर्वोत्तम मनुष्य वे ही हैं, जो अवमरो की वाट न देखकर उनको अपने दाम बना लेते हैं।

—ई. एच चेपिन

३. भणेल करता गणेल सरस, गणेल करता फरेल सरस अने फरेल करता कपायेल सरस।

—गुजराती कहावत

४. जलेर् मध्ये गगाजल, फलेर् मध्ये आम।

नारीर् मध्ये सीता सती, पुरुषेर् मध्ये राम ॥

—वगला कहावत

५. झाडी-वंको भावुवो, रणवंको कुशलेण।

नारी-वंकी पुगल तणी, नर वंको मरुधर देण ॥

६. उत्तमपुरिसा निविहा पण्णत्ता, न जहा—धम्मपुरिसा, भोगपुरिसा,

कम्मपुरिसा—१. धम्मपुरिसा—अग्रिहंता, २ भोगपुरिसा—चक्र-

वट्टी, ३ कम्मपुरिसा-वासुदेवा।

—स्यानांग ३।१।१२८

उत्तम पुरुष तीन प्रकार होते हैं—(१) धर्मपुरुष (२) भोगपुरुष (३) कर्म-

पुरुष। धर्मपुरुष—तीर्थंकर, भोगपुरुष—नक्रवर्ती और कर्मपुरुष—

यामुदेव माने जाते हैं।

१. दग्ध-दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चन कान्तवर्णं,
घृष्ट-घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दन चारुगन्धम् ।
छिन्नं-छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादद चेक्षुस्वण्ड,
प्राणान्तेऽपि प्रकृति-विकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ॥

बार-बार जलाने पर सोना अधिक नमकीला बनता है, बार-बार घिसने पर चन्दन अधिक गुग्गुलु फँसता है। बार-बार काटने पर दक्षुस्वण्ड अधिक मोठा स्वाद देता है—तत्त्व यह है कि प्राणान्त कष्ट में भी उत्तम-पुरुषों की प्रकृति में विकार नहीं आता।

२ गव्हा चा आटा आणी कुगुव्या चा वेटा ।

—मराठी कहावत

मताने पर भी उत्तम-उत्तम ही फल देता है।

३ आपत्ताति-प्रथमनफना सपदो ह्युत्तमानाम् ।

—मेघदूत १।५३

उत्तमपुरुषों की संपत्तियाँ, दुःखितों के दुःखों को दान्न करने के लिए ही होती हैं।

४ त्युञ्जन्मृगमनस्त्रा हि, प्राणानपि न नत्पथम् ।

—कथामरितमागर

उत्तमपुरुष प्राणों का त्याग कर देते हैं, लेकिन मन्त्रमार्ग का नहीं।

५. प्रारब्धने न ननु विघ्नभयेन नीने,
प्रारब्ध विघ्नविहृता रिन्मन्ति मया ।
विघ्ने पुन पुनरपि प्रविर्यमानाः,
प्रारब्धमुनमजना न परिन्वजन्ति ॥

—मनुस्मृति नोतिमनक २७

नीच-मनुष्य विघ्नो के होने के भय से काम का आरम्भ ही नहीं करते । मध्यम-मनुष्य काम का आरम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्न होते ही उसे बीच में छोड़ देते हैं । परन्तु उत्तमपुरुष जिस काम का आरम्भ कर देते हैं, उसे बार-बार विघ्न आने पर भी पूरा करके ही छोड़ते हैं ।

६. केषा न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेपु ॥

—मेघदूत

उत्तमपुरुषो की संपत्तियाँ, दु खितो के दु खो को शान्त करने के लिए ही होती है ।

७. शास्त्र बोधाय दानाय, धन धर्माय जीवितम् ।

वपु परोपकराय, धारयन्ति मनीषिणः ॥

—चन्द्रचरित्र, पृष्ठ ७०

उत्तमपुरुष शास्त्रपठन ज्ञान के लिए, धन दान के लिये, जीवन धर्म के लिए और शरीर परोपकार के लिए धारण करते हैं ।



१. परवादे दशवदन , पररन्ध्रनिरीक्षणो सहन्नाधः ।

सद्वृत्तवित्तहरणो, बाहुसहन्नाऽर्जुनो नीच ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५६

नीच व्यक्ति परनिन्दा करने के लिए दशवदन (दस मुँहवाला-रावण) है, पर-ध्रिद्र देखने के लिए सहन्नाध (हजार नेत्रोवाला-इन्द्र), और दूमरो का मदाचाररूपी घन हरने के लिए मद्रन्वबाहु (हजार भुजाओं-वाला अर्जुन) है ।

२. यस्मिन् देशे समुत्पन्न-स्तमेव निज-चेष्टितैः ।

दूपयत्यचिरेणैव, घुणकीट इवाधम ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार पृष्ठ ५६

घुण (कीट) जिन लकी में पैदा होता है, उसी को मराना करना है । ऐसे ही नीच व्यक्ति दुराचरणों द्वारा अपने ही वंश को दूषित करना है ।

३. चणुका इव नीचा, नोदरम्यापिना अपि नावि वृर्वाणान्तिष्ठन्ति ।

—नीतिवाचसामृत २७।३०

नीच मनुष्य चणुके के समान हैं, जो पेट में खाने पर भी बाबाज किए बिना नहीं टिकते ।

४. बहुत किये हू नीच तो, नीच सुभाव न जात ।

छाटि ताल जलकुम्भ में कौआ चींच भरत ॥

—युं रकवि

५. नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य, स्वामिन हन्तुमिच्छति ।
मूषिको व्याघ्रतां प्राप्य, मुनिं हन्तुं गतो यथा ॥

—हितोपदेश

नीच अच्छे पद को पाकर अपने स्वामी को ही मारना चाहता है । जैसे-
चूहा बाघ बनकर मुनि को मारने चला ।

- एक योगी की भोपड़ी में चूहा फिर रहा था । उसे पडकने विल्ली दौड़ी । योगी को दया आई और मंत्रशक्ति से चूहे को विलाव बना दिया । विल्ली तो भाग गई, लेकिन उम पर कुत्ता दौड़ा । योगी ने विलाव को बाघ का रूप दे दिया । उसे भूख लगी और कृतघ्न योगी को ही खाने के लिए तैयार हुआ । योगी ने कहा—‘पुनर्मूषको भव’ वह बाघ तत्काल चूहा बन गया और विल्ली आकर उसे खा गई ।

६. कुजात मनायां वांथां पडे ।
सुजात मनायां, पगां पडे ॥

- हाथी रा दात, कुत्ते री पूंछ और कुमाणस री जीभ सदा आंटी ही रैवै ।

—राजस्थानी कहावत

७. वरं प्राणत्यागो न पुनरवमानामुपगमः ।

मर जाना भला, पर नीच का नङ्ग अच्छा नहीं ।

८. नीच चंग सम जानिवो, मुनि लखि “तुनमीदास” ।
ढील देत महि गिर परत, खैचत चटत अकाम ॥



१. सौ नीच र एक आन्त्र मीच ।

—राजस्थानी कहावत

२. सौ में फूल सहें में काणो, लाव्वां माहो ईंचाताणो ।

ईंचाताणो करी पुकार, मुभमे अधिको है मजार ॥

३. खाटरा खटदोपेण, अण्टदोपेण मजरा ।

बाडा बहत्तर दोपेण, काणे सख्या न विद्यते ॥

४. काणियो, वाणियो ने स्वामीनाराणियो ।

—गुजराती कहावत

५. भस्माङ्गुलिर्वज्रोड्यायी, बालश्रीची तथा त्रिही ।

धारावर्ती चक्रवर्ती पडेते पूर्णपाघमा ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३८०

स्त्री की गुलाबी करनेवाले पुरुषों की अपेक्षा से छ प्रकार के अधम-पुरुष होते हैं—

(१) भस्माङ्गुली—प्रात उठते ही स्त्री के आदेशानुसार प्रतिदिन पृन्हा जलानेवाला ।

(२) चक्रोद्दामो—प्रात उठते ही स्त्री के आदेशानुसार पानी भरने के लिए नामात्र पर जानेवाला एव वहाँ बसुनों को उग्रनेवाला ।

(३) बालश्रीची—प्रात उठते ही स्त्री के आदेशानुसार प्रतिदिन बालश्री को टट्टी चिठानेवाला ।

(४) त्रिही—स्त्री को हर बात पर तीली लगते ही चिठानेवाला ।

(५) धारावर्ती—स्त्री के बसाए हुए पादों को पूरे तरह से धारनेवाला ।

(६) चक्रवर्ती—स्त्री के कुचप में घुसने पर पूरे से पला रहनेवाला ।



१ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतासि त एव धीराः ।

—कुमारसम्भव १।५६

विकार उत्पन्न होनेवाली वस्तु पाम होने पर भी जिनका मन विकृत नहीं होता, वास्तव में वे ही धीर पुरुष हैं ।

२. चलन्ति गिरयः काम, युगान्तपवनाहता ।

कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव, धीराणा निश्चलं मनः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ८१

प्रलयकाल के पवन से चलकर पर्वत भले ही अपने स्थान से हट जाएँ परन्तु धीरपुरुषों का निश्चल मन घोर कष्टों में भी विचलित नहीं होता ।

३. निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा म्नुवन्तु,

लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अथैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,

न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पद न धीराः ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक-८४

नीतिज्ञपुरुष चाहें निन्दा करें, चाहें प्रशंसा करें । लक्ष्मी चाहे आए चाहे जाए तथा चाहे आज ही मरना पड़े, चाहे युगान्तर में, लेकिन धीरपुरुष न्यायमार्ग से एक कदम भी पीछे नहीं हटते ।

४. काच कधीर अधीर नर, कस्या न उपजै प्रेम ।

कसणी तो धीरा सहै, के हीरा के हेम ॥

५. क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कगयनं,

क्वचिच्छाकाहार क्वचिदपि च शान्त्यादिनरुचिः ।

क्वचिक्त्वाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बर धरो,
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च मुसम् ॥

—भर्तृहरिनोतिशतक ८२

कभी भूमि पर गयन होता है और कभी पत्युओं पर, कभी केवल शाक
का आहार प्राप्त होता है और कभी स्वादिष्ट मातृयोदन, कभी गुदडो
ओट कर समय बिताना होता है और कभी दिव्यवस्त्र पहनकर ।
वास्तव में कार्यार्थी मनस्वी (धीर-गुग्ण) दुःख-दुःख की परवाह न करके
गमभाव रहता है ।

६. तं तु न विज्जज्ञ कज्ज, जं धिडमतो न साहेड ?

—बृहत्कल्पभाष्य, १३५७

वह कौन-सा रहित कार्य है, जिसे धर्मवान् व्यक्त सम्पन्न नहीं कर
सकता ।

७. अगणवेदी वमुधा, कुल्या जलधि' स्थनी च पातानम् ।
वल्मीकश्च मुमेह, वृत्तप्रतिज्ञस्य धीरस्य ॥

—अभितानशाबुन्तत

अपनी प्रतिज्ञा पालने में हृद धीरगुग्ण के लिए पृथ्वी अंगन की
वेदी के समान, समुद्र एक जाली के समान, पातान समस्त भूमि के
समान और मेघ पर्यंत वल्मीक [कुर्मपर्यंत] के समान हो जाता है, उपनि-
रहित में रहित काम भी इसके लिए करने हो जाता है ।

८. दरिद्रता धीरतया विनाजते ।

—जाणशयनीति, ६।१४

धीरता में दरिद्रता भी समझ जाती है ।

९. धिनो तु मोहस्य उपनमे होति ।

—विनीचनार्थ ८५

मोह का उपनम होने पर ही धृति (धीरता) होती है ।



१. धैर्य के नेत्रों से देखने पर महान् से महान् संकट भी घुम्र के बादलवत् क्षणभर में अदृश्य हो जाता है ।

—वीरजी

२. धैर्यं न त्याज्यं विधुरेऽपि काले ।

विपत्ति के समय भी धैर्य को नहीं छोड़ना चाहिये ।

३ घन । धीरज नहीं भूलिये, देख दुखों की चोट ।

सागर में आती रही, सदा से भरती-ओट ।

—दोहा-सदोह

४. न स्वधैर्यादृते कश्चिदग्गुह्यरति मकटात् ।

—योगवासिष्ठ ५।२६।१०

अपने धैर्य के बिना और कोई भी मनुष्य का संकट में उद्धार नहीं कर सकता ।

५ धैर्य जिसके पास है, वह जो चाहे प्राप्त कर सकता है ।

—फ्रैकनिन

६ वे कितने नियंत्रण हैं, जिनके पास धैर्य नहीं है । क्या आज तक कोई काम 'संघ' के बिना ठीक हुआ है ?

—शेषशिवर

७. शनैः कन्था शनैः पन्था, शनैः पर्वतलक्षणम् ।

शनैर्विद्या शनैर्वित्तं, पन्नैतानि शनैः शनैः ।

—प्रमत्तरत्नावली

(१) कथा—पुराने वस्त्र को पहनना (२) रास्ता काटना (३) पर्वत लाघना (४) विद्या पढ़ना (५) धन पैदा करना—ये पाच काम धीरे-धीरे करने चाहिएँ ।

8. Little starcks failgrate Aucts,
लिटल स्टार्क म फेल ग्रेट ऑक्स ।

—अंग्रेजी कहावत

● धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय ।
माली सीचें नौ घड़ा, ऋतु आया फल होय ।

—फरार-साली

9. Rome was not built in a day.
रोम याज नाँट विल्ट इन ए डे ।

—अंग्रेजी कहावत

हयेली पर दही नही जमता ।

१० न हो जल्दबाजी से मकमद हसूल ।
जो फल चाहता है तो मन तोड फूल ॥

—उर्दू शेर

११. गह रहीम निज गंग ले, नहि जन्मत है कोय ।
बेर प्रीति अन्याय गश, होत-होत ही होय ।

१२ धीरजना फल मीठा छे. सबूरी नौ बदनी साहेब आपे ।

● तेन जुओ तेन नौ धार जुओ ।

—गुजराती कहावत

१३. तेन देगो तिला सी धार देगो ।

● एक नं नही दोनू आर्या न देगला ।

● उंट नै उठना ही लाग नही घानगो ।

● उना मेजला बेभ घोरा ही घटे । (पहले पाटना होगा)

- आगली पकड र पुहुचो पकड़णो ।
- गाडी कने बलद आया रहसी ।
- नाई-नाई ! केश कित्ता ?
जजमान ! मुंह आगे आवै है ।

—राजस्थानी कहावतें

१४ विलम्ब न करने के काम—

धर्मारम्भे ऋणच्छेदे, कन्यादाने घनागमे ।

शत्रुघाते ऽग्निरोगे च, कालक्षेप न कारयेत् ॥

धर्म का प्रारम्भ, ऋणच्छेदन, कन्यादान, घनग्रहण, शत्रुविनाश, अग्नि-
शमन और रोगशमन—इन कामों में कालक्षेप-विलम्ब नहीं करना चाहिये ।



१. सहसा विदधीत न क्रिया-मविवेक- परमापदापदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिण, गुणलुब्धा स्वयमेव संपद- ॥

—किराताजुनीय

किसी काम को उत्तावल से (बिना विचारे) न करे । अविवेक आपत्तियों का महान कारण है । विचारपूर्वक रूप में काम करनेवाले को उसके गुणों में लुब्ध होकर नपत्तियाँ स्वयमेव सेवन करती हैं ।

२. हड़बड़ में जो भी करो, बिगड़ जायगा काम ।
सीता को बनवाम दे, पछताए श्रीराम ।

—बोहा-सबोह

3. Haste is the mother of waste.

हेन्ट इज दी मदर आफ वेस्ट ।

—अङ्गरेजी बहावन

धीघरता बुराई की जननी है ।

- ४ उचितमनुजिन वा कुर्वता कार्यमादौ,
परिगतिस्वधार्मा यत्नत पण्डितेन ।

अतिरभसकृताना कमणामाविपत्ते—

भंचनि हृदयदाही शक्यतुन्यो विपाक- ॥

—मनूहरिनीतिमनसः १००

पदितपुरुष को उचित या अनुचित कोई भी काम करने में पहले ठनका परिष्कार देना चाहिये । यदि उभाव्यन में किये गये कार्यों का फल मन्दबुद्धि हृदय को नमानेवाला एक विपत्ति से निम्न होता है ।

५. सहसा करि पाछे पद्यताही ।
कहहि वेद बुध ते बुध नाही ॥

—रामचरितमानस अयोध्या कांड २३०-४

६. शल्य-वह्नि-विषादीना, सुकरैव प्रतिक्रिया ।
सहसा कृतकार्योत्था-ऽनूतापस्य तु नौपचम् ॥

—चन्द्रचरित्र पृष्ठ ४६

शल्य, अग्नि एव विष आदि का इलाज होना सुकर है, किन्तु उतावल में किए हुए कार्य के पश्चात्ताप की कोई औपधि नहीं है ।

७. उतापकत्व हि सर्वकार्येषु सिद्धीना प्रथमोऽन्तरायः

—नीतिवाक्यामृत ६।५४

व्याकुलता-हडबडाहट सब कार्यों की सिद्धियों में पहला विघ्न है ।

८. उतावला सो बावला, धीरा सो गम्भीरा ।

—राजस्थानी कहावतें

९. पगथिये-पगथिये चढाय, बहुभूल्या वे हाये खवाय नहि ।

उतावले आँवा पाके नहि । उतावल मा काचु कपाय ।

अथरो माणम अथडाइपड़े ।

—गुजराती कहावत

१०. उतावला री (आम्र मीचकर युद्ध में मरनेवालों की) देवल्या हुर्व
र धीरा रा गाम वने ।

—गुजराती कहावत

११. सामे पाणी पंनवो, तामस में अरदाम ।

चढे ताव आँपधि करे, नीनो होत विनाश ॥

१२. ऊट तो कूद्यो ही कोनी, पलाण पहर्नी ही कूद्यो ।

—राजस्थानी कहावत

● बल न कूदा, कूदी गौन ।

—हिन्दी कहावत

१३. हूँ आयो तू चाल ।

—राजस्थानी कहावत



१. हीनहार त्रिरवान के होत चीकने पात ।

—हिन्दी कहावत

२. तेजसा हि न वयः समीक्ष्यते ।

—ऋग्वेद

तेजस्वियों की उम्र नहीं देखी जाती ।

३. मिह्नि शिशुरपि निपतति, मद्मन्त्रिन-करोनभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरिय सत्त्ववता, न खलु वयस्नेजनो हेतुः ।

—भर्तृहरि नीतिशतक ३८

शेन क्या होने पर भी मद्मन्त्रिन बुभुक्षुनवाने हाथियों पर जा गिरता है, परोक्ष तेजस्वियों का यह स्वभाव ही है, अतथा तेज का कोई कारण नहीं ।

४. वाचन्यापि रवेः पादा, पतन्त्युपरि भुभुक्षाम् ।

तेजसा सह जाताना, वयः कुतोपगुज्यते ॥

—पञ्चतन्त्र १।३२७

वाचक जहाँ न उड़ते मर्च की । तहाँ भी पड़ती के मन्त्रक पर गिरती है । तेजस्वियों के नियम रोचन की तरह साम बात नहीं है ।

५. प्रसिद्ध नाटककार श्री हरिश्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपना प्रसिद्ध नाटक अरामन १९ वर्ष की आयु में लिखा था । संत ज्योतिषन ने १२ वर्ष की आयु में भगवद्गीता पर मन्त्रीभाषा में ज्योतिषन टीका लिखी थी । सातवाँ किताब ज्योतिषन नाटक १३ वर्ष की आयु में १९००

१. चत्वारि सुग पण्यत्ता, त जहा-
ख तिसूरे, तवसूरे, दाणसूरे जुद्धसूरे ।
खातिसूरा अरिहंता, तवसूरा अणगारा, दाणसूरे वेसमणे, जुद्ध-
सूरे वामुदेवे ।

—स्यानांग ४।३।३१७

चार प्रकार के शूर (वीर) कहे हैं—

तदयथा—(१) क्षमाशूर, (२) तप शूर, (३) दानशूर, (४) युद्धशूर ।

क्षमाशूर—अग्रिहंत होने है ।

तप-शूर—अनगार साधु होते हैं ।

दानशूर—वैश्रवण होते हैं ।

युद्धशूर—वामुदेव होते हैं ।

२. शूरान्महाशूरतमोऽस्मि को वा ?
मनोज-वाणैर्व्यथितो न यस्तु ।

—शंकर-प्रश्नोत्तरी

वीरो मे मन्वमे वरा वीर कौन है ?

वही है, जो काम-बाणों से व्यथित नहीं होता ।

३. एत वीरे पमणिण्, जे वट्टे परिमोयण् ।

—भाचाराङ्ग २।६

वही वीर एवं प्रशंसित है, जो कर्मों से बन्धे हुए ज्ञेयों को मुक्त करता है ।

४. दया मया हिरदं वसं; दिल का तजें दरह ।
मार सकै मारें नही, ताका नाम मरह ॥
५. पूग मदं वह है, जो देता लेता नही, आषा मदं वह है, जो लेता है पर देता नही । पर नामदं वह है, जो लेता है पर देता नही ।
६. गर्जन्ति न घृथा शूरा, निर्जला इव तांयदा ।

—वाल्मीकिरामायण ६।६४।३

निर्जल-वादलो की तरह शूरपुरुष वृथा गर्जन नहीं करते ।

- ७ नवं शूरा विकत्यन्ते, दर्शयन्त्येव पोस्पम ।

—मानवत १०।५०।२०

शूरपुरुष आत्मस्ताषा नहीं किया करते । वे तो पराक्रम करके ही दिग्गताते हैं ।

- ८ नाभिपेको न नस्कार, सिंहस्य क्रियते मृगं ।
विक्रमाजितराज्यस्य, न्वयमेव मृगेन्द्रता ।

—हिमोपदेश २।१६

मृग न तो राज्याभिषेक करने हैं और न ही कोई राज्यसम्बन्धी सम्भार । सिंह की मृगेन्द्रता उनके अपने पराक्रम में ही अजिम् है ।

९. एकोऽऽत्मतहागोऽह् कृगोऽऽमारिच्छदः ।
न्वप्नेत्येवविषा चिन्ता, मृगेन्द्रस्य न जायते ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २५०

मैं अकेला हूँ, जसहाय हूँ, दुर्बल हूँ पर प्रथमरहित हूँ--ऐसे समझने के विचार स्वप्न में भी सिंह के मन में नहीं आते ।

१०. एकेनावि हि शूरेणा, पराजान्त महीनवम् ।
क्रियते भास्करेणैव, परिन्पुङ्गितमेजया ।

—भर्तृहरि-नीतिमार्ग १०८

जैसे—सूर्य अपनी किरणों से सारे जगत को प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार अकेला ही धूरपुरुष सारी पृथ्वी को पाँव तले दबाकर वष मे कर लेता है ।

११. कायर मृत्यु से पहले ही मृत्यु का कई वार अनुभव कर लेते है ।
जवकि वीरपुरुष एक वार से अधिक नही मरते ।

—शेवशपियर

१२ यह ससार कापुरुषो के लिए नही है अत पलायन करने का विचार मत करो !

—विवेकानन्द



१. कायर तमी घमकी देना है, जब सुरक्षित होता है ।

—गेटे

२. कायर लोग जीभ का दुरुपयोग करते हैं, बोरपुरुष नहीं । कुत्ते भौंकते हैं, मिह नहीं ।

३. एक कायर कुत्ता इतनी तीव्रता में नहीं काटना, जितनी तीव्रता में भौंकता है ।

४. कातरा एव जल्पन्ति, यद्भाव्य तद् भविष्यति ।

—पञ्चतन्त्र २।१३६

कायरमनुष्य ही यह कटा करते हैं कि जो होना है, बर्ती होगा ।

५. कायर होने के कारण ही हम दूसरों का गून करने का विचार करते हैं ।

—महात्मा गांधी

६. घर का बाघ ब बाहेर की बेली ।

—मराठी बहायत

घर में घूर और बाहर कायर ।

● म्याऊ रै मूटै कुण चटै ।

—राजस्थानी बहायत

८. घर घूरा मूड पड़िया, गाँव गवाँग गोठ ।

सभा नाहि बतलावता, घर-घर धूजे होठ ॥

—रजपूरवाद ले

- दोरी पियारी मोरी माय । भारी विपत्ति पडी है आय ।
अवके फेरे छूटूंगो, तो पढ्यो डोवरा कूटूंगो ॥
एक कुम्हार फीज मे भर्तो हुआ । थोड़े ही दिनों बाद लडाई मे जाना पडा ।
ज्यो ही तलवारें चमकने लगी, उपरोक्त दोहा कहता हुआ भाग कर अपने घर आ गया ।
- १०. कायर राजपूत युद्ध मे गया । पीछे उमको माना पुत्र की चिन्ता करने लगी, तब वह ने कहा—

वहुवर पूछे सासूजी ने, क्यू छो आज उदासी ?
म्हारा कतरो मने भरोसो, कुशल-खेम घर आयी ॥
राउ करंता लारै रहसी, वाता घणी वग्णासी ।
वागा-न्वगा नग्णदरो वीरो, वेगो भाग्यो आनी ॥
वात करता विला लागी, अपजश तणे पवाडे ।
डीलारा कपडा खोसावी, आया मूड उघाडे ॥

इस तरह अपने पुत्र को आमा देगकर माग ने कहा—

दाद देई नै सामू बोली (तै) वात आगमरी जाची ।
कहती जिमो थारो कत निवडियो, नाची हे वह ! साची ॥

—प्राचीनसंग्रह से



१ नयेनाद्भुग्नि शीर्षं, जयाय न तु केवचनम् ।

अन्ययुक्तं विप्रयुक्त, पथ्यं स्थावन्वा मृति ।

—सुभाषितरत्न-भाष्यान्तर, पृष्ठ १५७

ज्याय में युक्त शूरता जय करनेवाली है, केवल शूरता नहीं । जैसे-अन्ये पथ्य में मिश्रित विप्र पर बल जाता है अन्वयात्मक मृत्यु हो जाती है ।

२ कातर्यं शैबला नीति, नीत्यं द्वापदनेष्टितम् ।

—शापिदाम

केवल नीति की बात करना कायरता है और केवल (नीतिशून्य) शूरता दिग्गजाणा द्वापद-निनन्दन शीली श्रेया है ।

३ शीर और कायर में एक तदम का अन्वय है—शीर का तदम आगे और कायर का तदम पीछे रहता है ।

—अमरमुनि

४ शून्यित-शून्य के लक्षण में लक्षणात् ।

हारन-शून्य-मान का, चित्तु शून्यी मान ।

५ अन्वयात् शीर अन्वय-शून्यता ही शूरता है ।



१. वार पुरुष बलवान, सबल इक वृषभ कहीजें ।
 दस वृषभ इक महिप, महिप दस तुरी गिणीजे ॥
 दस तुरी एक गयंद, गयंद शतपंचहि केहर ।
 केहर मिल दस सहस्र, एक अष्टापद सुन्दर ॥
 अष्टापद दसलक्ष, एक बलदेव बखारो ।
 दो बलदेव मुत्रोध, सबल नारायण जाणो ॥
 दो नारायण सबल, मिली चक्रीश थुणीजें ।
 चक्री मिल दस सहस्र, एक मुरडद गुणीजें ॥
 एहवा इन्द्र अनन्त, एकटो बल सहु कीजें ।
 एहवो बल जिनराज, अंगुली चिट्ठी न लीजें ॥
 —भाषाश्लोकसागर

२. हस्तो स्थूलतरः सचाङ्कुगवशाः किं हन्तिमात्रोऽङ्कुगो,
 दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः ।
 वज्रेणाभिहता पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरि—
 स्तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ।

—पद्यतन्त्र १।३५८

बहुत बड़ा हाथी अकुग के अधीन है, क्या अंकुग हाथी के बराबर है ?
 छोटा सा दीपक जलने पर अंधेरा नष्ट हो जाता है, क्या अंधेरा दीपक
 के बराबर है ? बज्र का प्रहार लगने पर पर्वत गिर जाते हैं, क्या
 पर्वत बज्र के बराबर है ? नदी—नदी, घातक में जिमपा नेत्र—प्रताप
 अधिका है, यही बलवान है । स्थूल—मोटा होने से क्या है ?

३. बलवानपि निस्तेजा, वस्य नाभिभवान्पदम् ?
नि शङ्कं दीयते लोके परस्य भस्मचये पदम् ॥

—सुमापितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १७०

बलवान होने पर भी निस्तेज व्यक्ति का हर एक पराभव कर देता है।
देगो ! रात्र के डेर होने पर लोग नि शंकोच पैर धरकर चलते हैं,
क्योंकि वह निस्तेज है।

४. यो हवे बलवा सन्तो, दुब्बलस्म तितिक्रमति ।
तमाहु परम गन्ति, निच्च समति दुब्बलो ।
अबल न बन भाहु, यन्म बालबलं बलं ॥

—समुक्तनिकाय १।११।४

जो स्वयं बलवान होकर भी दुर्बल की बातें गहन करता है, उन्ही को
सर्वश्रेष्ठ क्षमा करने है। वर वनी निर्बल गटा जाता है, जिनका बल
मूर्खों का बल है।

५. अत्येगइयाणं जीवाणं बलिमत्तं साहु,
अत्येगइयाण जीवाणं दुब्बलियत्तं नाहु ।

—भगवती १२।२

प्रमनित्त आत्माओं का बलवान होना अच्छा है और प्रमंहीन आत्माओं
का दुर्बल रहना अच्छा है।



१. लाक्षागृह से वृक्ष निकलने के बाद जब पाण्डव वन में चलते-चलते थक गये, तब भीम ने नवारी वनकर भाइयो एवं माता को जगल में पार किया था।

—महाभारत, आदिपर्व

२. की-वेन्स्टनगर (अमेरिका) का पीटर एल० जेकीवम नामक व्यक्ति अपनी हथेलियों पर दो व्यक्तियों को बैठाकर ८० फीट तक चला जाता था।

● भारी वजन उठानेवाले वेद लिप्टर संकम-सिक नामक जर्मन गिनाही के आने शरीर का वजन १४७ पाँड था, लेकिन वह अपने वजन में ४० पाँड भारी व्यक्ति का १६ बार अपने एक हाथ में गिर म ऊपर तक उठा लेता था। उसके दूसरे हाथ में शराब न लवालय एर गिनाय रहता था, लेकिन क्या मजाल कि शराब की एक बूँद भी छूतक जाय।

● दिगोनेन नगर (फ्रांस) के वीरन क्रिस्टोफे के घोड़े की एक टांग शिरार खेलने समय टूट गई। वीरन मात्र ४२० पाँड भारी अपने घोड़े को पीठ पर लादे तथा भीम रास्ता तब तकके जानवरी क एव टावटर के पास जा पहुँचे।

● पाउण्ट रेस्टन द-फ्रायंग (फ्रांस) के एक शस्त्रांगी, एरजीस्टन द-गम्पेगने को एक दिन भीषण के गिर लकड़ियों की व्यवस्था करने का आदेश मिला तब वह लकड़ियों लादे सस्तर की अपनी पीठ पर उठाए, ८० कीलियां पार कर एरजीस्टन सहज में पहुँच गया।

- फर्नल फ्रेडरिक वरनेवी (१८४२-१८८७ ई०) छ' फुट ४ इंच ऊँचे और काफी ताकतवर थे। कहते हैं, एक बार जब वे विटमर (इंग्लैंड) में थे, तब उनके दोस्तों ने उनके साथ मजाक किया। उन्होंने दो टट्टूओं को नीची पर हाँककर उनके कमरे में पहुँचा दिया। सीढ़ी चढ़कर टट्टू ऊपर तो चले गए। लेकिन उतरना एक समस्या हो गई। अन्त में वरनेवी ने उन्हें उठाकर अपनी बगल में दबाया और नीचे उतर गये।
- स्टेटगार्टनगर (जर्मनी) में रहनेवाली मर्कस की गिलाज़िन कुमारी हेलिघट इतनी बलवान थी कि जब वह बाजार में घूमने निकलती तो कथों पर ८ मन भारी एक निह तो बँटायें रहती थी।
- लॉस शहर (फ्रांस) में रहनेवाले टर्गो के एक गिरोह के सरदार, गुस्ताव रेहर्ट में मजबूती थी। एक दिन उनके गिरोह के दो सदस्य आपस में भगवत पडे। एक त्रिनिवर्ट-ट्रेविन पर सटे के दोनों घुरा हाथ में लेकर एक दूसरे पर चार कर रहे थे। सरदार ने यह देखा तो भगवत मान्न करने के लिए देखते नीचे घुमकर उसने दोनों व्यक्तियों सहित टेबल को अपनी पीठ पर उठा लिया और उन्हें लिए लिए २० फीट दूरी चला गया।

—विचित्रा, वर्ष ३, अर्ध ४, सन् १९७१

३. पर्यटन नामक गोलि-मुक्क गाय लेने गया था। गाँव बाहर जाने ही अमानक बाघ-बाघनी मिले। दोनों हाथों में दोनों के कान पकड़ कर रोह लिए। फिर गाँव में मजबूत था गए। (२५ मार्च सन् १९७० में छोटे उदयपुर में पानि माइल दूर मुरगाँव गाँव में यह घटना घटी थी)।
४. घुल में पाँच आठवाँ मार्च में। मुद्दान के पानि कायमन मारी मारी। उनमें नहीं थी। रात को दो मारी मारी थी उद्योग में गए और अपना काम करने छोटे घुल दूर छोड़ गए। दानाकरन हारा, मार्च में मारी को मारी छोड़ दिया गया। मारी मारिमें पर स्थिति मारी थी, जानर उगार दी।



१. सवे सहायक सवल के, कोउ न निवल सहाय ।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुभाय ॥
२. वनानि दहतो वह्ने; सन्वा भवति माम्त ।
स एव दीपनाशाय, वृधे कस्यास्ति मांहृदम् ॥

—पञ्चतन्त्र ३।५७

जो वायु वन को जलाते समय अग्नि का सहायक होता है, वही दीपक को बुझा देता है, क्योंकि कमजोर के साथ किसी की मित्रता नहीं होती।

३. अश्व नैव गजं नैव, व्याघ्र नैव च नैव च ।
अजापुत्र वलि दद्याद्, देवो दुर्वलघातकः ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १६२

न घोड़ा, न हाथी, न बाघ, बेचारे अजापुत्र-बकरे की बलि दी जाती है। देवों! देव भी दुर्बल का घातक है।

४. गुने रे, मैंने निर्वल के बल राम ।
जब लग गजबल अपनी राम्यो, नेक तरुयां नष्टि काम ।
निर्वन हो, वनराम पुकारे ! आए आधे नाम ॥

—वैष्णवीमान्यता

५. बीडी ने सून रो रेलो हो भारी ।

—राजस्थानी क्रावण

६. मुंगीला मूता चा पूर ।

—मराठी कहावत

चींटी को पेशाब ही नदी ।

७ क्रोधादिवश जहर गा लेना, कुण में गिरकर, अग्नि में जलकर, पेट में छुरा भोक कर और ट्रेन आदि के आगे नेटकर आत्महत्या कर लेना निबलता है, किन्तु स्कन्दक, गजमुकुमान, आदिवत् धर्म के लिए मर मिटना सच्ची नबलता है ।

८ बेल बैरागी वाकरो, न थी विधवा नार ।

इतरा तो थाका भला, माता करे दिगाड ॥

९. जिण रस्ते केहर गया, रज लागी चरणाह ।

ते तृण ऊभा नूकमी, नहि चरमी हिरणाह ॥



१. निवसन्ति पराक्रमाश्रया, न विपादेन समं समृद्धय ।

—किराताजुनीय

जहा पराक्रम है, वहा समृद्धिया रहती है, विपाद-सत्त्वहीनता के साथ वे नहीं रहती ।

२. बलं त्रिविधमिति—सहज, कालज, युक्तिकृत च ।

—चरकसंहिता-सूत्रस्थान ११।३६

तीन प्रकार का बल होता है—

(१) सहजबल—जो स्वभाव से ही होता है ।

(२) कालजबल—जो बाल्यादि अवस्थाओं के या शीत-हेमन्तादि ऋतुओं के अनुसार होता है ।

(३) युक्तिजन्यबल—व्यायाम व पीष्टिक आहार आदि से होता है ।

३. दमविहे बले पण्णान्ते, त जहा—

सौन्दर्यबले जाय फामिदियबले,
साग्णबले, दरसाबले, चरिजबले, तवबले, वीरियबले ।

—स्यातांग १०।७४०

बल दम प्रदान का कहा है—(१) श्रोत्रेन्द्रियबल, (२) चक्षुर्गिन्द्रियबल, (३) घ्राणेन्द्रियबल, (४) स्पर्शेन्द्रियबल, (५) श्रवणेन्द्रियबल, (६) ज्ञानबल (७) दमनबल, (८) नासिकबल, (९) तपोबल, (१०) वीर्यबल ।

४. तो निह्वेज्ज वीरिय ।

—आचारांग १।५।३

अपनी योग्यशक्ति को कभी छिपाना नहीं चाहिए ।

५. बलवृद्धिकरान्त्वमे भावा भवन्ति ।

तद् यथा—बलवन्पुरुषे देशेजन्म, बलवत्पुरुषे काले च,

मुख्यं च कालयाग, बीज-क्षेत्र-गुणानपच, आहारमपच, शरीर-
सपच, सात्म्यमपच, सत्त्वमपच स्वभावमसिद्धं च वाक्च,
कर्म च, सहर्षश्चेति ।

—चरकसंहिता-शारीरस्थान ६।१३

(१) बलवानपुरुषो के देश (मिथ-पञ्चाय) मे जन्म, (२) बलिष्ठों के कुल
मे जन्म, (३) बलिष्ठों के काल मे जन्म, (४) गुणकारी बाल का
सयोग, (५) अच्छे बीज, अच्छे क्षेत्र एवं अच्छे गुणों का सयोग,
(६) उन्नत आहार का सेवन, (७) शरीर का उन्नत समर्थ, (८) उन्नत
आहार-विहार का अभाव (९) उन्नत गुणों का सम्पन्न, (१०) स्वभाव-
निरालि, (११) चानी, (१२) व्यायाम आदि विद्या, (१३) मन की
प्रसन्नता । ये १३ बातें भाव बल को बढ़ाने वाले हैं ।



दूसरा कोष्ठक

गुण

व्यसनो के प्रति विरोध का ही नाम 'सद्गुण' नहीं है, अपितु व्यसनो की श्रौर प्रवृत्ति का न जाना सद्गुण है ।

—चर्चिका

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा, न वस्तुषु ।

गुण प्रेम में रहते हैं वस्तुओं में नहीं रहते ।

यदि सन्ति गुणा पु सा, विक्रान्त्येव ते स्वयम् ।
नहि कस्तूरिकामोद, यथेन विभाव्यते ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ८५

मनुष्यों में यदि गुण हों तो वे अपने-आप प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि वस्तुओं की मुगलियों को धरम में सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती ।

Cream will rise to the top

क्रीम विल गइज टू दी टोप ।

—अग्नेजी कहावत

दूध का मक्खन स्वयं ऊपर आ जायेगा ।

एकस्मिन् दुर्लभो गुणविभव ।

एक स्थिति में अनेक गुणों का होना कठिन है ।

कस्यापि कोप्यतिशयोन्ति न तेन लोके,
न्यानि प्रयानि नहि सर्वविदम्नु नवो ।

किं केतकी फलति किं पनसः सुपुष्पः,
किं नागवल्क्यपि सुपुष्प-फलेभ्येता ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १८३

किसी में कोई एक विशेषता होती है, उसी में वह जगत् में प्रसिद्ध हो जाता है। सर्वत्र तथा सर्वगुणगमना कोई नहीं हुआ करता। तब केचड़े पर फल, पनस (कटार) पर फूल एवं नागवल्की पात की धेन पर फल-फूल आते हैं? नहीं आते। फिर भी ये एक-एक विशेषगुण में प्रसिद्धि पा रहे हैं।

७. गुणा सर्वत्र पूज्यन्ते, पितृवशो निरर्थकः ।
वसुदेव पन्नियज्य, वासुदेव नभेज्जन ॥

—प्रनगरलाघली

नव जगत् गुणों की पूजा होती है, पिता के वश ही नहीं। देवों लोग वसुदेव को छोड़कर वासुदेव को नमस्कार करते हैं।

८. धन में सद्गुण नहीं मिलते, अपितु सद्गुणों में ही धन व अन्यान्य वस्तुएँ मिलती हैं।

—क-पद्मिचम

९. हमारे सद्गुण प्रायः बेप बढ़ते हुए दुर्व्यसन होते हैं।

—साठे रोसफूसी

१०. बहन में व्यक्ति सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं, किन्तु पालन नहीं करते।

—मिन्दन

११. सम्मान ही सद्गुण का पुस्कार है।

—निमरो

१२. आकृतिगुणान् तथयति ।

सूत्र की आकृति त्यों ही प्रकट कर देती है।

१३. जे नर स्ये सप्रदा, नं नर दिगम न रोम ।

जिन नरों का प्रशंसा, नं नर दिगम न रोम ॥

—राजपत्नी-दीर्घा

१. पदं हि सर्वत्र गुणानिधीयते ।

—रघुवंश ३।६२

गुण सर्वत्र अपना प्रभाव जमा लेने हैं ।

२. गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ।

—किराताजुं नीप

गुणो से आकृष्ट संपदायें, गुणी के पास अपने-आप आ जाती हैं ।

३. गुणः खल्वनुरागस्य कारणं, न बलात्कारः ।

—मृच्छकटिक

अनुराग का कारण गुण ही होता है, बलात्कार नहीं होता ।

४. गुरुता नयन्ति हि गुणा न संहतिः ।

—किराताजुं नीप

गुण ही मनुष्य को गुरुता देने हैं, समूह नहीं ।

५. गुणा कुर्वन्ति दूतत्वं, दूरेऽपि वसता सताम् ।

केतकी गन्वमाघ्राय, स्वयं गच्छन्ति पट्पदा ॥

प्रसगरत्नावली

गुणों के दूर दूरी पर भी उनके गुण जीवननिर्माण में दूत या काम करते हैं । केतकी की गुणों पाकर अनुर उतके पास स्वयं चले जाते हैं ।

६. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।

—कुमारनभय १।५४

रत्न किसी की तलाश नहीं किया करना, उमी की तलाश की जाती है।

७. गुणो भूषयते रूपम् ।

—चाणक्यनीति १।१५

गुण से ही रूप शोभा पाता है।

८. गुणेन ज्ञायते त्वार्यः ।

—चाणक्यनीति १।८

गुण से ज्ञाय जाना जाता है।

९. एको गुण गन्तुं निहन्ति समस्तदोषम् ।

एक ही गुण सब दोषों को नाश कर देता है।

१०. छोटा-सा अंकुश हाथी पर नियन्त्रण कर लेता है, छोटा-सा शीपक अन्धकार को दूर कर देता है, छोटा-सा बख पर्वत को चूर-चूर कर डालता है। छोटा-सा रत्न माणिक्य बना देता है। छोटा-सा मन्त्र श्रेयता को मोच साता है। छोटा-सा मन्त्र (पत्नी) समय बतना देता है, छोटी-सी मूर्ति दो को एक बना देती है। छोटी-सी ज्वाल की धुँद धेरोधी दूर कर देती है, छोटी-सी शक्ति सभा में राजा बना देती है, इसी प्रकार छोटा-सा एक महगुण बड़ापान कर देता है।

—संश्लिष

११. महगुण शान्ध्य है और दुःखमन घेत।

—वेदार्थ

१२. महगुण विषयों में भी उतना ही समझता है, जिसका अन्वय-योग्यता में।

—द्विरेण



१. आठ प्रकार के गुण—

अष्टौ गुणा पुरुषं दीपयन्ति,
 प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुत च ।
 पराक्रमश्चायहभाषिता च,
 दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥

—विदुरनीति १।१०४

(१) बुद्धि, (२) कुलीनता, (३) इन्द्रियसयम, (४) ज्ञान, (५) दृग्गता,
 (६) मिनभागण, (७) यथाशक्ति दान (८) कृतज्ञता—ये आठ गुण
 मनुष्य की शोभा को बढ़ानेवाले हैं ।

२. चार सहजगुण—

दानृत्वं प्रियवक्तृत्व, धीरत्वमुचितज्ञता ।
 अम्यासेन न लभ्यन्ते, चत्वारः सहजा गुणाः ॥

—चाणक्यनीति ११।१

उदारता, निष्ठयादिता, धीरता और उचित की जानकारी—ये चार
 गुण म्यनाविक होने हैं, किन्तु अम्याम ने नहीं मिन सकते ।

३. तेरह मानसिकगुण—

१. उदारता—इस गुण में मनुष्य दूसरे मनुष्य की भूल होने पर महमजी
 बना रहता है ।
२. अनुकरणाप्रियता—इसमें मनुष्य महानुष्यों के मनुष्यों की प्रहम म
 करता है ।

३. प्रनाद्यगुण—उन्में मनुष्य दूसरे को गुणमत्ता से सुधार सकता है ।
४. आकृतिज्ञान—उन्में मनुष्य चाहे जिसको पहचान सकता है ।
५. ध्वजम्भाज्ञान—इसमें मनुष्य अपनी या दूसरो को सुखदुःख बर ताता है ।
६. अवलोकनगुण—उन्में मनुष्य बर्त-नई चीनो का ज्ञान प्राप्त करता है ।
७. गणितज्ञान—इन्में गणनापता पटती है ।
८. इतिहासज्ञान—इन्में प्राचीन वस्तुएं ध्यान में रहती है ।
९. समयज्ञान—उन्में समय या उपयोग र्थिने करना, यह जाना जाता है ।
१०. वास्तुज्ञान—इन्में आकर्षणमयिने मिलती है ।
११. स्वरज्ञान—इन्में निकट-भविष्य को बहू-कुछ चारों जानी जा सकती है ।
१२. सुखसाधक—इन्में विवेचना, वर्गीकरण एवं समायोजन करने की योग्यता प्राप्त की जा सकती है ।
१३. सौजन्यगुण—इन्में विनय, त्रिक्त, मन्दता एवं समझों को योग्यता मिलती है ।

४. धन्यपूशियन के कहे हुए पांच सदगुण—

(१) धैर्य, (२) धन इ. (३) धी, (४) धे, (५) धेन ।

(१) धैर्य—मजबूती जाना ।

(२) धन इ.—धनता स्वयंसे विवेक से धन, कर्मसे धर्म प्राप्त होता ।

(३) धी—धन और धीरे धीरे धन, धन-प्राप्तिके लिये धीरे धीरे धन प्राप्त करना ।

(४) धे—धैर्य धन—धैर्यधारी, धैर्यपूर्वक धन प्राप्त करना ।

(५) धेन—धुन धन इति धेन ।

५. तीन गुण एवं उसके कार्य आदि—

(क) सत्त्वं रजस्तम इति, गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो ! देहे देहिनमव्ययम् ॥

—गीता १४।५

हे अर्जुन ! प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण अविनाशी-आत्मा को देह में बाँध लेते हैं ।

(ख) सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञान, राग-द्वेषो रज-स्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषा, सर्वभूताश्रित वपुः ॥

—मनुस्मृति १२।२६

यथार्थज्ञान होना सत्त्वगुण का लक्षण है, ज्ञान का न होना तमोगुण का लक्षण है और राग-द्वेष का होना रजोगुण का लक्षण है । सबके शरीरों में इन सब गुणों का स्वरूप ध्यात रहता है ।

(ग) सत्त्वं सुखे संजयति, रज-कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः, प्रमादे सजयत्युत ॥

—गीता १४।६

अर्जुन ! सत्त्वगुण सुख में एक रजोगुण कर्म में लगाता है, किन्तु तमोगुण ज्ञान को ढँक कर प्रमाद में लगाता है ।

(घ) देवत्वं सात्त्विका यान्ति, मानुषत्व च राजसा ।
तिर्यक्त्वं नाममा निन्द्य-मिन्द्येषा त्रिविधा गति ॥

—मनुस्मृति १२।४०

सात्त्विक-वृत्तियाँ देवयोनी में, रजोगुणों मनुष्यगणों में और तमोगुणों तिर्यक्तगणों में जाती हैं ।

(ङ) गुणानेतानतीत्य श्रीन्, देहो देहममुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखं - त्रिमुक्तोऽमृतमप्नुने ॥

गरीर के कारणभूत इन तीनों गुणों को त्यागकर (निर्गुण होकर) आत्मा जन्म-जरा-मृत्यु के दुःखों से छूट जाता है एवं अमृतपद-मुक्ति को प्राप्त होता है।

(च) श्रेयुष्यविषया वेदा, निरत्रंगुण्यो भवार्जुन !
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो, निर्योग-क्षेम आत्मवान् ॥

—गीता २।४५

हे अर्जुन ! सब वेद तीनों गुणों के कारणरूप प्रकार को विद्वद करने-वाले हैं। इसलिए तू अनमारी अर्थात् निष्कामी और गुण-दुःखादि द्वन्द्वों से रहित, नित्यवस्तु में स्थित तथा योग-क्षेम को न चाहनेवाला और आत्मपरायण बन।

६. गुणातीत—

नमः समुग, स्वस्थ, नमलोष्ठात्मकाञ्चन ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीर-तुल्यनिन्दात्मनःस्तुति ॥
मानापमानयोस्तुल्य-तुल्यो मित्रारिषक्षयो ।
नर्वारिभयनिन्दागी, गुणातीत न उच्यते ॥

—गीता १।४२४-२५

जो दण्ड-मुग में समान है, आत्मभय में स्थिर है, जिहरी मिट्टी, पत्थर और लोहे में समान दृष्टि है, जो प्रिय-अप्रिय ही तुल्य समझता है, भय-भयान है निन्दा-स्तुति में समान भावगता है। मान-अपमान में तुल्य है, मित्र-अनु में समान व्यवहारा है और सब प्रकार के ताप-भय का अविनाश करनेवाला है, यह तुल्य गुणातीत कहा जाता है।



१. चउहि ठारोहि सते गूणे नासेज्जा, न जहा—कोहेण, पडिनिवेसेणं, अकयन्नयाए, मिच्छत्ताभिरिगुवेसेणं ।

—स्थानांग ४।४।२८४

चार कारणों से जीव विद्यमान गुणों का नाश कर देता है (१) क्रोध से, (२) गुण सहन न होने से, (३) अनृत्नता से, (४) मिथ्याधारणा के कारण ।

२. चउहि ठारोहि मंते गूणे दीवेज्जा तं जहा—अवभामवत्तिय, परछंदागुवत्तिय, कज्जहेउ, कयपडिकइण्ड वा ।

—स्थानांग ४।४।२८५

चार कारणों से जीव विद्यमान गुणों को प्रकाशित करता है—

- (१) विद्याभ्यास के लिए, (२) दूसरों को अनुकूल बनाने के लिए, (३) अपना काम सिद्ध करने के लिए, (४) कृतज्ञता प्रकट करने के लिए ।
३. इधु दण्डास्तिला गूरा, कान्ता हेम च मेदिनी,
चन्दन दधि-ताम्बूले, मर्दन गुग्गुवर्धनम् ।

—चाणक्यनीति ४।१३

इक्षुदण्ड, निल, दूध, शर्करा, हेम, गुग्गु, चन्दन, दही और ताम्बूल, मर्दन होने में, इन ६ चीजों के गुणों में वृद्धि होती है ।

१. गुणी च गुणरागी च, विरलः सरलोजन ।
गुणी एवं गुण के प्रेमी विरले ही सरलपुरुष हैं ।
२. गुणवन्तः क्लिष्यन्ते, प्रायेण भवन्ति निर्गुणाः सुखिनः ।
बन्धनमायान्ति युक्ता, यथेष्टमंचारिणः काकाः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ८५

गुणीजन प्रायः दुःख पाते हैं और निर्गुण सुखी होते हैं । युक्त बन्धन को प्राप्त होते हैं और काक उच्छ्वानुसार घूमते हैं ।

३. कौशेयं कृमिज सुवर्णमृगनादिन्दीवरं गोमयात्,
पङ्कात्तामरम शशाङ्कमुदये-र्गापित्ततो रोचना ।
काष्ठादग्नि र्हे. फणादपि मणिर्दुर्वापि गोरोमत,
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनोयान्यन्ति किं जन्मजा ॥

—पञ्चतन्त्र १।७६

रोमो वस्त्र कीटों में, गोना पत्थर में, नील-कमल गोबर में, वसन कदम में, चन्द्रमा समुद्र में, गोरोचन गाय के पित्त में, अग्नि वायु में, मणि नीर के फल से और रोच गाय के रोमों में उत्पन्न होती है । उत्पत्ति स्थान निम्नगोष्ठि के तब पर भी पूर्वोक्त वस्तुएँ उत्पन्न नहीं हो सकती हैं, यद्यपि नही । गुणों कापि अपने गुणों के उदय में ही जगत् में प्रगल्भी को प्राप्त होते हैं, जन्म में नहीं ।

४. गुणाः पुजान्थानं गुणिपु न च विद्वान् न च वयः ।

—उत्तरामवर्ति १।११

गुणिजनों का सम्मान गुणों से ही होता है, स्त्री-पुंय के भेद ने या वायु के कारण से नहीं होता ।

- ५ हसा नै सरवर घणां, देश-विदेश गयाह ।
 मुगुणा नै सज्जन घणा, कुमुम घणा भवर्गाह ॥
- ६ गुणं सर्वजन्योऽपि, मीदत्येको निराश्रय ।
 अनर्घ्यमपि माणिक्य, हेमाश्रयमपेक्षते ॥

—चाणक्यनीति १६१०

गुणों ने मुक्त ईश्वर के समान पुंय भी निराश्रय एवं अकेला हुआ ही पाता है । जैसे—अनमोल माणिक्य भी नील में जटे जाने की अपेक्षा रहता है ।

७ गुणिजनसंगति—

(क) जनयति नृणां किं नाभीष्टं नृणोत्तम संगमः ?

—सिद्धप्रकरण ६६

गुणिजनों का सम्पर्क क्या इच्छित काम नहीं करता ?

(ख) स्त्रीतोऽपि गुणिसंगतो, श्रेयसे भूयसे भवेत् ।

—गुत्तरत्नावली

गुणिजनों का स्त्री-भा सम्पर्क भी महान् फलदायक ही होता है ।



१. कखे गृणे जाव शरीरभेड ।

—उत्तराप्ययन ४।१३

अन्त समय तक गुणो की आकाक्षा करते रहो ।

२ गृग्णेषु क्रियता यत्न , किमाटोपेः प्रयोजनम् ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभि - गाविः क्षीरविवर्जिता ॥

—प्रसङ्गरत्नावली

गुणो के लिए प्रयत्न करो । आठम्बर मे क्या है ? दूध न देनेवाली
गायें केवल घंटियाँ बाधने से नहीं बिका करती ।

३. गृणेष्वनादर भ्रात , पूर्णश्रीरपि मा कृथाः ।
सपूर्णाऽपि घट कूपे, गुणच्छेदात् पतत्यध ॥

बरे भाई ! पूर्ण श्रीमान् होकर भी गुणो का अनादर मत कर । देस !
भरा हुआ घटा भी गुण (डोरी) के कट जाने से कुंए में गिर जाता है ।

४ सन्धयेत् सरना सूचि-वर्णा छेदाय कर्तरी ।
अतो विमुच्य वरुत्व, गुणानेव समाश्रय ॥

गोधी-गन्त मूर्त फटे-टूटे का जोरती है और वस्त्र-वर्णी अनष्ट को
काटती है । अब बरना को छोड़कर गुणो को धारण कर !

(मूर्त गुण वर्णात् धारणे) को धारण करके ही वस्त्र आदि का गीती है) ।

५ ज्ञान गर्गवी गुण धम्म, नन्म वचन निरदोष ।
तुलसी कवच न द्योतये, योन नन्य सन्धोष ॥

६. गुण ज्ञान मित्रे, ज्ञान न मित्रे, ज्ञान रुद्र मित्रे, नै त्वो ।

७ अणुम्यच्च महद्म्यच्च, शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ।
सर्वतः सारमादद्यात्, पुष्पेभ्य इव पट्पदः ॥

—भागवत ११।८।१०

जैसे—भीगा छोटे-बड़े सभी फूलों में सम नेता है, उसी प्रकार पुस्तक (गुणी) मनुष्य को चाहे कि वह छोटे-बड़े सभी शास्त्रों में मात्र ग्रहण करे ।

८ अनन्तशास्त्र बहुला च विद्या, अल्पञ्च कालो बहुविघ्नता च ।
यन्माग्भूत तद्गुणमनीय, तनो यथा धीरन्मिवाम्बुमन्यान् ॥

—छाणव्यनीति १५।१०

शास्त्रों का ज्ञान अनन्त है, विद्यामें अनेक है, समय अल्प है एवं विघ्न-बाधाओं बहुत हैं । सब जैसा सम जलमिश्रित रूप में से रूप-रूप ही नेता है, वैसे ही जो पदार्थ माग्भूत जैसे, उसे मत्स्याय ग्रहण करवो ।

९. Art is long and time is short

आर्ट लज लीग एण्ड टाइम शॉर्ट ।

—अथर्ववेद महायम

● स्वल्पञ्च तापो बहुषा च विद्या ।

—तस्मिन् महायम

समय काल है अल्प ।, तापें बहुत हैं ।

१०. एता विद्यायां योग्योर्जिनस्तः, १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।

एता विद्यायां योग्योर्जिनस्तः, १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।

—मुनिविरचित-न-शास्त्राणां, पृष्ठ ३२४

एता विद्यायां योग्योर्जिनस्तः, १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।
एता विद्यायां योग्योर्जिनस्तः, १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।
एता विद्यायां योग्योर्जिनस्तः, १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।

१. क्षारभावमपहाय वारिधे, गृह्णन्ते सलिलमेव वारिदाः ।

—उपदेशप्रासाद

मेघ समुद्र के खारेपन को छोड़कर केवल जल को ही ग्रहण करने हैं ।

२. म्लेच्छानामापि मुवृत्त ग्राह्यम् ।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

म्लेच्छों के भी सदाचरण ले लेने चाहिए ।

३. जत्रोरपि गुणा ग्राह्या ।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

जत्रु में भी गुण ले लेना चाहिए ।

४. विपादप्यमृतं ग्राह्य-ममेव्यादपि काञ्चनम् ।

नीचादप्युत्तमा विद्या, स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥

—चाणक्यनीति १११६

मिल नकना हो तो विष से अमृत, गन्दगी में मोना, नीच से उत्तम विद्या और दुष्कुल में भी स्त्रीरत्न ले लेना चाहिए ।

५. स्त्रियो रत्नान्यथोविद्या, धर्मः शोचं सुभाषितम् ।

विविधानि च शिल्पानि, समादेयानि सर्वतः ॥

—मनुस्मृति २।२४०

गुणवती स्त्रियाँ, रत्न, विद्या, धर्म, पवित्रता, सुभाषित और नाना प्रकार की कलाएँ—ये चीजें हर एक में ले लेनी चाहिए ।

६. मुक्तिमुक्त उपादेय, वचनं बालकादपि ।

अन्यन् नृगमिव त्याज्य-मप्युक्त पद्मजन्मना ॥

—योगवासिष्ठ २।१२।१

मुक्तिमुक्त वचन को बालक में भी ले लेना चाहिए और मुक्तिहीन वचन नाहूँ शता का भी क्यों न हो, वह नृगवत् त्याज्य है ।

ननु वस्तुविशेषानि स्पृहा, गुणगृह्या वचने विपश्चित्तः ।

—किराताश्रुंशोष २।४

विद्वान् लोग किमी बचन के विषय में यह नहीं देखते कि उनका कहने-
वाला कौन है । वे तो केवल गुण के पक्षपाती होते हैं ।

१८ गुणी वन गुण को लेना है, हमें दुर्गुण में क्या मतलब ?
कुण्ड में नीर पीना है, हमें कचरे में क्या मतलब ? ॥ध्रुव॥

हम तो ग्राहक हैं चन्दन के, भले ही साँप लिपटे हो ।
मुग्ध है पृष्ण-सुरभी पर, हमें काटों में क्या मतलब ? गुणी ॥१॥

छाछ खट्टी भले ही हो, हम तो मक्खन के भूने हैं ।
इक्षुरस के पिपासु है, हमें छिलको में क्या मतलब ? गुणी ॥२॥

न गल में काम है चित्कुञ्ज, हमें तो लेन लेना है ।
आम खाने के इच्छुक है, हमें गुठली में क्या मतलब ? गुणी ॥३॥

मणी के हम तो ग्राहक हैं, साप जहरी भले ही हो ।
गोल मोती के गर्जो हैं, साँप बाकी में क्या मतलब ? गुणी ॥४॥

एक कोयल का काला है, तो भी मिठाम दे देंगे ।
काम नबिने की मू में है, हमें गोली में क्या मतलब ? गुणी ॥५॥

मिने गुण जिन कदर जिनमें, हम तो नंगर दे देंगे ।
साँसे बिनाही मजबूत हो, हमें मजबूत में क्या मतलब ? गुणी ॥६॥

देव जिन भाष दुनियाँ में, नगर कोई नये भला ।
सभी अन्दर में नये है, नये 'पन' हमको क्या मतलब ? गुणी ॥७॥

—उपर्युक्त गुणवत्ता

१९. गुणवत्ता गुणवत्ता, भाग्यनि कठिनी मुमुक्षुगत यन्त्र ।
तेनाम्ना यदि गुणवत्ता नद ? कल्याण तोहरी नाम ॥

—निम्नोक्त गुणवत्ता

गुणीजनों की गणना करते समय जिसकी लेखनी क्षीघ्रता से नहीं चलती, उस पुत्र से यदि माता पुत्रवती कही जाय तो कहो ! फिर वन्द्यास्त्री कैसी होगी ?

२०. आरोप्यते शिला शंले, यत्नेन महता यथा ।
निपात्यते क्षणेनाध-स्तथात्मा गुण-दोषयो ।

—हितोपदेश २।४७

जैसे—किसी ऊँचे स्थान पर शिला बड़े यत्न में चढ़ाई जाती है और नीचे क्षणभर में गिरा दी जाती है, गुण और दोष के विषय में आत्मा को भी ऐसी ही स्थिति है, यानी गुणों का ग्रहण कठिन है एवं दोषों का ग्रहण सरल है ।



८

गुणग्राही के अभाव में

१ गुणिनोऽपि हि सीदन्ति, गुणग्राही न चेद्विह ।

सगुणं पूर्णकृम्वोऽपि, कूपणं निमज्जति ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ८५

यदि गुणग्राही न हो तो गुणीजन भी विपत्त को प्राप्त हो जाते हैं ।
देखो ! भरा घड़ा कुएँ में गिर जाता है, यदि उसकी रस्सी (गुण) की
कोई पकड़नेवाला न हो ।

२. जब गुण के ग्राहक मिलें, तब गुण लाभ विनाय ।

जब गुण का ग्राहक नहीं, कौटो बटने जाय ॥

—बचोद

३. सुयोग्य व्यक्ति के अभाव में योग्यता का मूल्य बहुत कम रह जाता है ।

—नेपोलियन



१. निगुणान्य हतं रूपम् ।

—चाणक्यनीति ८।१६

गुणहीन के रूप-मोन्दर्य को घिबकार है ।

२ सीरत नही जो अच्छी, सूरत फिजूल है ।
जिस गुल मे वू नही, वह कागज का फूल है ॥
सीरत के हम गुलाम हैं, सूरत हुई तो क्या ?
मुखो-सफेद मिट्टी की, मूरत हुई तो क्या ?

—उर्बूशेर

३ स्वयमगुणं वस्तु न खनु पक्षपाताद् गुणवद् भवति ।
न गोपालग्नेहाद् उक्षा धरति क्षीरम् ॥

नीतियाख्यामृत १६।७-६

निगुणवस्तु किसी के पक्षपात ने गुणयुक्त नहीं होती, ग्वाने के स्नह से बल दूध नहीं दे सकता ।

४. पुरुषा अपि वाणा अपि गुणान्नुना. कस्य न भयाय ?

—सुभाषितरत्न-सप्तमसूया

गुण मे व्युत्पन्नितपुरुष और वाण किसी के भय उत्पन्न नहीं करता ?
(यहाँ गुण शब्द के दो धर्म हैं—नगुण और पशुष की होगी) ।

५. गुणविहीना बहजल्पयन्ति ।

—सुभाषितरत्न सप्तमसूया

गुणहीन व्यक्ति अधिक बोना करते हैं ।

६ नही चम्पा नही केतकी, भवर ! देख मत भूल ।
रूपहडो गुणवाहिरो, रोहीड़ा रो फूल ।

७ दूंगर दूराम् रनियामणा, दीर्घ ईसरदास ।
नेडा जाकर देखिए, (तो) पत्थर पाणी घास ॥

८. पापागो परिप्ररिना वनुमती वञ्चो मणिदुर्लभः ।

पत्थरों में पत्थरी भरी पत्थी है, किन्तु वञ्चमणि मिनना कठिन है । ऐसे ही निर्गुण-व्यक्ति बहुत हैं, किन्तु गुणी दुर्लभ हैं ।

९. गूणाहीन मृतकानुन्य ।

शासियाहन राजा एवं कानिकाचार्य का सवाद—

राजा—कौन जीवित है ?

आचार्य—जो गुणी एवं पान्द्रिणीन है, वही जीवित है ।

राजा—क्यों ?

आचार्य—मैं एक दिन मिथ्यों में गया—निर्गुण एवं पान्द्रिहीन गुण पशु-पक्ष आदि के समान है । मय मृग आदि सभी ने इन मंतप्य का विचार करके हुए इन प्रकार कहा—

मृगादि पशु—हम जन्म के बाद भी पशु आदि के रूप में लोगों के हाथ में हैं ।

पक्षी—हम पशु आदि के रूप में हैं ।

पशु—हम जन्म के बाद भी हैं ।

पक्षी—हम पशु आदि के रूप में हैं ।

पशु—हम जन्म के बाद भी हैं ।

पक्षी—हम पशु आदि के रूप में हैं ।

राजा—'उसी दिन से वह निर्मल निरा मया हि निर्गुण-पान्द्रिणी-
आदि मृतक के रूप में हैं ।



१. आख्या रो आघो, नाम नैणगुन्व ।
 जन्म रो मंगतो, नाम दाताराम ।
 जन्म रो दुखियारी, नाम सदामुख ।
 बांधं लगोटी, नाम पीताम्बरदास ।
 मागे भीख, नाम लखपतराय ।
 कने कोडी कौनी र नाम किरोडीमल ।
 पढ्यो न नित्यो नाम विद्याधर ।
 भाँटमान भूँपडी र नाम तारागढ ।

—राजस्थानी कहावतें

२. नाम दियो सूरु रणधीर, भाग्यो जावँ दीठा तीर ।
 नाम दियो छे घमोशाह, पाप करण रो नही परवाह ॥
 नाम दियो बाई रो लाछ, मांगी न मिले कुहडी छाछ ।
 नाम दियो बाई रो चपकली, गोबर बीणे गली-गली ॥

—राजस्थानी-पद्य

३. हीरालाल नाम तो कंकर को करे कार,
 श्रुद्धिचंद नाम पूजी गाँठ की गमावे है ।
 नाम तो मंतोपदाम पल मे भक्त उठे,
 गभीरमल नाम तो तोराने लटावे है ॥
 गोनाचंद नाम तो तो कुशोभा करत नित,
 प्यारचंद नाम ग्यार जग मे दसावे है ।

कहै कवि नाथूलाल नाम के हवाल सुनो,
 गुग्गु और नाम नाथ विरला ही में पावे है ॥
 कम्तूरी है नाम जामे वाम नाहीं हीगहै की,
 म्पीवाई नाम म्प काग ने तवायो है ।
 नाम है जड़ाव ताके सोनो नही तार पाम,
 राजीवाई नाम रावे श्रोवडो चटायो है ॥
 चाँदवाँ नाम सो तो काजल नू काली दीर्ग,
 म्यागीवाँ नाम जन्म राउ मे गमायो है ।
 कहै कवि नाथूलाल गुग्गु विना नाम सो तो,
 ध्वान हू के अग पे नुगन्ध ही लगायो है ॥

४. सेठ के पुत्र का नाम उद्योतपाल था । यज्ञ का धारण था कि इस नाम को बदल दें । ठकन नहीं माना । यह मुझे लोकन पीहन की तरफ रवाना हुई । रास्ते में एक मुर्दा मिला, जिसका नाम अमरपाल था । एक भिक्षुसेना मिला, जिसका नाम धनपाल था । जने ज्ञान पुत्रों हुई एक दान मिली, जिसका नाम लक्ष्मी था । इन सब के नामों से मुझपर यज्ञ का ज्ञान ही गया और दिम्बविधित दाता कहती हुई यह धानिम लपने पर आ गई ।

अमर मरुतो में मुग्गो, भोग्य माने धनपाल ।

विद्युमी ज्ञाना दीपनी, आलो म्पारो ठकनपाल ॥

—मया वा दोरा



१. दुष् बंकृत्ये, दुष्यन्ति-विकृति भजन्ति तेन तस्मिन् वा,
प्राणिन इति दोषः । दूषण वा दोषः ।

—अभिधानराजेन्द्रकोष, भाग ४ पृष्ठ २६३६

दुष् घातु विकार के अर्थ में है । जिनमें अथवा जिनमें प्राणी विकृत—
दूषित होते हैं, उमको दोष कहते हैं अथवा दूषण का नाम दोष है ।

२. वह्नपि गुणानेको दोषो ग्रसति ।

—कौटिलीयअर्थशास्त्र

एक ही दोष अनेक गुणों को म्मा जाता है ।

३. लाख गुणों को दोष उक, कर देता बदनाम ।
माने का खोनी मजा, कटुवी एक बदनाम ॥

—बोहा-संदोह

४. परस्वाना च हरण, परदाराभिदर्शनम् ।
मुहूदामतिशङ्का च, त्रयो दोषा धनाचहा ॥

—पाल्मीकि रामायण ६।८।१६

दूमरो के घनो का हरण, दूमरो की स्त्रियों ने अनृचित मग्यना और
मित्रों के प्रति अतिशङ्का—ये तीन दोष मनुष्य का नाश करने वाले हैं ।

५. उम्सूरमेया परदारमेया,
वेरपनवो च अनन्दता च ।
पापा च मित्ता मुकदन्मिता च,
गुने ह्य दाना गुग्निं वनगान्ति ॥

—शौचनिश्चय टीका

अति निद्रा, परम्प्रीगमन, लज्जा-भंगटना, अतर्प्य करना, घुरे लोगों की मित्रता और अतिरूपणता—ये छ दोष मनुष्य को वर्धादि करनेवाले हैं ।

६. दो बड़े दोष हैं —

(१) घन के नाथ घमण्ड, (२) मत्ता के नाथ जुल्म ।

७. पद् दोषा पुम्प्रेगोह, हातव्या भूतिमिच्छता ।

निद्रा तन्द्रा भय क्रोध, भ्रान्त्य दीर्घनृपता ॥

—पितृवृत्तोति १।८३

जो अपना बन्ध्याण चाहता है, उसे (१) निद्रा, (२) तन्द्रा (नींद की पूर्व अवस्था), (३) भय, (४) क्रोध, (५) भ्रान्त्य, (६) देर से काम करने का स्वभाव—ये छ दुर्गुण छोटे देने चाहिए ।

८. दोष को छोटा मत समझो ।

छोटा-ना माटा पंर का नहीं टिकने देता, छोटा-ना रज्जवण सागर को नहीं मुलने देता, लोटी-सी फुली व भांने की जगी धैन नहीं पडने देती, छोटी-सी साग की विनगारी ग्यारों मन घाम की जना झागनी है, छोटी-सी बाजी की बूद मनो बना रूप की पाप टामती है, छोटा-ना तिरु जहार की हुयी देता है, लोटी-गी घर्म की बात भीषण करत देता देती है, छोटा ना माट्टर नींद उपा देता है तदा लोटी-गी घमण्ड बने-कने बीं मे पय मयगो की नष्ट कर देता है, जैसे ही छोटा-ना दोष बान-भागी नष्टमान कर देता है ।

● सिध मज पावक पाप अति, हमति न भानिए, छोटे बानि ।

—सामञ्जसिमानस अरुणवशाष्ट २१

९. दोष आते ही सुखों का वसावन—मनुष्य संसार में आता है, धार विचरत मिथो । उनके साथ में—कर्म, परमा, विचरत और सुखमयी । मनुष्य के उनके विचारव्याज हुणे, एक लोटी-गी घमण्ड, हात, हुसर हीर देत करत । उनके साथ हुसर विने, उनके साथ में—कर्म,

लोभ, भय एवं रोग । पूछने पर उन्होंने भी अपने निवासस्थान क्रमशः दिमाग, आंख, हृदय और पेट बतलाए । मनुष्य ने विस्मित होकर कहा—वहा तो बुद्धि आदि रहती हैं ? तब क्रोध आदि बोले—हमारे आने पर वे (क्रोध से बुद्धि, लोभ से लज्जा, भय से हिम्मत और रोग से तदुरस्ती) घर छोड़ कर भाग जाती हैं ।

१० पित्तेन दूनरसने, सितापि तित्तायने ।

—नेपथीय-चरित्र ३।६।

पित्त के कारण जिह्वा के दूषित हो जाने पर मिथ्री भी कटवी लगती है (आंशु मे पीलिया हो जाने पर श्वेतवस्तु भी पीली दीपने लगती है । इसी प्रकार दोषों के प्रविष्ट होने पर गुण भी दूषित हो जाते हैं ।



१. मद्य देने पर आपनी, दोष न देने कोय ।
करे उजैरो दीप पे, तले अधेरो होय ॥

—पृथ्वरवि

२. आप अपनी ऐव से, बानिष्, नहीं होना कोट ।
जैसे बू अपने दहन (मृत्) की, जाती है कम नाक से ॥
उतनी ही दुश्वार अपने, ऐव की पटवान है ।
जिम तरह करनी मलामत, और की आमान है ॥

—ब्रूँ रोद

३. जब कभी मुझे दोष देने की इच्छा होती है, मैं स्वयं से पारम्भ
करता हूँ और उसने भागे नहीं बट पाता ।

—देविय प्रोक्त

४. अपना दोष दूँट निकालना, इतनी धीमे का काम है ।

—विदेहाण्ड

५. जमी निद्र न टाकती, जाती चुदन प्यान ।
निद्र छिपाना दोन निद्र, उगने ग्याता मार ॥

६. बुद्धि का देसन से जना, बुद्धि न भिदिषा कोद ।
जो मन गोक आपना, पुग्गना बुद्धि न कोद ॥

—बरोर

७. मद्य, कइमी, उदरद्वय । उदर, उदर को भण्डार का विद्विष
—उदर उदरनी से उदर को कपार से कइमी ।

—दरुणनी हंसरुत

८. जैसे—बाप के खाता-वही संभालनेवाले को लेना-देना दोनों स्वीकार करना पड़ता है, उसी प्रकार यदि तृ अपने गुणों को पात्रों से मिलाता है तो अपने दोषों को भी उनसे मिलाकर देय ।
९. धमेड जो अभूएण, अकम्मं अत्त-कम्ममुणा ।
अदुवा तुमं कासित्ति, महामोहं पकुव्वइ ॥

—दशामृतस्कंध ६।८

जो अपने किए हुए दुष्कर्म को दूसरे निर्दोष व्यक्ति पर टालकर उन्हें लादित करता है कि यह पाप तूने किया है, वह महामोहकर्म या ब्रह्म चरता है ।



१. यः संमदि परदोषं शसति, न स्वदोष-बहुव प्रत्यापयति ।
— कौटिलीय-अर्थशास्त्र

जो मना में दूसरों का दोष कहता है, वह अपने दोषों की चट्टनता प्रकट करता है ।

२. दूषणं मतिरुपति नीतमी, माध्यमी स्पृहति भापते न च ।
चीक्ष्य पार्ष्वमथ भापतेऽधमो, रास्टीति महता धमाधम ॥

उत्तमवृत्ति परदोष का स्वयं ही नहीं करती, मायमवृत्ति स्वयं तो कर लेती है, लेकिन करती नहीं, क्षयमवृत्ति ज्ञान का नेता है, किन्तु अपमाधम तो ज्ञान ही मनाने लगता है ।

३. त्विं की कीतो तान्नी हि अत तान्नी चीन (दाग) जन्नी हेरली है ।

४. यदा पश्यामि स्वदोषान्, दृष्टिः नमुनिना भवेत् ।
मिनाना जामने संश. पश्येया दोषदमन ॥

जब आप दोषों को देखते हैं तब दृष्टि लोधी हो जाती है और जल्दी से दोष देखने लगते हैं जो लोधी है ।

५. तयो छात्री नै जाम्नी बतारं ।

● प्राण न दोष, छात्री न दोष, तु पदा दोषे जातनी, ताने बटोसज नो हेर ।
— राजाचरणी बहावने

६. छज्ज तां बोले छालनी की बोले ।

—पंजाबी कहावत

७. चित्रकार ने घर की दीवार पर एक चित्र रखा एव उसमें गलती बताने की लोगो से प्रार्थना की । लोग आते गये और चित्र को काला करते गये । दूसरे दिन एक चित्र रखकर उसे सुधारने की प्रार्थना की, लेकिन किसी ने भी सुधारने का सुझाव न दिया ।

८. न सिया तोत्तगवेसए ।

—उत्तराध्ययन १।४०

दूसरो के छलछिद्र नही देखना चाहिए ।



१. गुण पूरी रूरी सुरभि, कस्तूरी कमनीय ।
एकहि अवगुण मलिनता, हरै जनक को जीय ॥
२. पूल हूवै जठे काटा भी हूवै ।
- गाम हूवै जठे (ढेङ्वाडा) अकूरडी भी हूवै ।
 - हवेली हूवै जठे तारतप्तानो भी हूवै ।
 - सका मे दलदरी भी हूवै ।

—राजस्थानी कहावतें

३. No garden without weeds
नो गार्डन विदाउट वीड्स ।

—अंग्रेजी कहावत

कोई उद्यान ऐसा नहीं है, जिनमें पान-पत्र बिन्दु न हों ।



१. सहयोगदानमुपकारः, लौकिको लोकोत्तरश्च ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ६।१६-२०

किमी को सहयोग देने का नाम उपकार है, वह दो प्रकार का है—
लौकिक और लोकोत्तर । भौतिकसहायता देना लौकिकउपकार है
और आत्मिकसहायता अर्थात् धर्मोपदेश एव निर्वन्ददानादि द्वारा सहा-
यता देना लोकोत्तरउपकार है ।

२. नीचेपूपकृतं उदके विशीर्णं लवणमिव ।

—नीतिशास्त्रामृत ११।४३

नीचों का उपकार करना जल में लवण डालने के तुल्य है ।

३. उपकृत्योद्घाटनं वैरकरणमिव ।

—नीतिशास्त्रामृत ११।४७

उपकार करके कहना, वैर करने के बराबर है ।

४. जिमने कुछ अहसा किया, एक वीरु हम पर रम्य दिया ।

सिर मे तिनका क्या उतारा, भर पे छपर रम्य दिया ॥

—घरबल

५. तनवार मारे एक बार, अहसान मारे बार-बार ।

—हिन्दी महाकव

६. अगर किसी को मारना, अहसान करके छोड़ दो ।
खुद-बखुद मर जाएगा, वह अगर्चे उन्सान है ॥

—उद्धेशेर

७. दल्यानु दनामण आपे तेमा पाट शानो । माग्यु आपे तेमा
शानो पाड । नातन् नोतरुं ने परवन्तु पाणी तेमा पाडशण शु !

—गुजराती कहावन



१. अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ॥

अठारहपुराणों में व्यासजी के दो ही वचन मुख्य हैं—दूसरों का उपकार करना पुण्य है और दूसरों को दुःख देना पाप है ।

२. परहित सरित्त धरम नहि भाई, परपीडा सम नहि अधमाई ।
—रामचरितमानस

३. संसारे न परोपकार सद्ग, पश्यामि पुण्य सताम् ।
—शोभेन्द्रकवि

मेरी दृष्टि में मनुष्यों के लिए परोपकार जैसा पुण्य संसार में दूसरा कोई नहीं है ।

४. परोपकृति-कैवल्ये, तोलयित्वा जनादनः ।
गुर्वीमुपकृति मत्वा, स्रवतारान् दक्षाऽग्रहीत् ॥
—मुभाषितरत्नभाष्याकार, पृष्ठ ७८

परोपकार और मोक्ष—इन दोनों को तोलन पर उपकार मारी जिसका, अनन्य विष्णु भगवान ने परोपकार करने के लिए दस अवतार लिए ।

५. नोनकार विना प्रीतिः, कथञ्चित् उदयञ्चिद् भवेत् ।
उपयाचिन दानेन, यतां देवा फलप्रदा ॥
—पंचतंत्र २।१२

उपकार किए बिना किसी को किसी से माय प्रेम नहीं होगा । मनोपे करने पर ही देवा ॥ मनोरथ पूरा करने है ।

६. घड़ी-घड़ी घटियान, प्रकट नद एम पुकारे ।
 अवर भवे ऊघता, जागले मिनव-जमारे ।
 दुनिया रे मिर दड, घटी-घटी आयु घटता ।
 काठ मिरे करवन, वार कितियेक कटता ।
 तिग हेन चैन चैतन ननुर ! धर्ममीन दिनमाहि धर !
 महु वान मार ममार मे, वयूहिक पर-उपकार कर !

—भाषास्तोत्रसागर

- ७ लोकोपकारी जीवन के तीन सूत्र—
 मन्य, नयम और सेवा ।

—विनीषा

८. परोपकार का अर्थ है—दूसरो का भला चाहना, दूसरो का भला करना और सेवा करना ।

—गांधी

९. श्राप श्रुतेनैव न कुप्यतेन, शानेन पाणिनं न कण्ठगेन ।
 विभाति ज्ञायः कर्मणापनायां, परोपकारेण तु नन्दनेन ॥

—भट्टृङ्गिनीतिमाहा ७२

दण्डन सपुत्रयो के बात शान्द्रभरण के, श्राप दात मे, और शानेन परोपकार मे शान्ति लीने है, भेदिक कुप्यते, श्रुतमे और पादन मे नहीं ।



१. उपकार करना मनुष्यता का उच्चगुण है और उपकार चाहना पामरता है ।

२. महान्, मेघराज की तरह उपकार का बदला नहीं चाहते ।

—तिरवस्तुषर

३. ईसा ने दस कोदियों के घाव साफ किए । एक ने आभार प्रकट किया, शेष यों ही गए ।

४. मय्येव जीर्णतां यातु, यत् त्वयोपकृत हरे !
जनः प्रत्युपकारार्थो, विपदामभिकाङ्क्षते ।

—यात्मीकि रामायण

लंकाविजय के बाद हनुमान विदा होने लगे, तब राम ने कहा—
हनुमान ! मुझे जो हमारा उपकार किया है, उसे हम हजम करना चाहते हैं अर्थात् उसका बदला देना नहीं चाहते, क्योंकि प्रत्युपकार करने का एकदूसरे व्यक्ति उपयोगी के लिए यान्त्रिक में विभाग की दृष्टि मरनेवाला होता है ।

५. प्रत्युपकृतने बह्वि, न भवति पूर्वोपकारिणश्च्युतः ।

—ध्याद्विषि

प्रत्युपकारी—उपकार का बदला पूरानेवाला पूर्वोपकारी के शगदर कभी नहीं होगा ।

६ निष्कृ दुष्कडियार समणाउसो ! त जहा—
अम्मापिउणो, भट्टिटन्स, धम्मावरियस्स ।

—स्वानां ३।१।२५

हे भगुमन् श्रमण ! तूने के उपजान ता बरका चुकना कटिा हे—
माता-पिता का, ग्यामी का जीव धर्मो तर्क ता ।

७ न पुमान् क्खञ्चन्निं। य प्रदुषकारमनपेक्ष्य परीवकार क्खेति ।

—नीतिपाठमाम् २।३१

सवृषकार की ज्ञाना न करके दूसरो का उपकार नसेवति का कर्मि
सुनि कर्मो योग्य हे ।



१. उपकारी का अपराध हो जाने पर उसे क्षमा कर देना कृतज्ञता है।
२. कृतज्ञता शाब्दिक धन्यवाद से कहीं बढ़कर है और कार्य, शब्दों और अधिक प्रकट करता है।

—सावे

३. कृतघ्नता के बाद सहने में सबसे ज्यादा कष्टप्रद कृतज्ञता है।

—एच. इत्यू. बी

४. किसी दार्शनिक को शब्दों की इतनी कमी महसूस नहीं हुई, जितनी कृतज्ञ को।

—कोट

५. प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्त ,
 गिरसि निहितभारा नालिकेरा नगराणाम् ।
 उदकममृतानुष्यं दद्युः - राजीवनान्त ,
 नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥

—शाक्य

बचपन में पिये हुए थोड़े-से पानी का स्मरण करते हुए, नाशिय
 वृद्ध जीवनभर अपने गिर पर पत्थर का बोझा धारण करने में
 मनुष्यों को अमृतानुष्य जन देने रहने हैं, क्योंकि मनुष्य किए
 उपकार को नहीं भूलता करती।

६. कृतज्ञ शेर—अपराधी घुसाम विपन्न भागा। उसने घुसा में करण
 शेर का काँटा निजाया। विपन्नियों ने घुसाम और दोन से
 पादकर हारिद दिया। वादवाह ने घुसाम को मारने के लिए
 विजरे में दाया। कृतज्ञ शेर ने अपने उपकारी को नहीं मारा।

तो क्या हुआ ? वह अपने शरीर से भी दुनियाँ के नन्दाप का नाश कर रहा है ।

४. पत्र-गुप्प-फल-च्छाया, मूल-वल्कल-दारुभिः ।

गन्ध-निर्यास-भस्मास्थि-ताकमै कामान् चितन्वते ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ २४७

वृक्ष अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, मूल, बल्कल, काष्ठ, गन्ध, दूध, रस, भस्म, गुठली और कोमलअङ्गु में प्राणियों को सुख पहुँचाने है ।

[हरा-नरा वृक्ष फल, फूल एवं छाया देता है। मूषणों पर टेवल कुर्मो, पट्टे, बिचाट आदि बनकर जगत की सेवा करता है, दीपन बनकर रमोर्दे आदि दनाता है तथा मनुष्यों के मुँहों को जलाना है । आग्नि राग बनकर भी वर्तन आदि को नाश करता है ।]

५. दीपक जलकर भी प्रकाश देता है, पंखा स्वयं घूमकर भी लोगों को हवा देता है तथा केश काने होकर भी मनुष्यों की शोभा बढ़ाने है । मनुष्यों ! तुम भी उनमें कुछ सीखो एवं पगोतवारी बनो !



१. परोपकारानून्यस्य, विद्मन् मनुष्यस्य जीवितम् ।

धन्यान्ने पशवो वेपा, चर्मोप्युपकरोति हि ॥

—मुभाषितस्त्रभाष्यान्तर, पृष्ठ ७८

परोपकारहीन मनुष्य का जीना विवकार है । वे पशु धन्य है, जिनके पाम भी लोगों का उपकार करते हैं ।

२. स लोहकारभग्नेषु, प्वसन्नपि न जीवति ।

—योगशास्त्र

उपकारहीन व्यक्ति लोहान की घोसणी से उरत व्याम लेता हुआ भी मुरा है ।

३. कृष्ण चाह् उर मन्थे, नगरानुपकारिणः ।

पायो भूत्वा पशून् पानि, भीरन् पानि रणादृणम् ॥

—शाकुन्तल

उपकारहीन व्यक्ति ने तो मैं कृष्ण हो भी प्रकृत मन्थता है, स्वार्थ ही भागकर स पशु से पानि करता है जोर मन्थन से वादन्तृणों की मना करता है ।

४. श्री कृष्ण मे अधिपार के, कर्त्त न पशुपकार ।

दुर्जन काक अधिपार मे, अधि न पशु उकार ॥

५. क्या हुआ तो क्या हम जैसे पशु मन्थ ।

पशु की उपादा पाती, पशु पाने सीव दूरे ॥

—शकुन्तल

१. कृतमुपकारं हन्तीति कृतघ्न ।

किए हुए उपकार की जो घान करता है वह कृतघ्न है ।

२. कृतमपि महोपकारं, पयड्व पीत्वा निरातङ्क ।

प्रत्युत हंतु यत्ने काकोदरसोदर राग्नो जयति ॥

— तुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५६

दुष्ट कृतघ्न किए हुए महान् उपकार को दूध की तरह पीकर मुर्खवत् उल्टा दूध पिलानेवाले को ही वादने की चेष्टा करना है ।

३. खावे जिकी ही थाली में हूँ ।

● खावे जिकी ही थाली में फोड़ें ।

● गावें नमम रो र गीत गावें वीरें रा ।

— राजस्थानी बहायर्षे

४. मेरी बिल्ली और मेरे ने ही म्याडें !

— हिन्दी बहायर्षे

५. कृतघ्ना धनलोभान्धा नापनारेक्षणाक्षमा ।

— वृषभसूत्रिणमातर

घन के लोभ में लयें कृतघ्न धरिण उपकार की रूष्टि में क्षमा को क्षम नहीं होते ।

६. कृतघ्नानां शिव दुःखः ।

वृषभसूत्रिणमातर

कृतघ्नों का दुःख शिव !

७. गोघ्ने चं व सुरापे च, चीरे भग्नवने तथा ।

निष्कृतिविहिता सद्भि, कृतघ्ने नास्ति निष्कृति ॥

—वाल्मीकिरामायण ८।३५।१२

गोपाली, शरावी, चोर और व्रतभ्रष्ट—इन सबके लिए तो मनुष्यों ने प्रायश्चित्त का विधान किया है, किन्तु कृतघ्न के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

८. ऋषि और चाण्डालिनी का संवाद—

ऋषि—

कर स्वप्नर गिर स्वान है, लोह जु गरुडे स्थ ।

कृतघ्न मम चानिनी, ऋषि पूजन है यन ?

चाण्डालिनी—

तुम तो ऋषि भोंरे भए, नहि जानत हो मेम ।

कृतघ्नी की चरगुरत, कृतघ्न है मुन्दक ।



उदार और उदारता

१. अयं निज परो वेति, गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरिताना तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

—पञ्चतन्त्र ५।३८

यह अपना है और यह पराया है—ऐसा विचार छोटी ममतायों ही करते हैं, उदारचरितों के लिए तो गारी पृथ्वी ही उनका कुटुम्ब है ।

२. उदारमनवाले विभिन्नधर्मों में अनुदार फर्क देगते हैं ।

—चीनी कहावत

३. उदार बादमी का वैभय गांव के बीचोबीच उगे हुए फलों में लदे हुए वृक्ष के समान है ।

—तिर्यक्तुपर

४. परगृहे गर्वोऽपि विक्रमादित्यायते ॥

—नीतिवाक्यामृत ११।३१

सभी मनुष्य दूसरों के घर में जाकर उनके पनादों को व्यर्थ बनाने के लिए राजा विक्रमादित्य की तरह उदार हो जाने हैं ।

५. उदारता अधिक देने में नहीं, किन्तु ममजशरी में देने में है ।

—अंशुमन

६. उदारता के दिना भीष्टी-यात्री पीपल की झनझनाहट एवं फरमानों की मन्मनाहट है ।

—इतार्द्धमत पाठ



१ पाप-कुपाप हर कोई न देवे, तिगुने कहीजे दातार ।

—पतायत की चौपाई १६१०

२. नाचिनार निराकर्तु, मना जिह्वा जत्रायने ।

—गुनादितमंसय

मार्गमार्ग को नहीं कहने के लिए मन्त्रियों की जीव उद्वेग ले
गयी है ।

३. कर्मस्वप्न विविर्मानं, जीव जीमवदात्म ।

दशी दधीनिरस्थीनि, नारत्यदय महात्मनाम् ॥

—गुनादितरत्नभाष्याकार, पृष्ठ ७३

कर्म के स्वप्न, विवि के मान, मेघ के जीव (पानी) और दधीनस्थिति
के क्षणी स्थिति यात के ही, यद्यपि महात्मनों के लिए न उन योग्य
हूय गीया ही गयी ।

४. ज्योष्ठ प्रापते मूर, महत्त्वैव च पश्चित ।

यत्ता रत्नमस्तेषु, दाता भरति ता मया ॥

—व्यासस्मृति ११४८

दूर प्रीत को न पत्र गीया है, यद्यपि दया के लक्ष होना है और महत्त्व
महत्त्व के लक्ष होना है, लेकिन दाता को वाच्य गीया है, पश्चित
महो भी गीया ।

५. दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा, दक्षिणावता दिवि सूर्याम ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते, दक्षिणावन्त प्रतिरन्त आयुः ॥

—ऋग्वेद, १।१२।६

दानियों के पास अनेक प्रकार का ऐश्वर्य होता है, दानी के लिए ही आकाश में सूर्य प्रकाशमान है । दानी अपने दान में अमृत पाता है, यह अतिदीर्घ आयु प्राप्त करना है ।

६. दाता नीचोऽपि सेव्य स्याद्, निष्फलो न महानपि ।
जनार्थी चारिर्धि त्यक्त्वा, पश्य क्लृप निषेवते ॥

—प्रसंगरत्नावली

छोटा होने पर भी दाता की सेवा की जाती है, लेकिन फल न देनेवाले महान व्यक्ति की नहीं की जाती । देगो, जल पीने का इच्छुक मनुष्य को छोड़कर इसीलिए गुणों की सेवा करना है ।

७. दाता और याचक का भेद--

एकेन तिष्ठताऽधस्ता-देकेनापगितिष्ठता ।
दानृ-याचकयोर्भेद, कराभ्यामेव सूचितम् ॥

—शाकुन्तल

एक [दाता का] हाथ ऊंचा रहता है और एक [याचक का] हाथ नीचा रहता है । ऊंचा-नीचा रहकर हाथों ने दाता और याचक का भेद दिखला दिया कि दाता ऊंचा और याचक नीचा है ।

८. न रग्णे विजया=दूरो-ऽध्वयनात् न पण्डित ।
न वरता वाक्पटुत्वेन, न दाना चार्थदानत ॥
उन्निवाग्ना जये शूरो, नर्मे चरति पण्डितः ।
तिप्रियांतिभिस्तता, दाना सम्मानदानत ॥

—रघुसम्भूति १।१६-६०

नर्मात् न शीघ्रतः सं हृतं करोति शूरो, नर्मे न चरति पण्डितः, दानेन

मे निपुण होने से व्यता नहीं होता और घन देने से दाता नहीं होता ॥५६॥

दृष्टियों के जीने में मूर होता है, धर्मात्तण में पण्डित होता है, विना-
कारी प्रियवचन योनि में यत्ना होता है और दूधने को सम्मान देने
में दाता होता है ॥६०॥

६. न दाता महान्, यद्य नान्ति प्र-वायोभजनं चित् ।

—नीतिपाक्यामृत १७।६

यदा दाता महान् है—रिमका मन प्रत्यागा में उत्पन्न नहीं है ।

६०. उत्तमोऽप्राथितो दत्ते, मध्यमः प्राथित. पुनः ।

यानकौर्याच्यमानोऽपि, दत्ते न त्वधनापम. ॥

—सन्दर्भित, पृष्ठ, ८

उत्तम सिद्धा मति देता है, मध्यम मांगने पर देता है विष्णु या यमना-
पम है, ही मांगने पर भी करी देता ।

६१. अशाना-भृगुपन्नामी, धन मत्तवत्त मन्ध्रानि ।

दानान् ययनं मन्त्रे, न मृनाऽऽयन् मुञ्चन्ति ॥

—दशमस्कन्धि २।२२

अशाना-भृगुपन्नामी ययनं मन्त्रे मन्ध्रानि है, मन्ध्रानि का ययन को मन्त्रे
दानान् ययनं मन्त्रे न मृनाऽऽयन् मुञ्चन्ति है यह दशमस्कन्धि
भी धन को मन्त्रे दानान् ययनं मन्त्रे मन्ध्रानि मन्ध्रानि मन्ध्रानि है ।

६२. धनममरे दाति यतिरि मन्त्रान्मन्त्रिणां ययनं ददात ।

—सुन्दरिपदा १०५२ मन्ध्रानि

धनममरे दाति यतिरि मन्त्रान्मन्त्रिणां ययनं ददात है मन्त्रान्मन्त्रिणां ययनं ददात है
ययनं ददात है ।

१. (क) राजा कर्ण ने महल को तुड़वाकर चन्दन का दान दिया एवं मग्ने समय अपने दाँतों को तोड़कर सोने का दान दिया। श्री कृष्ण ने उसकी प्रशंसा की।
(ख) एक बार इन्द्र ब्राह्मणरूप में कर्ण के पास पहुँचे एवं उगमे कवा एवं कुण्डल माँगे, जो उसे सूर्य से प्राप्त हुए थे तथा उगड़े प्राप्त थे। दाता कर्ण ने प्रसन्नतापूर्वक दे दिये। —महाभारत धनपर्व
२. भामाशाह ने अपने देश के लिए महाराणा प्रताप को इतना धन दिया, जिमने १२ वर्ष तक पञ्चीम राजा मनुष्य भोजन कर सकते थे।
३. जगद्गुरु साहू पदों के पीछे बैठ कर दान देता था। राजा बीसलदेव गेग बदल कर आया, हस्तदेगा से रईम गमक कर रत्नों की दो थैलियाँ दान में दी।
४. पण्डित ने चन्दन के बदले भवन के मिट्टी का तिनक लगाया हुआ कहा—गंगाजी की मूर्तिका चन्दन करके मान।
तब भवन ने दक्षिणा में मेटकी देते हुए कहा—गंगाजी की मेढ़की, गंगा करके जान।
तात्पर्य यह कि पण्डित जैसा तिनक लगावेंगे, यत्रमान गंगी ही तो दक्षिणा देंगे।
५. जयचून्पति महाराजा मानसिंह काकुत् की जीव कर नंका पर पटाई करके मग्ने, तब एक कवि ने कहा—
रघुपति रींन्हों दान, विप्र विमोषण जापनें।
मान महीपति मान। दियो दान किम लोत्रिए ?
कह दोहा मुनकर महाराज ने पहा जाना स्तुति कर दिया।

१. दान की व्याख्या—

(क) स्वपरोपकारार्थं वितरणं दानम् ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ६।१७

अपने एक परागरे उपकार के लिए देने का नाम दान है ।

(ग) अनुग्रहायं स्वम्यातिमर्गो दानम् ।

—नरवार्धगुप्त ७।३३

अनुग्रहायं दानु का त्याग करना दान है ।

२. दान के भूषण—

आनन्द्याश्रूणि रोमाञ्चं, बटुमान प्रियं वन ।

विधानुमोदनापाये, दानभूषणमञ्जवम् ॥

दान के पाँच भूषण हैं—(१) देने समय हाथों के झलकाना, (२) रोनाज लीना, (३) पाप का बटुनाप करना, (४) मोटी पानी पीना, (५) मस्तक की भद्रमोदना करना ।

३. दान के दोष—

अनादयो विकल्पन्, तेषुयं विप्रियं वन ।

परचापाप भ परचापि, नदानं दूरात्तममी ॥

दान के दोष दान हैं—(१) अनादय, (२) विकल्प, (३) परचापाप (४) परचापि, (५) दान देकर परचापाप करना ।

४. दान के भूषणों के दोष—

—विमोदा



दान की महिमा

१. पृथिव्या प्रवर दानम् ।

—उपदेशतरंगिणी

इस पृथ्वी में दान सर्वोत्तम कार्य है ।

२. तीन सद्गुण हैं—आशा, विश्वास और दान—इन तीनों में दान सबसे बढ़कर है ।

—चाण्डिक्य

३. तपः पर कृतयुगे, वेदायां ज्ञानमुच्चरेत् ।
द्रावणे यज्ञमेवाहुः—दानमेक कलौ युगे ॥

—मनुस्मृति १।८६

सत्ययुग में तपः, त्रेतायुग में ज्ञान, द्वापरयुग में यज्ञ और कलियुग में दान उत्कृष्ट माना गया है ।

४. नास्ति दानान् परमिदमिहोके परत्र च ।

—अश्विमेधिका

इस लोक और परलोक में दान के समान कोई मित्र नहीं है ।

५. दानेन वैराग्यमिदं वाचि नामम् ।

—मुभाषितरत्नभाष्यभाग, सूत्र ७२

दान में वैराग्यमिदं का नाम है ।

६. शान्तिद्वन्द्वनाशनं दानं, शीलं दुर्मतिनाशनम् ।

दुर्मतिनाशिनो व्रजाः, भारवा भवनाशिनो ॥

—वाल्मीकि ५।११

दान दक्षिणता का, शील दुर्गति का, बुद्धि भ्रमण का और भावना भय का नाश करनेवाली है।

७. पात्रे धर्मनिबन्धन तदितरे श्रेष्ठ दयादयापक,
मित्रे प्रीतिविवर्धन तदितरे वैरोपहारधमम् ।
भृत्ये भक्तिभगावहं नरपत्नी सम्माननपादक,
भद्रदात्री मुयशस्कर वितरण न कदाप्यहो निष्कृतम् ॥

—सिन्दूरप्रकरण ८१

आचार्य है कि दान करो भी निष्कृत नहीं होता। देवो ! गुणों को देने में धर्म होता है, अर्थों को (पत्नीका तो) देने में दयादयापक दया का जाहिर करता है। मित्र को देने में प्रेम बढ़ाता है, शत्रु को देने में घेरे का नाश करता है, नौकरों को देने में भक्ति पैदा करता है, राजा को देने में सम्मान दिखाता है और चारण-भाटों को देने में लज-कीर्ति फैलाता है।

८. ददं विनाति गन्धनि ।

—मुत्तनिपात १।१०।७

दान में मित्र छपनासे जाते हैं।

९. प्रशान्तमनं दान दानं नवप्रथमपापनं ।

—विष्णुट्टिमणो १।३८

दान प्रशान्त (दमन नहीं जिसे दक्षिण) का दमन करनेवाला गुण सर्वप्रथम है।

१०. दौ न दानि यत्र मोहे, मुने शिरोत वृद्धिः ।

मदहो मुयशस्कर, पत्नीनि गणुग रीतम् ॥

—सुभाषितसंग्रहमाध्याय श्लोक १६७

दान में शिरो १० है शीत वक्र में शीत ज्ञान । मुद्रक भी मुद्रक पर शिरो १० है शीत दानों लक्षण है।



१. दणहस्तः ममाहर । सहलहस्तः सकिर ।

—ऋग्वेद ३२.४५

सौ हाथों ने कमाओ और हजार हाथों ने बाँटो ।

२. तुलसी कर पर कर करो, करतल कर न करो ।
जा दिन करतल कर करो, ता दिन मरण करो ।

३. श्रद्धया देयं, अश्रद्धया देयं, श्रिया देयं,
ह्रिया देयं, भिया देयं, गंविदा देयम् ।

—तैत्तिरीय-उपनिषद् १।१।

श्रद्धा में दान दो, अश्रद्धा में भी दो, अपनी बातों हुई श्री (पद्मगन्धि)
में मे दो, श्रीवृद्धि न हो तो भी मोक्षलाज में दो, भय (गमाज तथा
अपमज के डर) में दो और मरिद् (प्रिम अथवा गिषेन बुद्धि) में दो ।

४. कलजुग नहीं कर—जुग है ।

एक हाथ में ले और दूसरे हाथ में दे ।

—हिन्दी कहावा

५. हाथे ले साथे ।

—गुजराती कहावा

६. देवं भो ! तवने-वन गृह्णतिभिर्नो नंगवन्नस्य ये,
श्री कर्णस्य यत्नेन विक्रमपनेन्द्रापि कीर्तिः श्रियता ।
अस्माकं मधुमान-भोगरहितं नष्ट निरान्तर्गतां,
निर्वैशरिणि मंत्रपादयुगलं धर्मव्यगो । मधिरा. ॥

—पाल्पायनोक्ति १।१।१८

मधुमक्षिणो का कहता है कि पुष्पागमाओं को धन का सेवन नष्ट न करके जिनका को देने रहना चाहिए । क्योंकि उसीके कारण फल, रसि और विराम आदि गदाओं का सब धात्र तक विद्यमान है । धान-भोग मिला का उभागा मधु, जो विराम में संनिता था, नाट हो गया । उनी द म में दम (मधु-मक्षिणो) अपने दोनों पैरों को दिव रही है ।

७ कि वा धन ताविरजनाय यन् न्यात् !

यत् धन विम नाम ता, जो जातदरनों को प्राप्त न हो गये !

८ जो तुम प्राप्त करना चाहते हो सो धरित करना सीखो ।

—मुभाषण्ड शोम

९ उपार्थिनानाम-राना, न्याग मूत्र हि रजगाम् ।

नयगाइर-नन्याना, परीवाह उपार्थमसाम् ॥

—पटसगन्ध २११४४

नयग विम दम धन का नाम कही गया है उपर्यो कहा है । जैसे—
तासाव क पासो या कही गया है उरि मदान हीरे धन का नाम है ।

१० गौरव धारः गता-सः विरम्य संन्यात् ।

विधित्तर्हि परीधान्त, परीषीनामर विरित ॥

—मुभाषिण्डमप्रमाण, पृष्ठ ७२

११. गौरव धारः गता-सः विरम्य संन्यात् ।
विधित्तर्हि परीधान्त, परीषीनामर विरित ॥

—पटसगन्ध, पृष्ठ ७१

विम दम धन का नाम कही गया है । विम दम धन का नाम कही गया है । विम दम धन का नाम कही गया है ।

१२. सक्कच्चं दानं देय, सहत्या दानं देय ।
चित्तीकतं दान देय, अनपविद्ध दान देय ॥

—दीर्घनिकाय २।१०।१

मत्कारपूर्वक दान दो, अपने हाथ में दान दो, मन में दान दो और ठीक तरह में दोपरहित दान दो ।

१३. दिन्नं होति मुनीहितं ।

—अंगुत्तरनिकाय २।१।२

दिया हुआ निरकाल तक सुरक्षित रहता है ।

१४. मच्छेरा च पमादा च, एवं दान न दीयति ।

—अंगुत्तरनिकाय १।१।३२

मात्मर्य और प्रमाद से दान नहीं देना चाहिए ।

१५. अप्पम्मा दक्खिणादिन्ना, सहस्सेन सम मत्ता ।

—अंगुत्तरनिकाय १।१।३२

घोटे में मे जो दान दिया जाता है, वह हजारों लोगों के दान की बराबरी करता है ।



५. अपना कर्ज न चुकाकर या अपने नौकरो को पूरी नौकरी न देकर दान देना गलत है ।

—यातकृत शिमेओनी, PRO. ६४७ (यहूदी धर्मग्रंथ)

६. अनुचित काम करने के लिए एव अपने स्वार्थ या सुख-सुविधा के लिये दान देना गलत है ।

—मिदराश निर्गमन, रव्या ३१।१८ (यहूदी०)

७. ऐ ईमानवालों ! अपने दान को अहसान जताकर या तकवीर पहुँचाकर बर्बाद मत करो ।

—कुरान २।२६४

८. तत् कि दानं यत्र नास्ति सत्कारः ?

—नोतिवाक्यामृत १।८

यह क्या दान है, जिनमें सत्कार नहीं ?

९. दान वही, जहा पुष्ट अहिमा ।

—आचार्यतुलसी

१०. वृथा दान धनाद्वयेषु ।

—चाणक्यनीति ५।१६

धनाद्वयदुष्पों को दान देना वृथा है ।

११. अतिदानाद् वनिर्बन्ध ।

—चाणक्यनीति ३।१७

अतिदान से बनि राजा बाँधा गया ।

१२. दानं हि विधिना देयं, तानि पात्रे गृह्णात्वियं ।

—रामकृति ३।२५

दुःखान् पात्र ॥ उचित समय में दान देना उचित है दान देना उचित ।

१३. कानि दानं यत् कालं महानि वृत्तानि विद्मः ?

—अथासहितपात्र

१. दसदान—

दसविहे दागो पण्णत्ते, तं जहा—
 अनुकंपा मंगहे चैव, भये कालुगिण्णय ।
 नज्जाए गारवेण च, अहम्मे पुण सत्तमे ॥
 ग्रम्मे य अट्ठमे वुत्ते, काहाइ य कर्पात्त य ।

—स्वर्णांग १०।७।४

भगवान् ने दस प्रकार के दान कहे हैं, यथा—(१) अशुभपादान,
 (२) मंगलदान, (३) भयदान, (४) कालुषिकदान, (५) लज्जादान,
 (६) गौरवदान, (७) लभमदान, (८) वमदान, (९) पात्रीदान,
 (१०) वनतीदान ।

२. तीनदान—

दातव्यमिति यद्दानं, दीयतेऽनुपकारिणे ।
 देधे काले च पात्रे च, तद्दानं नास्त्विहं स्मृतम् ॥२०॥

यत् प्रशुभकारार्थं, फलभृद्दिष्य वा पुनः ।
 दीयते च परिक्लिष्टं, तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१॥

अदेमकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
 अशुभकृतसदृशान, तत्ताममष्टमहृतम् ॥२२॥

—गीता, अ० ११

हे अर्जुन ! दातव्य इति कर्मस्य हे, तमे भाग के जो दान इस, का
 बोध दात के पात्र तमे वत्, प्रशुभकार न कर्मसत्तमे के लिए दि
 यता है यह दान 'सास्त्रिक' दान है । २० ।

जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अर्थात् बदले में अपना सासारिक कार्य सिद्ध करने की आशा से अथवा फल को उद्देश्य रखकर दिया जाता है, वह दान 'राजस' कहा गया है। २१।

जो दान विना सत्कार किये अथवा तिरस्कारपूर्वक, अयोग्य देश, काल में कुपात्रों के लिए अर्थात् मद्य-मामादि अभक्ष्यवस्तुओं के खानेवालों एवं चोरी-जागी आदि नीचकर्म करनेवालों के लिए दिया जाता है, वह दान 'तामस' कहा गया है। २२।

३ भिक्षुओं। दो दान हैं—भौतिकदान और धर्मदान। (आमिसदानं च धम्मदानं च) इन दोनों में धर्मदान श्रेष्ठ है।
—अंगुत्तरनिकाय २।१३।१

४. सर्वं दान धम्मदान जिनाति,
सर्वं रसं धम्मरसो जिनाति।

—धम्मपद २५।२१

धर्म का दान, सब दानों से बढ़कर है। धर्म का रस, सब रसों से श्रेष्ठ है।

५ धर्मदान के तीन रूप हैं—(१) अभयदान, (२) संयतिदान, (मुपात्रदान) (३) ज्ञानदान।



१. दाणाणसेठ्ठ अभयप्पयाण ।

—सुत्रकृतांग ६।२३

मम दोनो मे अभयदान श्रेष्ठ हे ।

२. दानं भूताभयग्याहुः, सर्वदानेभ्य उत्तमम् ।

—महाभारत, शान्तिपर्व २६२।३३

प्राणियों को अभयदान देना, मम दानों से उत्तम बताया गया है ।

३. न भूप्रदानं न भुवर्गदानं, न गोप्रदानं न तथाप्रदानम् ।

यथा वदन्तीह महाप्रदानं, सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ॥

—हितोपदेश ४।६१

महापुरुष अभयदान को सर्वोत्तम दान मानी है । उनके सामने पृथ्वी, नीला, गी एवं अन्न का दान नगण्य है ।

४. यो ददाति महन्नाम्नि, गवामभयदानानि च ।

अमरं सर्वभूतेभ्यः, नदा तमभियतने ॥

—महाभारत, शान्तिपर्व २६२।५

जो एक हजार गी तथा एक गी अन्न का दान करता है तथा दूसरा जो नगण्य दूर्वा को अभयदान देता है, पर महा गी और अन्नदान करने-वाले में बड़ा-पछा रहता है ।

५. तपोभिर्यज्ञदानैश्च, वाक्यैः प्रज्ञाश्रितैस्तथा ।
 प्राप्नोत्यभयदानस्य, यद् यत् फलमिहाश्नुते ॥
 लोके य सर्वभूतेभ्यो, ददात्यभयदक्षिणाम् ।
 स सर्वयज्ञैरीजानः, प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम् ॥

—महाभारत, शान्तिपर्व २६२।२८-२९

तप, यज्ञ, दान और ज्ञान-सम्बन्धी उपदेश के द्वारा मनुष्य यहाँ जो-जो फल प्राप्त करता है, वह सब उसे केवल अभयदान से मिल जाता है । जो जगत् में सम्पूर्ण प्राणियों को अभय की दक्षिणा देता है, वह मानो ! समस्त यज्ञों का अनुष्ठान कर लेता है तथा उसे सब ओर से अभयदान प्राप्त हो जाता है ।



१. सुक्षेत्रे वापयेद्वीजं, मुपात्रे दापयेद्धनम् ।
सुक्षेत्रे च मुपात्रे च, क्षिप्रं नैव हि दृष्यति ॥

—व्यासस्मृति ४६

सुक्षेत्र एवं मुपात्र में डाला हुआ द्रव्य नष्ट नहीं होता, अतः सुक्षेत्र में बीज बोओ और मुपात्र को धन दो !

२. व्याजे न्याद् द्विगुणं वित्तं, व्यवसाये चतुर्गुणम् ।
क्षेत्रे अन्नगुणं प्रोक्तं, पात्रेऽनन्तगुणं भवेत् ॥

—उपदेशनरिणी

घन व्याज में द्वागुना, व्यापार में चौगुना, गेत में सोगुना और मुपात्र में दिया हुआ अनन्तगुणा होता है ।

३. निर्वीणाधिवमाननोति निहित पात्रे पवित्र धनम् ।

—सिद्धरप्रकरण ७७

मुपात्र को दिया हुआ पवित्र धन (द्रव्य) मुक्ति लक्ष्मी को देनेवाला होता है ।

४. नमस्योवागवन्मग्नं भन्ते । तद्वान्त्वं समज्ज वा, माह्वगं वा,
पानुत्तमसिद्धेयं अन्नस्य-वाण-वाऽय-वाऽम-वाऽमग्नं पात्रेऽभेदात्तन्न
किं कश्चिद् ?

नोयन्ता । एतेनो निवृत्तं कश्चिद्, नन्वि य नो पात्रे कश्चिद्
कश्चिद् ।

—मण्डली ६१६

भगवन् ! श्रमणोपासक यदि तथारूप श्रमण-माहन को प्रामुख-एपणीय आहार देता है तो क्या लाभ होता है ?

गोतम ! वह एकान्त कर्मनिर्जरा करता है, लेकिन किञ्चिन्मात्र भी पाप नहीं करता ।

५. देई सुपातर दान, न करै मन अभिमान ।

संसार परत्ति करै ए, गिवनगरी वरै ए ॥

—व्रताव्रत की चौपाई ५।२४

६ भावना फली—

कोटे मे (भालरा पाटण की) एक वहन ने १२ वर्ष तक घोवण की भावना भाई । अचानक भारमलजी स्वामी पधारे, घोवण का व्रत निपजा एव भावना फली ।

(मुपाग्रदान के साथ कुपात्रदान भी समझना चाहिए) ।



कुपात्रदान

समणोवासगस्सण भंते । तहारूवं असजय-अविरय-अपडिहय-
पच्चक्खायपावकम्मं फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण
वा अणोसणिज्जेण वा असण-पाण जाव किं कज्जइ ?

गोयमा ! एगंतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से कावि
निज्जरा कज्जइ ।

—भगवती ८।६

भगवन ! तथारूप अमयत, अविरत एवं पापकर्म से अनिवृत्त व्यक्ति
को प्रासुक, अप्रासुक, एपणीय अथवा अनेपणीय अशम-पान-खादिम-
स्वादिम देने से श्रावक को क्या फल होता है ?

हे गौतम ! उसे एकान्त पाप होता है, किसी भी प्रकार की निर्जरा नहीं
होती ।

वित्तीर्य दान तु असंयतात्मने, जन फलं काङ्क्षति पुण्यलक्षणम् ।
वित्तीर्य बीजं ज्वलिते स पावके, समीहते सस्यमपास्तलक्षणम् ॥

—अमितगति-श्रावकाचार, परिच्छेद ११

असंयतआत्मा को दान देकर जो पुण्यफल की इच्छा करता है, वह
जलती हुई अग्नि में बीज डालकर धान्य उत्पन्न करने की आशा करने-
वाला है ।

भस्मनि हुतमित्राणाञ्चै स्वार्थं व्यय ।

—नीतियावयामृत १।११

अपात्र में धन ध्वंस करना राख में हवन करने के समान है ।

४. कुपात्रदानाच्च भवेद्दरिद्रो, दारिद्र्यदोषेण करोति पापम् ।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति, पुनर्दारिद्रः पुनरेव पापी ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १५७

कुपात्रदान से प्राणी दरिद्र होता है । दरिद्र होकर पाप करता है और पाप करके नरक जाता है । इस प्रकार बार-बार दरिद्र एव पापी बनता रहता है ।

५. नवार्यपि प्रयच्छेत्तु, वैडालव्रतिके द्विजे ।
न वकवृत्तिके विप्रे, नावेदविदि धर्मविद् ॥

—मनुस्मृति ४।१६२

धर्मज्ञपुरुष को विडालवृत्तिवाले, वकवृत्तिवाले, और वेदों को नहीं जानने-वाले ब्राह्मण को पानी भी नहीं पिलाना चाहिए ।

६. जो देगा शरीरो को तू माल-दौलत ।
गुनहगार होगे वे तेरी वदौलत ॥

—उद्देशर

- ७ सुपात्र दान मुगति रो मारग, कुपात्र सू रुले संसार ।

—व्रताव्रत की चौपाई १६।५०

- ८ अत्रत मे दे दातार, ते किम उतरै भवपार ।
छादो इग लोक रो ए, मारग नही मोख रो ए ॥

—व्रताव्रत की चौपाई ५।१६



१. पाकारेणोच्यते पाप, त्रकारस्त्राणवाचकः ।
 अक्षरद्वयसंयोगे, पात्रमाहुर्मनीषिण ॥१६६॥
 न विद्यया केवलया, तपसावापि पात्रता ।
 यत्र वृत्ती इमे चोभे, तद्वि पात्र प्रकीर्तितम् ॥२००॥

—याज्ञवल्क्यस्मृति १

‘पा’ पाप का और ‘त्र’ रक्षण का वाचक है। इन दोनों अक्षरों के संयोग से पात्र को विद्वान् लोग पात्र कहते हैं, अर्थात् जो आत्मा को पाप से बचाता है, वह पात्र है ॥१६६॥

केवल विद्या से या केवल तपस्या से पात्रता नहीं आती। जिसमें—ये दोनों (विद्या-ज्ञान और तपस्या-चारित्र्य) होते हैं, वही पात्र कहा गया है ॥२००॥

२. उत्कृष्टपात्रमनगारमणुव्रताढ्यं,
 मध्यं व्रतेन रहितं सुदृश जघन्यम् ।
 निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रं,
 युग्मोज्जिभक्त नरमपात्रमिदं नु विद्वि ॥

महाव्रती-अनगार उत्कृष्टपात्र है, अणुव्रती मध्यमपात्र है, नम्यव्रती जघन्यपात्र है, नम्यव्रतहीन-व्रतधारी “कुपात्र” है और नम्यव्रत-व्रत दोनों से हीन व्यक्ति अपात्र है।

३. सैव भूमिस्तदेवाम्भः, पण्य पात्रविशेषता ।

—याज्ञवल्क्यस्मृति

एक ही भूमि और एक ही पानी होने पर भी नीम और आम में जो अन्तर है, वह बीजरूप पात्र की ही विशेषता है ।

४. पात्रापात्रविवेकोऽस्ति, धेनु-पन्नगयोरिव ।
तृणात्संजायते क्षीरं, क्षीरात्संजायते विपम् ॥

—व्यास

पात्र-अपात्र में गाय और साप जितना अन्तर है । गाय को खिलाये हुए तृणों से दूध बनता है और साप को पिलाये हुए दूध से जहर बनता है ।



१. सर्वेषामपि दानानां, ब्रह्मदानं विशिष्यते ।

—मनुस्मृति ४।२३३

सभी दानों में विद्यादान विशिष्ट माना गया है ।

२. दक्षिणा ज्ञानसन्देश ।

—श्रीमद्भागवत ११।१६।३६

ज्ञान का उपदेश देना ही दक्षिणा-दान है ।

३. जं तेहि दायव्वं, तं दिन्नं जिणवरेहि सव्वेहि ।

दसण-नाण-चरित्तस्स, एस तिविहस्स उवएसो ॥

—आवश्यकनियुक्ति ११०३

तीर्थ करो ने जो कुछ देने योग्य था, वह दे दिया है, वह समग्रदान यही है—दर्शन-ज्ञान और चारित्र्य का उपदेश ।



- १ कृपणेन समो दाता, न भूतो न भविष्यति,
अस्पृशन्नेव वित्तानि, य परेभ्य प्रयच्छति ।

—प्रसङ्गरत्नावलि

कृपण के समान दानी न तो हुआ और न कभी होगा । जो अपने मारे धन को स्वयं न छूना हुआ दूसरो को दे देता है अर्थात् छोड़कर मर जाता है ।

२. यदधोऽध क्षिती वित्तं, निचखान मितपच्च ।
तदधोनिलय गतु, चक्रे पन्थानमग्रतः ॥

—शाकुन्तल

कृपण ने जमीन में जो धन को दाटा है, वह मानो ! अधोलोक में जाने का रास्ता बनाया है ।

३. दृढतरनिबद्धमुष्टेः, कोशनिपन्नस्य सहजमलिनस्य ।
कृपाणस्य कृपाणस्य, केवलमाकारतो भेद ॥

—शाकुन्तल

कृपण और कृपाण-तलवार में केवल एक आकार की मात्रा का अन्तर है, गेप वातो में दोनों तुल्य हैं—जैसे दोनों की मुष्टि दृढ है । दोनों कोप (गजाना एवं खड्ग का घर) में रहनेवाले हैं एवं दोनों ही स्वभाव में मलिन (काले एवं मैले) हैं ।

४. कृपणो धनलोभेन, स्वा भार्या नाभिगच्छति ।
अस्या यो जायते पुत्रः, स मे वित्तं हरेदिति ॥

—सभातरङ्ग

कृपण धनलोभ के वश अपनी स्त्री के पास भी नहीं जाता। उसको भय रहता है कि इसके पुत्र होगा, वह मेरा धन ले लेगा।

५. यो न ददाति न भुङ्क्ते, सति विभवे नैव तरय तद् द्रव्यम् ।
तृणमय-कृत्रिमपुरुषो, रक्षति गस्यं परस्यार्थे ॥

—शाकुन्तल

धन होने पर भी जो दान एवं भोग नहीं करता, वास्तव में धन उसका है ही नहीं। वह तो क्षेत्रस्थित तृणमय पुरुष के समान दूसरो के लिए ही धन-धान्य आदि को रक्षा करता है।

६. यद्ददाति यदश्नाति, तदेव धनिनो धनम् ।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति, दारैरपि धनैरपि ॥

—ध्यासस्मृति ४।१७

जो किसी को दान में दे देता है या जो खा लेता है, वास्तव में धनिको का वही धन है। मरने के बाद तो उसकी स्त्री एवं धन से दूसरे व्यक्ति ही श्रीडा करते हैं।

७. नवे कदरिया देवलोकं वजन्ति ।

—धम्मपद १३।११

कृपण व्यक्ति स्वर्ग में नहीं जाते।

८. न देय नोपभोग्य च, लुब्धैर्यद् दुःख-सञ्चितम् ।
भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो, मधुहैवार्थविन् मधु ॥

—भागवत १।८।१५

लोभो-कृपण पुरुषो द्वारा दुःखपूर्वक सञ्चित (एकत्रित) हुआ धन न तो किमी को दिया जाता है और न उनमें स्वयं खाया जाता है। वह तो जैसे मधु-मक्षिणो का मक्षित-मधु मधुहर्ता के काम आता है, उन्ही प्रकार दूनगे के भाग में आता है।

९. जोड़-जोड़ राग्नी कदे कर तें न चाग्नी,
ताकी साग्नी मधुमाग्नी जेसी दई जमा जानी मे ।

रावन रजाई रति मरता न पाई,
लक कचन लुटाई धन मित्यो धूलधानी मे ।
हाथ से न हाली गाठ बाँधे से न चाली,
नर कैते गए खाली वात सुनी वेदवानी मे ।
अरे अभिमानी ! कहा कहिये कहानी,
देख ! वीसल की वीम कोड डूब गई पानी मे ॥

—भाषाश्लोकसागर

१० द्वावम्भसि प्रवेष्टव्यी, गले बद्ध्वा दृढा गिलाम् ।
विद्वास चाप्रवक्तार, धनवन्तमदायिनम् ॥

—विकुरनीति १।६६

नही बोलनेवाला विद्वान् और दान नहीं देनेवाला धनी—इन दोनों को गले में शिना बांधकर पानी में डुबो देना चाहिए ।

११ दिन ऊग्या दातार, याद करे सारी डला ,
सूमा रो स सार, नाम न लेवै नाथिया ।

—सोरठा सप्रह

१२ मागण गया सो मर गया, मरे सो मागण जाय ।
मगला पहली वो मरे, जो होता नट जाय ॥

१३ कृपण के विषय में पत्नी-पति सम्वाद—

पत्नी—वसती वस्यो न जाणियो, न जाण्यो मागण महत् ।

जम्मा किएविच जाणियो, है तने पूछू कंत ?

पति—हाथा दियो न हर भज्यो, कियो न सुकृत काय ।

बोभा मरती वापडो, वमुधा दियो बताय ॥

१४. उदासीन कृपण और उसकी पत्नी—

पत्नी—कहा गाठ से गिर पड्यो, कहा कछु किमको दीन्ह !

पत्नी पूछें सूम से, क्यो पिया । वदन मलीन ?

पति—ना कछु गाठ से गिर पड्यो, ना कछु किसको दीन्ह ।

देता देख्यो औरन, तात वदन मनीन ॥

—कबीर

१५. कृपण का चिन्तन—

(क) जामे दो अठन्नी चार पावली दुअन्नी आठ,
 आने पुनि तामे सदा सोलह समात हैं ।
 वत्तीस अधन्नी और चौंसठ तो पैसे होत,
 एक शत आठ वीस अधेले सुहात है ।
 दौय शत छप्पन छदाम जामे देखी जात,
 पांच शत वारह सु दमडी कहात हैं !
 घोर कलिकाल के कराल या समा के बीच,
 ऐसो यो रूपडयो भइया ! कैसे दियो जात हैं ?

—भाषाश्लोकसागर

(ख) छाछ घालतां छाती फाटे, दूध घालणो दोहरो ।
 दही घालतां माथो हूखै, उत्तर देणो सोहरो ॥

—राजस्थानी दोहा

१६. कृपण को 'दकार' से घृणा—

(क) देवता को मुर औ असुर कहे दानव को,
 दाई को सुघाय तिया दार को लहत है ।
 दर्पण को आरसी त्यो दाख को मुनक्का कहे,
 दास को खवास आमखास विचरत है ।
 देवी को भवानी और देहरा को मठ कहै,
 याही विवि घासीराम रीति आचरत है ।
 दाना को चवीना दीपमाला को चिरागजाल ।
 दैवे के डर कभी दहो ना कहत है ।

(ख) देहल दूर करो घर की अरु, आवण-जाण करो उकनाले ।
 चावल-दाल कदे मत राय तूं, शाक मदा हित रांध उवाले ।
 सूम को पूत कहै मुन कामिनी, मोय रह विन ही उजियाले ।
 जो जग जीवनी चाहे कई दिन, तो दहे के नाम दियो मत बाले ।

—भाषाश्लोकसागर

(ग) जल डूवूं अगनी जलूं, अहि-मुख आंगली द्यू ।
इतरा मैं कारज करूं, दहो नाँव न ल्यू ॥

- वावन अवखर मे वडो, नघो सहुनो सार ।
दहो तो जाणूं नही, लल्ले अवसर प्यार ॥

—राजस्थानी दोहे

(घ) चारण कवि ने एक कृपण सेठ को खूब विरुदाया । खुश होकर कृपण ने कह दिया कि तुम्हें पगडी दूंगा । दूसरे दिन कवि ने ज्योही पगडी मागी, सेठ ने निम्नलिखित पद्य कहा एवं सारा पासा ही पलट दिया—

पाघ देनी कही सो तो मांगत हो आज ही पै,
आवेगो आषाढ तव वन हु बुवावेंगे ।
होवेगो कपास तव लोढ-पीज कात बुन,
घोवी कोऊ चतुर तापे ऊजरी घुलावेंगे ।
बुगचा में बांध घर रखेंगे कितेक दिन,
आवेगो कपुवो तव गुलावी रगावेंगे ।
हम बांध, पूत बांध पोते-पड़पोते बांध,
पोछे हम वाही पाघ तुमको दिलावेंगे ॥

—भाषाश्लोकसागर



१५ कृपण का चिन्तन—

(क) जामे दो अठन्नी चार पावली दुअन्नी आठ,
 आने पुनि तामे सदा सोलह समात हैं।
 वत्तीस अघन्नी और चौसठ तो पैसे होत,
 एक गत आठ वीस अघेले सुहात हैं।
 दोय गत छप्पन छदाम जामे देखी जात,
 पाच गत बारह सु दमडी कहात हैं।
 घोर कलिकाल के कराल या समां के बीच,
 ऐसो यो रूपइयो भइया। कैसे दियो जात हैं ?

—भाषाश्लोकसागर

(ख) छाछ घालता छाती फाटे, दूध घालणो दोहरो।
 दही घालतां माथो दूखै, उत्तर देणो सोहरो ॥

—राजस्थानी दोह

१६ कृपण को 'दकार' से घृणा—

(क) देवता को मुर औ असुर कहे दानव को,
 दाई को सुघाय तिया दार को लहत है।
 दर्पण को आरसी त्यो दाख को मुनक्का कहे,
 दास को खवास आमगवास विचरत है।
 देवी को भवानी और देहरा को मठ कहै,
 याही विधि घासीराम रीति आचरत है।
 दाना को चवीना दीपमाला को चिरागजाल।

द्वे के डर कभी दटो ना कहत है।

(ख) देहल दूर करो घर की अरु, आवण-जाण करो इकनाले।
 चावल-दाल कदे मन राख तू, याक सदा हित रांघ उवाने।
 सुम को पूत कहै मुन कामिनी, सोय रह दिन ही उजियाले।
 जो जग जीवनी चाहे कई दिन, तो दह के नाम दियो मत बाने।

—भाषाश्लोकसागर

(ग) जल डूबू अगनी जलूं, अहि-मुख आंगली द्यू ।
इतरा मैं कारज करूं, ददो नाँव न ल्यू ॥

- बावन अक्खर मे बढो, नन्नो सहनो सार ।
ददो तो जागूं नही, लल्ले अक्कर प्यार ॥

—राजस्थानी दोहे

(घ) चारण कवि ने एक कृपण सेठ को खूब विरुदाया । खुश होकर कृपण ने कह दिया कि तुम्हें पगडी दूंगा । दूसरे दिन कवि ने ज्योही पगडी मागी, सेठ ने निम्नलिखित पद्य कहा एवं सारा पासा ही पलट दिया—

पाघ देनी कही सो तो मांगत हो आज ही पै,
आवेगो आषाढ तब बन हु बुवावेंगे ।
होवेगो कपास तब लोढ-पीज कात बुन ,
घोवी कोऊ चतुर तापे ऊजरी धुलावेंगे ।
बुगचा मे बांध घर रखेंगे कितेक दिन ,
आवेगो कमुवो तब गुलावी रगावेंगे ।
हम बांध, पूत बांध पोते-पड़पोते बांध ,
पीछे हम वाही पाघ तुमको दिलावेंगे ॥

—भाषाश्लोकसागर



१. तृण लघु तृणात्तूलं, तूलादपि च याचकं ।
वायुना किं न नीतोऽसौ, मामय याचयिष्यति ॥

—चाणक्यनीति ६।१५

तृण हलका है, उससे हलका तूल (रई) है, तूल से भी हलका याचक—
मागने-वाला है । मेरे से कुछ मांग लेगा इस भय में पवन ने भी इसे नहीं
उड़ाया ।

२. काक आह्वयते काकान्, याचको न तु याचकान् ।
काक-याचकयोर्मध्ये, वरं काको न याचकं ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७६

एक काक (कीवा) हमारे काक को प्रेम से आह्वान करता है, किन्तु
याचक-याचक को नहीं, अतः याचक की अपेक्षा काक उत्तम है ।

३. भिक्षुको-भिक्षुकं दृष्ट्वा, स्वानवद् गुग्गुरायते ।

३

—सुभाषितरत्नमजूषा

भिखारो-भिखारी को देगकर कुत्ते की तरह गुग्गुराने लगता है ।

४. कोऽर्थो गतो गौरवम् ?

—पञ्चतन्त्र १।१५७

कोई भी याचक गौरव को प्राप्त नहीं हुआ ?

५. तावद्गुणा गुणत्वं च, यावन्नार्थयते परम् ।

अर्थो चेत् पुन्यो जात, क्व गुणा क्व च गौरवम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७४

वही तक गुणियों के गुण हैं और वही तक गुरुओं का गौरव है, जहाँ तक वे दूसरों के पास नहीं मागते। मागने पर गुण और गौरव दोनों नष्ट हो जाते हैं।

६ स्वार्थं धनानि धनिकात्प्रतिगृह्णतो य—
दास्यं भजेद् मलिनता किमिदं, विचित्रम् ।
गृह्णन् परार्थमपि वारिनिधे पयोऽपि,
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७७

धनिकों से अपने लिए धन लेते समय लेनेवाले के मुख पर कालिमा छा जाती है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। दूसरों के लिए समुद्र का जल लेने पर भी देखो ! यह मेघ काला हो जाता है।

७ एहि गच्छ ! पतोत्तिष्ठ ! वद ! मौनं समाचर !
एवमाशाग्रहग्रस्तैः, क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः ॥

—हितोपदेश २।२४

डूधर आजा, चला जा, बैठ जा, खड़ा हो जा, बोल, चुप हो जा ! आशाग्रह ग्रह में प्रमित याचकों के साथ धनिक लोग—ऐसे खेलते रहते हैं।

८. याचक की प्रभु से प्रार्थना—

हे करतार कहे अरजी अब, भूल लिखी मत काहू के टोटो ।
ऐसी ललाट लिखे मत काहू के, मागन जाय महीपति मोटो ॥
तू अपनो वृध जानत है प्रभु ! मागन ने कहु और न खोटो ।
तू वनि के जव द्वार गयो तव, वावन आगल हो गयो छोटो ॥

—भाषाशुक्तागार

९. गगने नू कोई गली छानी कोनी ।

● है नायो माग-ताग, तू नै गधै री टाग ।

—राजस्थानी कहावतें

१०. अद्भुत भिखारी—वि. सं. २००४ की बात है, विलेपारला (बम्बई) में हम एक दिन बाहर जा रहे थे। रैडी में बंठा हुआ एक अपाहिज मिला। जिसके हाथ-पैर नाक-कान कटे हुए थे। लँगोटी पहनी हुई थी एवं मुह में सिगरेट थी। रैडी खीचनेवाला व्यक्ति कह रहा था, अपाहिज को कुछ दो, बड़ा पुण्य होगा। देखकर आश्चर्य हुआ और स्थानीय भाइयों से पूछा तो पता लगा कि गुंडो-बदमाशों की एक टोली है। उसका काम यही है कि बच्चों को उडाकर विक्रतांग बना लेना और उनके सहारे दुनिया को ठग खाना। सुबह से शाम तक पचासों रुपये इकट्ठे कर लेते हैं। अपाहिज को केवल रोटी-सिगरेट आदि मिलते हैं। शेष रुपये बदमाशों की टोली हजम कर जाती है।

— धनमुनि



१. सेवेव मानमखिता, ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम् ।
हरि-हरकथे व दुरित , गुणशतमऽप्यऽथिता हरति ॥

—हितोपदेश १।१३६

जँमे—सेवा स्वाभिमान को, चान्दनी अन्वकार को, बुढापा खूबमूरती को और हरि-हर की कथा सब पापो को हरती है, वैसे ही याचना सँकडो गुणो को हर लेती है ।

- २ विशाखान्ता गता मेघा, प्रसवान्तं हि यौवनम् ।
प्रणामान्तः सता कोपो, याचनान्तं हि गौरवम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६३

जँमे विशाखा नक्षत्र के बाद मेघ, प्रमद के बाद स्त्रियों का यौवन और प्रणाम के बाद सत्पुरुषो का क्रोध नष्ट हो जाता है, वैसे ही किसी से कुद्द मागने के बाद गौरव नष्ट हो जाता है ।

- ३ लघुत्वमूलं हि किमर्थितैव, गुस्त्वमूलं यदयाचनं च ।

—शङ्कर-प्रश्नोत्तरी १८

- लघुता का मूल क्या है ? मागना ।
 - गुस्ता का मूल क्या है ? नहीं मागना ।
४. बुरो प्रीति को पंथ, बुरो जंगल को वासो ।
बुरो नार को नेह, बुरो मूरख सो हासो ।
बुरी मूम की नेव, बुरो भगिनोधर भाई ।
बुरी कुनच्छति नार, मास घर बुरो जमाई ।

१०. अद्भुत भिखारी—वि. स. २००४ की बात है, विलेपारला (बम्बई) में हम एक दिन बाहर जा रहे थे। रैडी में बैठे हुए एक अपाहिज मिला। जिसके हाथ-पैर नाक-कान कटे हुए थे। लँगोटी पहनी हुई थी एवं मुँह में सिगरेट थी। रैडी खींचनेवाला व्यक्ति कह रहा था, अपाहिज को कुछ दोगे, बड़ा पुण्य होगा। देखकर आश्चर्य हुआ और स्थानीय भाइयों से पूछा तो पता लगा कि गुंडो-बदमाशों की एक टोली है। उसका काम यही है कि बच्चों को उडाकर विक्षताग बना लेना और उनके सहारे दुनिया को ठग खाना। सुबह से शाम तक पचासों रुपये इकट्ठे कर लेते हैं। अपाहिज को केवल रोटी-सिगरेट बाँदि मिलते हैं। शेष रुपये बदमाशों की टोली हजम कर जाती है।

— धनमुनि



१. सेवेव मानमखिल, ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम् ।
हरि-हरकथे व दुरित , गुणशतमऽप्यऽथिता हरति ॥

—हितोपदेश १।१३६

जैसे—सेवा स्वाभिमान को, चान्दनी अन्धकार को, बुढापा खूबमूरती को और हरि-हर की कथा सब पापो को हरती है, वैसे ही याचना सैकड़ो गुणो को हर लेती है ।

२. विशाखान्ता गता मेघा , प्रसवान्तं हि यौवनम् ।
प्रणामान्त सता कोपो, याचनान्त हि गौरवम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६३

जैसे विशाखा नक्षत्र के बाद मेघ, प्रभव के बाद स्थियों का यौवन और प्रणाम के बाद सत्पुरुषो का क्रोध नष्ट हो जाता है, वैसे ही किसी से कुछ मागने के बाद गौरव नष्ट हो जाता है ।

३. लघुत्वमूल हि किमर्थितव, गुरुत्वमूल यदयाचन च ।

—शङ्कर-प्रश्नोत्तरी १८

- लघुता का मूल क्या है ? मागना ।
गुरुता का मूल क्या है ? नहीं मागना ।
४. बुरो प्रीति को पथ, बुरो जंगल को वासो ।
बुरो नार को नेह, बुरो मूरख सो हासो ।
बुरी नूम की सेव, बुरो भगिनीघर भाई ।
बुरी कुलच्छनि नार, मास घर बुरो जमाई ।

बुरो पेट पंपाल है, बुरो युद्ध से भागनो ।
गंग कहे अकबर सुनो ! सबसे बुरो है मागनो ॥

५. वेपथुर्मलिनं वक्त्रं, दीना वाग् गद्गदस्वरः ।
मरणो यानि चिह्नानि, तानि चिह्नानि याचने ॥

—श्यास

कंपन, वदन का मलिन होना, दीनतायुक्त वाणी एवं गद्गदस्वर आदि,
जो मरण के चिन्ह हैं, याचना करते समय याचक के शरीर में भी वे
ही चिन्ह हो जाते हैं ।

६. वदनाच्च वहिर्यान्ति, प्राणा याञ्चाक्षरैः सह ।
ददामीत्यक्षरैर्दानुः, पुन कर्णाद् विशन्ति हि ॥

—कल्पतरु

याचना के अक्षरों के साथ याचक के प्राण मुँह में बाहर निकल जाते हैं ।
फिर देता हूँ दाता के इन अक्षरों के साथ कानों द्वारा पुनः अन्दर प्रवेश
करते हैं ।

७. देहीति वचन श्रुत्वा, हृदिस्था पञ्च देवताः ।
मुखाग्निर्गत्य गच्छन्ति, श्री-ह्री-धी-शान्ति-कीर्तय ॥

—शाकुंतल

मुझे कुछ दो—ऐसे बोलते ही हृदय में विराजमान श्री-लक्ष्मी, ह्री-
लज्जा, धी-बुद्धि, शान्ति-कीर्ति—ये पाँचों देवता याचक के मुँह में
निकल जाते हैं ।

८. आव गया आदर गया, नैनन गया गनेहु ।
ये तीनों तव ही गए, जबहि कहा कष्टु देहु ॥

—कबीर

९. धनमन्तीति वाग्निज्यं, किञ्चिदस्तीति कर्पणम् ।
मेवा न किञ्चिदस्तीति, भिक्षा नैव च नैव च ॥

—श्यास

पर्याप्त धन हो तो वाणिज्य, थोड़ा धन हो तो खेती एवं धन बिल्कुल ही न हो तो सेवा-नौकरी करनी चाहिए, लेकिन भीख तो कभी नहीं मागनी चाहिए।

०. मागन-मरन समान है, मत कोई मागो भीख।
 माँगन से मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥१॥
 मर जाऊ माँगू नहीं, अपने तन के काज।
 पर कारज के कारणों, माँगत मोहि न लाज ॥२॥
 बिन माँगे सो दूध बराबर, माँगे मिलै सो पानी।
 कहे कबीर सो रक्त बराबर, जामे खीचातानी ॥३॥

—कबीर

११. अणामाँग्या मोती मिलै, माँगी मिले न भीख।

—राजस्थानी कहावत

१२. हर एक के पास मत माँग—

(क) याञ्चा मोघा वरमधिगुरो नाधमे लब्धकामा।

—मेघदूत

गुणजनों के समीप निष्फल मागना भी अच्छा है, एव अधमजनों से सफल मागना भी बुरा है।

(ख) आप तो अतीतदास वाप तो फकीरदास,

दादो है दिगम्बरदास भिखारीदास भाई है।

काको है कगालदास मामो है मंगतदास,

नानो है निरजनदास जोगीदास जमाई है।

पुत्र तो लफदरदाम, मित्र है कनदरदाम,

सानो है जलदरदाम ऐसी ही बड़ाई है।

ताके पास जावे कुछ माँगिबे की आस करी,

आस तो गई पै लाज गाँठ की गमाई है।

—भाषादलोकसागर

(ग) रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र ! क्षणं श्रूयता—
 मम्भोदा वहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपिः नेतादृशा ।
 केचिद् वृष्टिभिराद्र्यन्ति धरणी गर्जन्ति केचिद् वृथा,
 य यं पश्यसि तस्य-तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीन वचः ।

—भर्तृहरि-नीतिशतक ५१

अरे मित्र चातक ! आकाश में अनेक मेघ निवास करते हैं, वे सभी वरसनेवाले नहीं हैं । कई तो वृष्टि में पृथ्वी को गीली करते हैं एव कई व्यर्थ ही गर्जना करते हैं, अतः मेरी बात सुन और हर एक के सामने दीनवचन मत बोल !

१३. किसने क्या मांगा ?

सासू माँग्यो बोलणो, बहुवर माँगी चुप ।
 करसणी माँग्यो वरपणो, घोब्री माँगी धुप ।

—राजस्थानी दोहा



तीसरा कोष्ठक

१

धन

१ यत्न सर्वप्रयोजनसिद्धिः सोऽर्थः ।

—नीतिवाक्यामृत २।१

जिसमे सब प्रयोजनो की सिद्धि हो, वह अर्थ (धन) है ।

२. अलब्धकामो, लब्धपरिरक्षण,
रक्षित परिवर्धनं चार्थानुबन्धः ।

—नीतिवाक्यामृत २।३

अर्थ के तीन अनुबन्ध अर्थात् किये जानेवाले काम हैं—(१) अप्राप्त की कामना, (२) प्राप्त की रक्षा, (३) रक्षित को बढ़ाना ।

३ अर्थम्य पुरुषो दामो, दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।

—महाभारत-भीष्मपर्व

मनुष्य धन का दास है किन्तु धन किसी का दास नहीं ।

४. अर्थेषणा व्यसनेषु न गण्यते ।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

धन की गवेषणा व्यसनो मे नहीं गिनी जाती ।

५. को न तृप्यति वित्तेन ?

—सुभाषितरत्नखण्डभ्रजूषा

धन से कौन तृप्त नहीं होता ?

६. दुन्दुभिस्तु सुतरामचेतन-स्तन्पुत्रादपि धन-धन-धनम् ।

उत्थमेव निन्द प्रवर्तते, कि पुनर्यदि जन सचेतनः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६७

अचेतन दुन्दुभि के मुँह से भी धन-धन-धन ऐसा शब्द निकलता है, तो फिर सचेतन मनुष्य धन-धन की रटना लगाये—इसमे क्या आश्चर्य है ?



१. जातिर्यातु रसातल गुणगणस्तस्याप्यधोगच्छता—
 च्छील शीलतटात् पतत्वमिजनः सन्दह्यता वह्निना ।
 शौर्ये वीरिणी वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु न केवल,
 येनकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥

—मर्तृहरि-नीतिशतक-३६

चाहे जाति पाताल को चली जाय, सारे गुण पाताल से नीचे चले जायें,
 शील पर्वत से गिर कर नष्ट हो जाय, स्वजन अग्नि में जलकर भस्म
 हो जायें और वीर-शौर्य पर शीघ्र ही वज्रपात हो जाय—तो कोई हज़ं
 नहीं, लेकिन हमारा धन नष्ट न हो, हमें तो केवल धन चाहिए, क्योंकि
 धन के बिना मनुष्य के सारे ही गुण तिनके की तरह निकम्मे हैं ।

२. बुभुक्षितैर्व्याकरणां न भुज्यते,
 पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
 न छन्दसा केनचिद्दुद्धृतं कुल,
 हिरण्यमेवार्जय निष्फला गुणा : ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार पृष्ठ ६७

भूमे व्याकरण नहीं खाया करते, प्यासे काव्यरस नहीं पिया करते तथा
 वेद में किमी ने कुल का उद्धार नहीं किया, अतः धन का ही अर्जन
 करो ! दूसरे भाग्य गुण निष्फल हैं ।

३. न दुनिर्याके हो काम धन के वर्गर ,
 न मुर्दा भी उद्यता कफन के वर्गौर ।
 मिले जर से कुव्वत ओ जर से तमीज ,
 खजाने हैं जिसके वही है अजीज ॥

—उद्देश

४. वसु विना नो पशु, लक्ष्मी विना नो लपोड अनें गरथ विना
नो गाँगलो ।

—गुजराती कहावत

५. धन जाय तिणरो ईमान जाय ।

—राजस्थानी कहावत

६. काका मामा गावाना, पासे होय ते खावाना ।

—गुजराती कहावत



१. यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥
—भर्तृहरिनीतिशतक ४१

जिसके पास धन है—वस्तुतः वही कुलवान है, वही पण्डित है, वही ज्ञानी है, वही गुणज्ञ है, वही वक्ता है और वही दर्शनीय है। सारे गुण धन के आश्रित रहा करते हैं।

२. पूज्यते यदपूज्योऽपि, यदगम्योऽपि गम्यते ।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि, स प्रभावो धनस्य च ॥

—पञ्चतंत्र ११७

जो अपूज्य पूजा जाता है, अगम्य में गमन किया जाता है और अवन्दनीय को वन्दना की जाती है—वह सारा धन का ही प्रभाव है।

३. धनैर्निकुलीना कुलीना भवन्ति, धनैरापद मानवा निस्तरन्ति ।
धनेभ्यः परो वान्धवो नास्ति लोके, धनान्यर्जयध्वं-धनान्यर्जयध्वम् ॥
—नीतिसार

धन में अकुलीन, कुलीन बन जाते हैं। धन में मनुष्य आपत्ति को पार कर देते हैं। संसार में धन के समान दूसरा कोई भी स्वजन नहीं है, अतः धन का उपार्जन करो। धन का उपार्जन करो ॥

४. धन से बड़े-बड़े पापों पर पर्दा पड़ जाता है।

—प्रेमचन्द

५. धन भाग्य की गड्डी है।

—हिन्दी कहावत

- ६ हुत्रै पाताल-तपै लिलाड ।
 ● डेढणी काँई वौले है जमी मायेंलो वौले है ।
 —राजस्यानी कहावतें
- ७ जिह्दो कोठी दाने, ओहदे कमले वि सियाने ।
 —पजावी कहावत
- ८ खिस्सा तर तो चाहे सो कर ।
 ● गांठे होय धन, सी हाजर जन ।
 ● सकर्मी नाँ साला घणा, लीला वन नाँ सूडा घणा ।
 —गुजराती कहावतें
९. माया थारो तीन नाम, फरसो, फरसू, फरसराम ।
 —राजस्यानी कहावत
१०. अवल्ला भक्त—यह एक दिन मैले कण्डो से मन्दिर मे दर्शनार्थ गण
 किन्तु उसे अन्दर नही जाने दिया । दूसरे दिन वन-ठन कर गया ।
 लोगों ने कहा—आइये ! अन्दर आकर दर्शन कर लीजिए । भक्त ने
 अन्दर जाकर अपने आभूषण आदि मूर्ति के सामने रख दिये और कहने
 लगा—करो भाई भगवान के दर्शन, तुम्हारी ही पूछ है ।
११. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर—इनको लार्ड हर्स्टिंग की तरफ मे चार घोडो की
 बग्घी बरसी हुई थी । ये राज्य-मभा के मेम्बर थे । एक चार
 'दीगापतिया नरेश' के निमन्त्रण पर ये सादी पोनाक मे पैदल ही चले
 गये । अदर नही धुमने दिये, फिर बग्घी चढकर ठाठ-चाट से गये,
 सब खडे होकर उनके पैरो पढने लगे तब उन्होंने कह —"मेरे नही
 घोडो के पैर पकडो ।"
१२. चून्हा फूंकनिर्पा—निघन भाई को माँ-जाई बहन ने 'चून्हा फूंकनिर्पा'
 कहा । फूटी हांडो मे ठरी रोटी और खट्टी छाछ गाने को दी । फिर
 धनी बनकर आया तो पाँचो पकवान परंगे । भाई ने नारो-मोहरो-
 तोरो-पत्रो के घाल भरकर रखने हुए कहा—नो भाई ! बहिन के
 पकवान खाओ । बहिन लज्जित हुई ।



१. न क्लेशेन विना द्रव्यम् ।

—वक्षस्मृति

कष्ट सहे विना धन नहीं मिलता ।

२. विद्या उद्यम बुद्धि बल, रूप तथा संयोग ।
षट्कारण धन लाभ के, जानत है सब लोग ॥

—पं. भट्टारामजी

३ सप्त वित्तागमा धर्म्या, दायो लाभ. क्रयो जय ।
प्रयोग. कर्मयोगश्च, सत्प्रतिग्रह एव च ॥

—मनुस्मृति १०।१।१५

धन की प्राप्ति के सातमार्ग धर्मयुक्त हैं—(१) दाय—पिता आदि वा वन, (२) लाभ, (३) क्रय—व्यापार से प्राप्त, (४) जय—युद्ध में प्राप्त, (५) प्रयोग—व्याज में प्राप्त, (६) कर्मयोग—सेती आदि में प्राप्त, (७) सत्प्रतिग्रह—अच्छे दाता में दान में प्राप्त ।

४. यथा मधु संमादत्ते, रक्षन् पुष्पाणि पट्पद ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य, आदद्यादविहिसया ॥

—विदुरनीति २।१७

जैसे-भीरा पुष्पो को नष्ट किये विना उनमें से मधुग्रहण कर लेता है, वैसे धन के मूलसाधन को नष्ट किए विना उनमें से धन ग्रहण करना चाहिए ।

१. धन उमका नहीं, जिमके पाम है, बल्कि उमका है, जो उमका उपयोग करता है ।

—क्रैकलिन

२. धन और विद्या का उपयोग नहीं करनेवालो ने व्यर्थ कष्ट उठाया ।
 ३. जिमने धन से यज्ञ कमाया और भोगा वह भाग्यवान और जिसने धन कमाया और छोड़कर मर गया वह भाग्यहीन ।
 ४. उत्तम स्वाजितं भुक्तं, मध्यम पितुरजितम् ।
 कनिष्ठ भ्रातृवित्तं च, स्त्रीवित्तमधमाधमम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६६

अपना कमाया धन गाना उत्तम है, पिता का कमाया हुआ गाना मध्यम है, भाई का धन गाना अधम है और स्त्री का धन गाना अधमाधम है ।

५. दान भोगो नाश-मित्तत्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
 यो न ददाति न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

—पञ्चतन्त्र २।१५७

धन की तीन गतियाँ होती हैं—दान, भोग और नाश । जो व्यक्ति न तो किसी को देता एवं न स्वयं खाता-पीता, उनके धन की तीसरी गति अधान् नाश होता है ।

६. दातव्य भोक्तव्यं, धनविषये संचयो न कर्तव्य ।
 पश्येह मधुकरीणा, सचिनमथं हरन्त्यन्ये ॥

—पञ्चतन्त्र २।१४४

धन का दान एव उभोग करना चाहिए, किन्तु सग्रह नहीं। देखो। मधुमक्खियो का मचितधन (मधु) दूसरे लोग हर लेते हैं।

७. त्यागाय श्रेयसे वित्त मवित्त सचिनोति य.।
स्वशरीर स पङ्केन, स्नास्यामीति विलम्पति ॥

—इष्टोपदेश-१६०

जो दान और पुण्य के लिए धन का सचय करता है, वह फिर नहीं लूंगा—ऐसे सोचता हुआ अपने शरीर को कीचड़ से लिप्त करता है।

८. मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—माया के मालिक और माया के गुलाम। मालिक माया में आसक्त नहीं होते एवं उसके लिए अन्याय नहीं करते। गुलाम माया में फँस जाते हैं एवं उसके लिए अन्याय करते नहीं करते।
९. महाजन को धन रोडा में, ठाकर को धन घोडा में।

—राजस्थानी कहावत



धन का खजाना (अमेरिका में)

समुद्र की सतह से ४० फुट नीचे एव न्यूयार्क व्यापारी वस्ती से ७० फुट नीचे स्वतन्त्र सभार का सबसे बड़ा स्वर्ण-भण्डार है, जिसमें १२ ५३ अरब डालर मूल्य का सोना मकान बनाने की ईंटों के आकार में सुरक्षित है। प्रत्येक ईंट २७-२८ पाँड वजन एव १४ हजार अमरीकी डालर मूल्य की है। इसके सिवा ६५ अरब डालर मोना फोर्ट नोबम (कैण्टकी) में एव ११८ अरब डालर सोना टकसालो व धातुविश्लेषक कार्यालयों में है। यह सारा सोना विदेशी सरकारों, बैंकों व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का है। इसे कोई खरीद नहीं सकता।

—हिन्दुस्तान, १८ मार्च १९६८



(क) रुपया—

१. संतदास संसार में, रुपियो वडी रसाण ।
अणजाण्या जाण्या वणै, पडदे पडै पिछाण ॥
संतदास संसार में, कै रुपियो के राम ।
वो दाता है मुगतरो, वो सारै सब काम ॥

२. कर मैं ह्वै कलदार, मन चाह्या लूंटो मजा ।
दुनिया में दिलदार, चेहराशाही चकरिया !

—सोरठा-संग्रह

३. दाम करै काम, दुनियां करै सलाम ।

- रुपिया हुवै जद टट्टू चालै—
- रूपली पल्लै, जद रोही में चल्लै ।
- रूपली हुवै जद, शोभनी आपे ही आय जावै ।
- रूपलालजी गुरु और सब चेला ।

—राजस्थानी कहावतें

४. जेव में हो नगदुल्ला, नाचे वेटा अदुल्ला ।

—हिन्दी कहावत

५. नगद नागो, वीद परणोजै कागो ।

- हुआ सी, भागा भी । हुआ हजार, फिरो वजार ।

—राजस्थानी कहावतें

६. पांचे मित्र, पच्चीसे पडोसी नें सोए सगो ।

—गुजराती कहावत

७. भज कलदार-भज कलदारं-भज कलदारं मूढमते !

—संस्कृत कहावत

८. रुपियं कनै रुपियो आवैं ।

—राजस्थानी कहावत

जाट के पास एक रुपया था, इधर एक साल में रुपयो के ढेर लग रहे थे। उसने मुन खखा था कि रुपयो के पास रुपया आता है। जाट ने अपना रुपया उन्हें दिखाया। वह अकस्मात् हाथ से छूट कर एक साल के रुपयो के पास चला गया। जाट देखता ही रह गया।

९. भरे ही को भरती है दुनियाँ मदाम ।

समंदर को जाते हैं दरिया तमाम ॥

—उर्दू शेर

१०. रुपियो हाथ रो मील है ।

—राजस्थानी कहावत

११. खरी कमाई का रुपया—मारवाड के एक राजपूत ने दिल्ली के बादशाह के यहाँ नौकरी की। वारह वर्ष बाद उसे एक रुपया मिला। उसने उसमें चार बनारों खरीदी और उन्हें बच्चों के लिए घर भेज दिया। वे चार लाख में बिकी। एक वर्ष बाद स्वदेश जाने समय नौकरो मांगने पर उसे खजाने से एक रुपया मिला और वह रास्ते में ही खर्च हो गया। विन्मत्त राजपूत ने बादशाह ने भेद पूछा। उत्तर मिला कि पहला रुपया पानी की कमाई का था (मिने बन्नाम दिन लोहा कूट कर बगाया था) और दूसरा रुपया प्रजा में छीनकर लिया हुआ था।

(ख) पैसा—

१. पैसा पाप का मूल है, फिर भी विनिमय का साधन है, आवश्यकता का पूरक है, वेइज्जती व अकम्मात् घात का नाशक है, मान-प्रतिष्ठा का दायक है, आश्रमादि—लोकोपकारी प्रवृत्तियों का सचालक है, महान् युद्धों का उपशामक है, भोग-विलास की इमके बिना अशक्यता है तथा हाथ का मँल होने पर भी करोड़ों हाथ इसके लिए दौड़ रहे हैं।

—पैसे के प्रशंसक

२. पैसा बना मनुज के कर से, आज वही भगवान हो गया।
 क्रय करता मानव का पैसा, उस ही का सम्मान हो गया।
 गई मनुजता दूर विश्व से, पशुता का साम्राज्य हो गया।
 कहाँ गया वह रामराज्य, यह देखो रावणराज्य हो गया।

—हिन्दी कविता

३. "तुलसी" इम ससार मे, मतलब का व्यवहार।
 जब लग पैसा गाँठ मे, तब लग लाखों पार ॥

४. पैसा जग में प्राण, पैसों ही जग में प्रभु।
 पैसों रो सम्मान चिह्न दिशि होवै 'चकरिया'।

—सोरठा-सपह

5. Money my God, woman my guide

मनी माई गॉड वुमन माई गाइड

—अंग्रेजी कहावत

पैसा मेरा परमेश्वर और स्त्री मेरी अगुआ।

६. कटई जावो पडर्म री खीर है।

● ताँवें की मेख, तमागा देख ॥

—राजस्थानी बहायतें

७. पैसे बिन तात कहे, पून है कपून मेरो,

पैसे बिन मात कहे मोहि दुगदायी है।

पैसे बिन काका कहे, कौन को भतीज तीज,

पैसे बिन मामू कहे कौन को जमाई है ॥

पैसे बिन नारी घरवारी घुराट करे

पैसे बिन यार-दोस्त आंख ही छिपाई है ।

कहे कवि "देवीदास", याही जग साची भाप,

कलियुग के वर्तमान पैसे की बडाई है ॥

८. जिसके पास नहीं है पैसा ।

जग मे उसका जीवन कैसा ?

—हिन्दी पद्य

९ पैसादार नी बकरी मरी ते बघा गामे जाणी ।

गरीबनी छोकरी मरी ते कोई ए न जाणी ।

—गुजराती कहावत

१० पैमे की कीमत भिखारी बनकर मागने मे जानी जाती है ।

११. पैसा मा कोई पूरो नहीं, अक्कलमा कोई अधूरो नहिं ।

—गुजराती कहावत

१२ किसी भी कार्य का ध्येय पैसा नहीं होता, लेकिन अज्ञानवश लोग मान बैठे हैं । ज्ञान से देखें तो सरकार का ध्येय प्रजा का रक्षण करना है, माता-पिता का ध्येय सत्तान-पालन है, न्यायाधीश का ध्येय न्याय करना है, वकील का ध्येय न्यायी को बचाना है, डाक्टर-वैद्य-हकीमो का ध्येय रोगियो को स्वस्थ बनाना है, शिक्षको का ध्येय अशिक्षितो को शिक्षित बनाना है, लोकमान्यतिलक तथा महात्मागांधी जैसे महापुरुषो का ध्येय देश को सुखी और स्वतंत्र करना था, किन्तु पैमे मे घर भरना नहीं ।

—संकलित

१३ न्याय-अन्याय का पैसा—

अबु अब्बासा एक टोपी मींकर एक पैसा पैदा करता था । दूसरा मित्र अन्याय मे घन कमाता था । एक दिन उसने अन्धे को एक मोहर दी, अन्धे ने शगव पीकर रंडीवाजी की । प्रथम ने मग-दधी नानेवाले गरीब को एक पैसा दिया । उसने माम नाना खोटा, चनो ने निर्वाह विद्या, बुद्धि मुधरी । वारण न्याय का पैसा था ।

(ख) पैसा—

१. पैसा पाप का मूल हैं, फिर भी विनिमय का साधन है, आवश्यकता का पूरक है, वेइज्जती व अकस्मात् घात का नाशक है, मान-प्रतिष्ठा का दायक है, आश्रमादि—लोकपोषकारी प्रवृत्तियों का संचालक है, महान् युद्धों का उपशामक है, भोग-विलास की इसके बिना अशक्यता है तथा हाथ का मँल होने पर भी करोड़ों हाथ इसके लिए दौड़ रहे हैं।
—पैसे के प्रशंसक
२. पैसा बना मनुज के कर मे, आज वही भगवान हो गया।
क्रय करता मानव का पैसा, उस ही का सम्मान हो गया।
गई मनुजता दूर विश्व से, पशुता का साम्राज्य हो गया।
कहाँ गया वह रामराज्य, यह देखो रावणराज्य हो गया।
—हिन्दी कविता
३. "तुलसी" इस ससार में, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में, तब लग लाखों पार ॥
४. पैसा जग में प्राण, पैसों ही जग में प्रभु।
पैसों से सम्मान चिह्न दिशि होवै 'चकरिया'।
—सोरठा-संग्रह
5. Money my God, woman my guide
मनी माई गॉड वुमन माई गाइड —अंग्रेजी कहायम
पैसा मेरा परमेश्वर और स्त्री मेरी अगुआ।
६. कठई जावो पउम री खीर है।
● ताँव की मेख, तमामा देख ॥ —राजस्थानी कहायतें
७. पैसे बिन तात कहे, पून है कपूत मेगे,
पैसे बिन मात बहे मोहि दग्दयी है।
पैसे बिन काका कहे, कौन को भनीज तीज,
पैसे बिन मामू कहे कौन को जमाई है ॥

पैसे विन नारी घरवारी घुराटि करे

पैसे विन यार-दोस्त आँख ही छिपाई है ।

कहे कवि "देवीदास", याही जग साची भाप,

कलियुग के वर्तमान पैसे की बडाई है ॥

८ जिसके पास नहीं है पैसा ।

जग में उसका जीवन कैसा ?

—हिन्दी पद्य

९ पैसादार नी बकरी मरी ते बघा गामे जाणी ।

गरीबनी छोकरी मरी ते कोई ए न जाणी ।

—गुजराती कहावत

१० पैसे की कीमत भिखानी बनकर मागने में जानी जाती है ।

११. पैसा मां कोई पूरो नहीं, अक्कलमा कोई अधूरो नहीं ।

—गुजराती कहावत

१२. किसी भी कार्य का ध्येय पैसा नहीं होता, लेकिन अज्ञानवश लोग नान बैठे हैं । ज्ञान से देखें तो सरकार का ध्येय प्रजा का रक्षण करना है, माता-पिता का ध्येय संतान-पालन है, न्यायाधीश का ध्येय न्याय करना है, वकील का ध्येय न्यायी को बचाना है, डाक्टर-बैद्य-हकीमों का ध्येय रोगियों को स्वस्थ बनाना है, शिक्षकों का ध्येय अशिक्षितों को शिक्षित बनाना है, लोकमान्यतिलक तथा महात्मागांधी जैसे महापुरुषों का ध्येय देश को नुस्खी और स्वतंत्र करना था, किन्तु पैसे में घर भरना नहीं ।

—संस्कृत

१३ न्याय-अन्याय का पैसा—

बब्रु अन्वासा एक टोपी मीकर एक पैसा पैदा करता था । दूसरा मित्र अन्याय में घन कमाता था । एक दिन उमने अन्धे को एक मोहर दी, अन्धे ने भाव पीकर चंडीबाजी की । प्रथम ने मरा-पक्षी सानेवासे गरीब को एक पैसा दिया । उमने माम नाना छोडा, चनो से निबाहि किया, दुद्धि मुधरी । कारण न्याय का पैसा था ।

(ग) चौदह रत्न—

१. एगमेगस्स एण रत्नो चाउरतं चक्कवट्टिस्स चउदस्स रयणा पन्नत्ता, तं जहा—

इत्थीरयणो, सेणावइरयणो, गाहावइरयणो, पुरोहियरयणो, वड्ढइरयणो, आसरयणो, हत्थिरयणो, असिरयणो, दण्डरयणो, चक्करयणो, छत्तरयणो, चम्मरयणो, मणिरयणो, कागिणिरयणो ।

—समवायांग १४

जैन सिद्धान्तानुसार प्रत्येक चक्रवर्ती के पास चौदह रत्न होते हैं। उनके नाम—(१) स्त्रीरत्न (२) सेनापतिरत्न (३) गाथापतिरत्न (४) पुरोहित-रत्न (५) वर्द्धाकरत्न (६) अश्वरत्न (७) हस्तिरत्न (८) अनिरत्न (९) दण्डरत्न (१०) चक्ररत्न (११) छत्ररत्न (१२) चर्मरत्न (१३) मणि-रत्न (१४) वाकिणीरत्न ।

उपरोक्त चौदह रत्न अपनी-अपनी जाति में सर्वोत्कृष्ट होते हैं। इन्हीं-लिए ये रत्न बट्टनाते हैं। इन चौदह रत्नों में से पहले के मात रत्न पञ्चेन्द्रिय हैं। शेष मात रत्न एकेन्द्रिय पृथ्वीकायमय है।

२. लक्ष्मी कौस्तुभ-वारिजातक-मुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा,
गाव कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गना ।
अथ मण्मृग-सुधा हरिधन शङ्खो विष चाम्बुवे,
रत्नानीनि चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्युः सादा मङ्गलम् ॥

(१) लक्ष्मी (२) कौस्तुभमणि (३) कल्पवृक्ष (४) मदिरा (५) धन्वन्तरि-
वैद्य (६) चन्द्रमा (७) कामधेनु गाय (८) ऐरावतहाथी (९) रम्भादि-
कामरागें (१०) मान्मृगवासा उर्ध्वश्रया घोडा (११) शङ्ख
(१२) विष्णु-धनुष (१३) शंख (१४) विष—य चौदह रत्न मदा मंगल
करें । (भागवत-दि गुराणों के अनुसार जब देवों और दानवों में मिलकर
समुद्र-मयन किया था तब उममें से उपरोक्त १४ रत्न निकले थे ।)

(घ) विभिन्न देशों की मुद्राएँ —

देश	मुद्रा	देश	मुद्रा
१ अर्जन्टाइना	पेसो	२६. ग्वातेमाला	क्वेटजल
२. आस्ट्रेलिया	पौंड	२७. ग्रीस	ड्राकम
३. अल्जीरिया	फ्राक	२८ धाना	पौंड
४. आस्ट्रिया	शिलिंग	२९ हैती	कुरडो
५ वेल्जियम	फ्राक	३०. हागकाग	हागकाग
६. घिटेन	पौंड (स्टलिंग)	३१. होङ्गकाङ	लेम्पीरा
७. बर्मा	क्रियाट	३२ भारत	रुपया
८ बल्गेरिया	लेवा	३३. आइसलैण्ड	क्रोना
९. सीलोन	रुपया	३४. ईरान	रियल
१० कनाडा	डालर	३५ इराक	दीनार
११ कोलम्बिया	पेसो	३६ हिन्देशिया	रुपया
१२ कोस्टारिका	कोलोन	३७. इटली	लीरा
१३ क्यूबा	पेसो	३८. जापान	येन
१४ मलेशिया	डालर	३९. आयरिश रिपब्लिक	पौंड
१५ चिली	पेसो	४० कोरिया	ह्वान
१६. कम्युनिस्ट चीन	यूआन	४१ जोर्डन	दीनार
१७ चेकोस्लोवाकिया	क्राउन	४२. सूडान	पौंड
१८ डेन्मार्क	क्रोनर	४३. सिएरालिओन	फ्रीटाउन
१९ डोमिनिकन		४४ लेबनान	पौंड
२० एनगालवैडर	कोलोन	४५ लयनेमबर्ग	फ्राक
२१. रिपब्लिक	पेसो	४६ मेक्सिको	पेसो
२२ फिनलैण्ड	माक्का	४७. लीबिया	पौंड
२३. दक्षिण अफ्रीका	डालर	४८. नीदरलैण्ड	गिल्डर
२४. जर्मनी	मार्क	४९. मोरक्को	डरहम
२५ फ्रांस	फ्राक	५०. नावो	डोन

देश	मुद्रा	देश	मुद्रा
५१. न्यूजीलैण्ड	पीड	६४. स्वीडन	क्रोनर
५२. पाकिस्तान	रुपया	६५. सीरिया	पीड
५३. नोकारगुआ	कोरडोवा	६६. तुर्की	लीरा
५४. पेरु	सोल	६७. स्विट्जरलैण्ड	फ्राक
५५. पनामा	बालबोआ	६८. मिस्त्र	पीड
५६. पोर्नैण्ड	ज्लेरी	६९. थाईलैण्ड	बहूर
५७. फिलीप न	पेसो	७०. यूहव्हे	पेरो
५८. रुमानिया	लेव	७१. अमेरिका	डालर
५९. पुर्तगाल	एम्डेो	७२. युगोस्लाविया	दीनार
६०. मऊदी अरब	रियाल	७३. सोवियत संघ	रुबल
६१. स्पेन	पेसेटा	७४. नेपाल	रुपया
६२. सूडान	पीड	७५. वेनेजुएला	बोलिवर
६३. दक्षिणी अफ्रीका	रैंड		



१ अविश्वासनिधानाय, महापातकहेतवे,
पिता-पुत्र विरोधाय, हिरण्याय नमोऽस्तुते ।

हे धन ! तू अविश्वास का निधान है, महापाप का हेतु है और पिता-पुत्र को लडायेवाला है अतः तुझे दूर से ही नमस्कार है ।

२. अर्थनामर्जने दुःख-मर्जिताना च रक्षणे ।
आये दुःख व्यये दुःख विगर्था कष्टसंश्रया ॥

—पञ्चतन्त्र १।७४

धन का संग्रह करने में दुःख है और सग्रहीतधन की रक्षा करने में भी दुःख है । धन की आय में दुःख है एवं उसके व्यय में भी दुःख है । अतः दुःख के सश्रयरूप धन को धिक्कार है ।

३. अर्थस्य साधने सिद्धे, उत्कर्षे रक्षणे व्यये ।
नाशोपभोग आयास-स्त्रासश्चिन्ता भय नृणाम् ॥

—मगवत ११।२३।१७

धन कमाने में, कमाकर उसे बढ़ाने में, रखने में, खर्च करने में, उसके नाश में या उपभोग में, जहाँ भी देखो, वहाँ परिश्रम है, त्राम है, चिन्ता है और भय है ।

४. माया नै भय है, काया नै भय कोनी ।

—राजस्थानी कहावत

५. दौघत की दो लात है, "तुलसी" निश्चय कीन्ह ।
आवत अन्धा करत है, जावत करे अधीन ॥

देश	मुद्रा	देश	मुद्रा
५१. न्यूजीलैण्ड	पौण्ड	६४. स्वीडन	क्रोनर
५२. पाकिस्तान	रुपया	६५. सीरिया	पौण्ड
५३. नीकारगुआ	कोरडोवा	६६. तुर्की	लीरा
५४. पेरु	सोल	६७. स्विट्जरलैण्ड	फ्रान्क
५५. पनामा	बानबोआ	६८. मिस्र	पौण्ड
५६. पोर्तुगल	ज्लेरी	६९. थाईलैण्ड	बहूर
५७. फिलीपीन	पेसो	७०. यूएन	पेरो
५८. रुमानिया	लेव	७१. अमेरिका	डालर
५९. पुर्तगाल	एम्डो	७२. युगोस्लाविया	दीनार
६०. मऊदी अरब	रियाल	७३. सोवियत संघ	रुबल
६१. स्पेन	पेसेटा	७४. नेपाल	रुपया
६२. सूडान	पौण्ड	७५. वेनेजुएला	बोलिबर
६३. दक्षिणी अफ्रीका	रैंड		

धन की निन्दनीयता

१. अविश्वासनिधानाय, महापातकहेतवे,
पिता-पुत्र विरोधाय, हिरण्याय नमोऽस्तुते ।
हे धन ! तू अविश्वाम का निधान है, महापाप का हेतु है और पिता-
पुत्र को लडायेवाला है अतः तुझे दूर से ही नमस्कार है ।
२. अर्थानामर्जने दुःख-मर्जिताना च रक्षणे ।
आये दुःख व्यये दुःख विगर्था कष्टसश्रया ॥
—पञ्चतन्त्र १।७४

धन का संग्रह करने में दुःख है और संप्रहीतधन की रक्षा करने में भी दुःख है । धन की आय में दुःख है एवं उसके व्यय में भी दुःख है । अतः दुःख के मध्यरूप धन को विस्कार है ।

३. अर्थस्य साधने सिद्धे, उत्कर्षे रक्षणे व्यये ।
नाशोपभोग आयास-स्त्रासच्चिन्ता भय नृणाम् ॥
—भागवत ११।२३।१७

धन कमाने में, कमाकर उने बटाने में, रखने में, खर्च करने में, उसके नाश में या उपभोग में, जहाँ भी देगो, वहाँ परिश्रम है, श्रम है, चिन्ता है और भय है ।

४. माया नै भय है, काया नै भय कोनी ।
—राजस्थानी कहावत

५. दौपत की दो लात है, "तुलसी" निष्चय कीन्ह ।
आवत अन्वा करत है, जावत करे अघीन ॥

६. कोथान् प्राप्य न गवित ?

—पञ्चतंत्र

घन पाकर कोन गवित नही हुआ ?

७. स्तेय हिंसानृतं दम्भ, काम क्रोधः ममयो मद, भेदो वैरमविश्वास, सस्पर्द्धा व्यसनानि च । एते पञ्चदजानर्था, ह्यर्थमूला मता नृणाम्, तस्मादनर्थमर्थाख्य, श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥

—श्रीमद्भागवत ११।२३।१८-१९

१. चोरी, २ हिंसा, ३. भूठ, ४. दम्भ, ५ काम, ६. प्रोध, ७. चित्तोन्नति, ८ अहकार, ९. भेदबुद्धि, १०. वैर, ११. अविश्वास, १२. सस्पर्द्धा, १३. व्यसन अर्थात् व्यभिचार, १४. झूठा, १५. घराब— ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्यो मे घन के कारण से ही माने गये हैं । अतः कल्याणकामी पुरुष को अर्थ-नामधारी इस अनर्थ का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए ।

८. घन से नर्म विद्योना मिल सकता है, नोद नही, मन्दिर-मस्जिद बन सकते हैं, भगवान नही, भौतिकमुख्य मिल सकते हैं, आत्मिकमुख्य नही, प्रशमक मिल सकते हैं, हितचिन्तक नही, दिवावे का मान मिल सकता है, हादिक सम्मान नही, पुस्तक खरीद सकते हैं विद्या नही, नोकर रखा जा सकता है, मच्चा मेवक नही ।

—महेन्द्रकुमार वशिष्ठ

९. घन के लिए लागो-करोडो व्यक्ति मुर्दे-मे होकर घूम रहे हैं, ममीनों की तरह दिन-रात नाट रहे हैं, जेला मे (चोर-टाकू आदि) मर रहे हैं, सधवा, विधवा, कुमारी स्त्रियाँ वंश्यायें बन रही हैं, तीर्थों मे पड़े पुजारों लोग लोगों को टग रहे हैं, भाई-भाई लड-झगड रहे हैं तथा सरकार प्रजा को सूट रही है और प्रजा सरकार को धोखा दे रही है ।

—सकवित्त

१०. दायादा. स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमिभुजो,
गृह्णन्ति च्छलमाकलय्य हुतभुग् भस्मीकरोति क्षणात् ।
अग्निः प्लावयति क्षितौ विनिहितं यदा हरन्ते हठाद्,
दुर्वत्तास्तनया नयन्ति निघनं धिग् बह्वधीन घनम् ॥

—सिन्दूरप्रकरण ७४

ज्ञातिजन स्पृहा करते हैं, चोर चुरा लेते हैं, छल द्वारा राजा ले लेते हैं, अग्नि भस्म कर डालती है, पानी बहा देता है, जमीन में छिपा कर रखे हुए को यक्ष हर लेते हैं तथा दुराचारी पुत्र इसको नष्ट कर देते हैं । अतः धिक्कार है बहुतों के अधीन रहनेवाले इस घन को !

११. एक सीतेली माँ ने अपने सीतेले पुत्र को विष देकर इसलिए मार डाला कि यह बड़ा होने पर मेरे पुत्रों के हक में हिस्सा लेगा ।

—उत्तरप्रवेश की घटना

- १२ ईरान के एक जमीदार को खेत में दो सिक्के मिले । वह उन्हें लेकर बाजार में आया । पुलिस-अधिकारी के पूछने पर उसने स्थान बताया । रात को साधियो महित पुलिस-अधिकारी ने वह स्थान खोदा । नीचे एक मकान निकला । अंधेरे में उतरे । सोने की रेत से घड़े भरे थे । ६५ करोड़ का धन था । बात फूटी ! सारे के सारे गिरपतार एवं धन जप्त !

—अध्ययन के आधार पर



१. पिपीलिकार्जितं धान्य, मक्षिकासंचितं मधु ।
अन्यायोपार्जितं द्रव्य, चिरकालं न तिष्ठति ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६१

चींटियो का इकट्ठा किया हुआ धान्य, मक्खियो का संचित मधु और अन्याय से उपार्जित धन—ये तीनों चीजें अधिक समय तक नहीं ठहरती ।

२. अन्यायोपार्जितं द्रव्य, दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते चैकादशेवर्षे, समूल च विनश्यति ॥

—चाणक्यनीति १५६

अन्याय से पैदा किया हुआ धन दश वर्ष रहता है । ग्यान्हवें वर्ष समूल नष्ट हो जाता है ।

३. दुर्जनम्याजितं वित्तं, भुज्यते राजतस्करैः ।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

दुर्जनो का संचित धन प्रायः राज्य-कर्मचारी ही ग्याया करते हैं ।

४. कीडी सचै, तीतर खाय (आंधी पीमं, कुत्ता खाय) ।
पापी रो धन पर लै जाय ।

—राजस्थानी कहावत

५. दूध ना दूध मां जाय नै पाणी ना पाणी मां जाय ।

- चोर नै पोडले घूल नी घून ।

—गुजराती कहावत

६. चोरी रो धन मोरी मे ।

—राजस्थानी कहावत

१. शुद्धैर्घनैर्विवर्धन्ते, सतामपि न सम्पदः ।
न हि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णा, कदाचिदपि सिन्धवः ॥

—आत्मानुशासन ४५

सज्जनों के भी शुद्ध धन से सम्पदाएं नहीं बढ़ती । जैसे-स्वच्छजलों से नदियाँ कभी पूर्ण नहीं होती ।

२. रमन्ता पुण्या लक्ष्मीर्याः, पापीस्ता अनीनशन् ।

—अथर्ववेद ७।११५।४

पुण्यकारिणी लक्ष्मी मेरे घर की शोभा बढ़ाए तथा पापकारिणी लक्ष्मी नष्ट हो जाए ।

३. न्यायागतस्य द्रव्यस्य, बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च, पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥

—विदुरनीति १।६४

न्याय मे अर्जित धन के व्ययसम्बन्धी दो अतिक्रम हैं अर्थात् दुरुपयोग है—अपात्र को देना और पात्र को न देना ।



१. यत्कर्मकरणेनान्तः सतोप लभते नरः ।
वस्तुतस्तद्वन मन्ये, न धनं धनमुच्यते ॥

—रदिममाता २६।।

जिस काम के करने में मनुष्य की अन्तरात्मा को सन्तोष होता है, में वास्तव में उसीको धन मानता है, लौकिक वस्तु को धन नहीं कहा जाता ।

२. पृथिव्या त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं मुभापितम् ।
मूढैः पापाणखण्डेषुः रत्नसज्ञा विधीयते ॥

—चाणक्यनीति १४।।

पृथ्वी में तीन रत्न हैं—जल, अन्न और मुभापित । मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों—हीरा—पद्मा—माणिक आदि को रत्न के नाम से श्रद्धा ही पुकार रहे हैं ।



१. न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलोने हैं, वह जैसे चाहती है, नचाती है।

—प्रेमचन्द

२. जीवन में बुद्धि का नहीं, लक्ष्मी का साम्राज्य है।

—सिसेरो

३. मातुर्लक्ष्मि ! तव प्रशादवशतो दोषा अपि स्युर्गुणाः ।

—सुभाषितरत्नखण्डमजूपा

हे लक्ष्मी माता ! तेरी कृपा से दोष भी गुण बन जाते हैं।

४. सा लक्ष्मीरूपकुरुते यया परेषाम् ।

मच्छी लक्ष्मी वही है, जिससे परोपकार किया जा सके।

५. किं तथा क्रियते लक्ष्म्या, या वधूरिव केवला ।

या न वेश्येव सामान्यं, पथिकैरुपभुज्यते ।

—पञ्चतन्त्र ४।३७

जो कुलवधूवत् केवल पति के ही उपभोग में आए और वेश्यावत् सामान्य पथिकों के उपभोग में न आए, उस लक्ष्मी ने क्या लाभ ?

६. लक्ष्मी अकनकुंवारियाँ, नर हुआ जोध-जवान ।

मेरी-मेरी कर मुआ, हिन्दू-मुसलमान ॥



१. अनुद्वेग-श्रियो मूलम् ।

—योगवाशिष्ठ-३।२२।२२

उद्विग्न न होना समृद्धि का मूल है ।

२. जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः ।

—सुभाषितरत्नखंडमजूषा

लोकप्रियता से ही सम्पदाएँ मिलती हैं ।

३. लक्ष्मी उन्ही की सहायता करती है, जिनका निर्णय विवेकशील होता है ।

—पूरीषोडश

४. श्रोर्मङ्गलात् प्रभवति, प्रागत्भ्यात् सप्रवर्धते ।
दाक्षिण्यात् कुरुते मूलं, सयमात् प्रतिनिष्ठति ।

—चिदुरनीति-३।११

लक्ष्मी शुभकर्मों से उत्पन्न होती है, चतुरता से बढ़ती है, निपुणता से जड़ जमाने से और समय से स्थिर होती है ।

५. धृति-क्षमा दया शीघ्र, कारुण्य वागनिष्ठुरा ।
मित्राग्नामनभिद्रोहः, सप्तैनाः नमिध श्रियः ।

—चिदुरनीति-६।३८

धृति, क्षमा, दया, पवित्रता, करुणा, अमटोक्तता एवं मित्रों के साथ अद्रोहभाव—ये नाना गुण लक्ष्मी की मन्त्रियाँ अर्थात् शीघ्र बढ़ाने वाले हैं ।

६. सत्यैकभूषणा वाणी, विद्या विरतिभूषणा ।
धर्मैकभूषणा मूर्ति-लक्ष्मी सदानभूषणा ।

—चवचरित्र, पृष्ठ ७१

वाणी का भूषण सत्य है, विद्या का भूषण विरति है, शरीर का भूषण धर्म है और लक्ष्मी का भूषण दान है ।



१. संपदः स्वप्नसंकाशा, संपदो जलदोपमा ।
सम्पदाएँ स्वप्न के ममान हैं एव मेघवत् क्षणभंगुर हैं ।
2. Riches have wings
रिचेज हैत्र विंग्स ।
—अग्नेजी कहावत
घन के पख होते हैं ।
३. कमला थिर न 'रहीम' ! कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चचला होय ?
४. ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्राभन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः ।
—ऋग्वेद १०।१।७।५
रथ के पहिये की तरह घन भी टधर-टधर (अनेक लोगों के पाग)
धूमता ही रहता है ।
५. सम्पदा धुरे मेवको के गमान नये-नये स्वामी बग्नी ही रहती है ।
—बरं
६. कोहिनूर हीरे का पर्यटन—कोहिनूर हीरा गोलकुडा की ग्यान मे
निकला था । महाभारत के समय भागलपुर-पति काममेन के पाग था ।
फिर क्रमशः हस्तिनापुरपति, उज्जैनपति, अलाउद्दीन गिनजी, हुमायूँ,
हंगनपति, शाहजहाँ, औरंगजेब, नादिरशाह एवं लाहौरपति ग्वाल
मिर के पास रहा । यहाँ से महारानी विषटोरिया के पाग पहुँचा ।
इसका वजन ३१८।। रत्नी, लम्बाई टेढ रत्न और कीमत मैथानीय

लाख, दानवे हजार, दो सौ पैतालीस पौंड आंकी गई थी । नादिरशाह ने इसे "कोहेनूर" नाम से पुकारा था ।

७. अभ्रच्छाया खलप्रीति, सिद्धमन्न च योपिन ।
किञ्चित्कालोपभोग्यानि, यौवनानि धनानि च ॥

— पञ्चतन्त्र-२।१२०

वादल की छाया, दुष्टों की प्रीति, पका हुआ अन्न, स्त्री, यौवन और धन—ये छ चीजें किञ्चित्काल तक ही उपयोग में आने योग्य हैं—अस्थिर हैं ।

८. ऐश्वर्यं च विनाशान्तम् ।

—शुभचन्द्राचार्य

ऐश्वर्यं निश्चय ही अन्त में नष्ट होनेवाला है ।

९. जलबुद्बुद्समाना विराजमाना सपत् तडिल्लतेव सहस्रवोदेति नश्यति च ।

—दशकुमारचरित

सम्पत्ति जल के बुलबुले के समान होती है । वह विद्युत् की भाँति एकाएक उदय होती है और नष्ट हो जाती है ।



१. लक्ष्मीरनुमरति नयगुणसमृद्धिम् ।

—सुभाषितारत्नखण्डमंजूषा

लक्ष्मी न्याय-गुण से समृद्ध व्यक्ति का अनुमरण करती है ।

२. परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिरं तिष्ठति ।

—चाणक्यसूत्र ११३

विचार कर काम करनेवाले के पास लक्ष्मी चिरस्थायी होती है ।

३. यत्र नीति-त्रले चोभे, तत्र श्री. सर्वतोमुखी ।

—शुकनीति

जहाँ नीति और बल दोनों का सम्मिलन है, वहाँ लक्ष्मी सर्वतोमुखी होकर विहार करती है ।

४. नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पद. ।

—सुभाषितारत्नखण्डमंजूषा

जहाँ न्याय और शौर्य होते हैं, वही सम्पदाएँ निवास करती हैं ।

५. गुरवो यत्र पूज्यन्ते, यत्र वाणी मुमस्कृता ।

अदन्तकलहो यत्र, तत्र, शक्र ! वसाम्यहम् ॥

जहाँ गुरुजनों की पूजा है, अच्छे संस्कारोंवाली वाणी है और दन्तकलह नहीं है, हे इन्द्र ! मैं (लक्ष्मी) वहाँ निवास करती हूँ ।

६. वक्ता श्रोता च यत्राम्बित्, रमन्ते तत्र मपद. ।

—सुभाषितारत्नखण्डमंजूषा

जहाँ वक्ता-श्रोता हो, वहाँ सम्पदाएँ रमण करती हैं ।



१. इह हि न निरीहदेहिनं श्रिय सश्रयन्ते ।

—दशकुमारचरित

इस संसार में जो प्रयत्न नहीं करता, उसे लक्ष्मी नहीं मिलती ।

२. अर्थतोपिण श्रिय परित्यजति ।

—कौटिल्य अर्थशास्त्र

धन के सन्तोषी व्यक्ति को लक्ष्मी छोड़ जाया करती है ।

३. अतिदाक्षिण्ययुक्ताना, अङ्घ्रिताना पदे-पदे ।

परापवादभीरूणा, दूरतो यान्ति सम्पद ॥

—भोजप्रबन्ध २०

जो आदमी अति सयाने होते हैं, कदम-कदम पर शकाशील होते हैं और लोकापवाद से डरनेवाले होते हैं, उनसे सम्पदाएँ दूर ही रहती हैं ।

४. अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मी ।

—सुभाषितरत्नसङ्घमञ्जूषा

जहाँ अभ्यागत है, वहाँ प्रायः लक्ष्मी नहीं ।

५. कुञ्चेलिन दन्तमलोपधारिण, बह्वाशिन निष्ठुरभाषिणं च ।

सूर्योदये चास्तमिते ज्ञाने, त्रिमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥

—चाणक्यनीति १५४

गन्दे चम्पू रखनेवाला, दाँतो पर मँल धारण करनेवाला, अधिक जाननेवाला, उठोन्वाणी बोलनेवाला सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय नोनेवाला यदि चक्रपाणि-विष्णु हो तो भी लक्ष्मी उसका परित्याग कर देती है ।

१. लक्ष्मीरनुसरति नयगुणसमृद्धिम् ।

—सुभाषितरत्नखण्डमजूषा

लक्ष्मी न्याय-गुण से समृद्ध व्यक्त का अनुसरण करती है ।

२. परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिरं तिष्ठति ।

—चाणक्यसूत्र ११३

विचार कर काम करनेवाले के पास लक्ष्मी चिरस्थायी होती है ।

३. यत्र नीति-बले चोभे, तत्र श्रीः सर्वतोमुखी ।

—शुकनीति

जहाँ नीति और बल दोनों का सम्मिलन है, वहाँ लक्ष्मी सर्वतोमुखी होकर विहार करती है ।

४. नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदः ।

—सुभाषितरत्नखण्डमजूषा

जहाँ न्याय और शौर्य होते हैं, वही सम्पदाएँ निवास करती हैं ।

५. गुरवो यत्र पूज्यन्ते, यत्र वाणी मुमस्कृता ।

अदन्तकलहो यत्र, तत्र, शक्र ! वसाम्यहम् ॥

जहाँ गुरुजनों की पूजा है, अच्छे संस्कारोंवाली वाणी है और दन्तबन्ध नहीं है, हे शक्र ! मैं (लक्ष्मी) वहाँ निवास करती हूँ ।

६. वक्ता श्रोता च यत्राम्बित, रमन्ते तत्र गणदः ।

—सुभाषितरत्नखण्डमजूषा

जहाँ अच्छे बक्ता-श्रोता हो, वहाँ सम्पदाएँ रमण करती हैं ।



१. इह हि न निरीहदेहिनं श्रिय सश्रयन्ते ।

—दशकुमारचरित

इस ससार में जो प्रयत्न नहीं करता, उसे लक्ष्मी नहीं मिलती ।

२. अर्थतोपिण श्रिय. परित्यजति ।

—कौटलीय अर्थशास्त्र

धन के सन्तोषी व्यक्ति को लक्ष्मी छोड़ जाया करती है ।

३. अतिदाक्षिण्ययुक्ताना, शङ्किताना पदे-पदे ।
परापवादभीरूणा, दूरतो यान्ति सम्पद. ॥

—भोजप्रबन्ध २०

जो आदमी अति मयाने होते हैं, कदम-कदम पर शकाशील होते हैं और लोकापवाद से डरनेवाले होते हैं, उनसे सम्पदाएँ दूर ही रहती हैं ।

४. अम्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मी ।

—मुभापितरत्नखण्डमजूषा

जहाँ अम्य है, वहाँ प्रायः लक्ष्मी नहीं ।

५. कुचेलिन दन्तमलोपधारिण, बह्वाशिन निष्टुरभाषिणं च ।
सूर्योदये चास्तमिते गयान, विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥

—चाणक्यनीति १५।४

गन्दे बन्धु रहनेवाला, रातो पर मैन धारण करनेवाला, अधिक नानेवाला, पटोरवाणी बोलनेवाला सूर्यास्त एवं सूर्यास्त के समय मोनेवाला यदि चक्रपाणि-रिष्णु हो तो भी लक्ष्मी उसका परित्याग कर देती है ।

६. पीतोऽगस्त्येन तातञ्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येन रोपाद्,
 आवाल्याद्विप्रवर्ये स्ववदनविवरे धायंते वैरिणी मे ।
 गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजा—निमित्तं,
 तस्मात्खिन्ना सदैव द्विजकुलनिलय नाथ । नित्यं त्यजामि ॥

—चाणक्यनीति १५।१६

लक्ष्मीदेवी कहती हैं—अगस्त्य ऋषि ने रण्ट हीकर मेरे पिता (गमुद्र) को पी डाला, भृगु ऋषि ने क्रोध के मारे मेरे पति (विष्णु) को लात मारी तथा वाल्यवय से ही ब्राह्मण मेरी वैरिणी (सरस्वती) को अपने मुख में धारण करते हैं और उमापति (शिव) की पूजा करने के लिए मेरे गृह (कमल) को प्रतिदिन तोड़ते रहते हैं—इन्हीं कारणों से विप्र होकर मैं ब्राह्मण-कुल से सदैव दूर रहा करती हूँ ।



१ ऋद्धिश्चित्तविकारिणी ।

—सुभाषितरत्नखण्डमजूषा

ऋद्धि चित्त को विकृत करनेवाली है ।

२. जहाँ सम्पत्ति और वैभव होता है, वहाँ अभिमान भी आता है और चिन्ता भी ।

—ताओ-उपनिषद् ३६

३ यत्रास्ति लक्ष्मीविनयो न तत्र ।

—सुभाषितरत्नखण्डमजूषा

जहाँ लक्ष्मी होनी है, वहाँ विनय नहीं रहता ।

४ वधिरयति कर्णविवर, वाच मूकयति नयनमन्धयति ।
विकृतयति गात्रयष्टि, सपद्‌रोगोयमद्भुतो राजन् !

—सुभाषितरत्नभाण्डागार पृष्ठ ६७

हे राजन् ! यह सम्पदारूपी अद्भुत रोग कानों को वधिर (बहरा), वाणी को मूक (बुप), नेत्र को अन्ध एवं शरीर को विकृत बना डालता है ।

५. लक्ष्मि ! क्षमस्व वचनीयमिदं मदीय—

मन्वीभवन्ति पुरुषास्त्वदुपासनेन ।

नो चेत् कथं कामलपत्रविशालनेत्रो,

नारायणः स्वपिति पद्मगभोगतल्पे ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६५

लक्ष्मी ! मैं कटुपक्षय के लिए तेरे से क्षमा माँगता हुआ कहता हूँ कि

तेरी उपासना से पुरुष अन्धे हो जाते हैं। अन्यथा कमलपत्रवत् विद्यालनेत्रवाले नारायण शेषनाग की शय्या पर क्यों सोते ?

६ लक्ष्मी का वाहन उल्लू और सरस्वती का वाहन हंस अर्थात्—
घन होने से व्यक्ति अन्धा एवं ज्ञान होने से विवेकशील बनता है।

—विवेकानन्द

७. पद्मे ! मूढजने ददामि द्रविण विद्वत्सु किं मत्सरो ?
नाहं मत्सरिणी न चापि चपला नैवास्मि मूर्खे रता ।
मूर्खेभ्यो द्रविण ददामि नितरां तत्कारणं श्रूयतां,
विद्वान् सर्वजनेषु पूजिततनुर्मूर्खेभ्य नान्यागतिः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६६

किसी ने लक्ष्मी से पूछा कि तू मूर्खों को ही प्रायः धन देती है। क्या विद्वानों के साथ तेरा कुछ मत्सर-भाव है? लक्ष्मी ने कहा—मैं मत्सरिणी चंचल और मूर्खों में अनुरक्त नहीं हूँ, किन्तु जो मूर्खों को धन देती हूँ, उसका कारण यह है कि विद्वान् तो विद्या के कारण सब लोगों का पूज्य ही हैं, किन्तु मूर्खों की मेरे बिना कोई गति ही नहीं होती।

८. अकाण्डपातोपनता, न क लक्ष्मीविमोहयेत् ?

—कथासरित्सागर

अचानक मिली हुई लक्ष्मी किमको विमोहित नहीं करती ?

९. दीनों की लक्ष्मी से प्रार्थना—

निद्राति म्नाति भुङ्क्ते चलति कचभरान् शोपयत्यन्तरास्ते,
दीव्यत्यर्जनं चाय गदितुमयनरः प्रातरायाहि ! याहि !
इन्दुदण्ड प्रभूणामसकृदधिकृतीर्वागितान् द्वारि दीना—
नरुमान् पथ्याद्विचरन्त्ये ! मन्सिगृह्णन्वा ह्यन्तरङ्गैरपाद्गं ॥

महाराज अभी सो रहे हैं, नहा रहे हैं, भोजन कर रहे हैं, टटल रहे हैं,
पेशों को गुना रहे हैं, आनाम कर रहे हैं, अभी उनमें बात नहीं होगी—
जाओ ! सचेरे आना । हे कमलनेत्रे लक्ष्मी ! हम प्रचार पनापीशों के

अधिकारी द्वारों पर हम दीनों को रोकते ही रहते हैं, अतः तू हमें कृपा-कटाक्ष से देख ।

१०. इन्द्रासणी न त कुज्जा, दित्तो वण्ही अणं अरी ।
आसादिज्जतसंबंधो ज कुज्जा ऋद्धिगारवो ॥

—ऋषिसापित ४५।४३

इन्द्र का वज्र, प्रज्वलित अग्नि, ऋण और शत्रु—ये इतनी हानि नहीं पहुँचा सकते, जितनी हानि मन से आस्वादित ऋद्धि का गर्व पहुँचाता है ।

११. तीन प्रकार का नशा होता है—

१. लक्ष्मी का नशा—मग्नह से चढता है ।
२. मदिरा का नशा—पीने से चढता है ।
३. स्त्री का नशा—देखने से चढता है ।



१. वयोवृद्धास्तपोवृद्धा, ये च वृद्धा बहुश्रुता ।
ते सर्वे धनवृद्धाना द्वारे तिष्ठन्ति किकराः ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

वयोवृद्ध, तपोवृद्ध और ज्ञान में वृद्ध—ये सभी धनवृद्धों के द्वार पर किकर होकर मड़े रहते हैं ।

२. न विद्यया नैव कुलेन गौरवं, जनानुरागो धनिकेषु सर्वदा ।
कपालिना मौलिघृतापि जाह्नवी, प्रयाति रत्नाकरमेव सत्त्वरम् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

मंमार में न विद्या का गौरव है और न कुल का गौरव है । लोगों का प्रेम हमेशा धनिकों में रहता है । देगो ! महादेवजी द्वारा मस्तक पर घारण कर लेने पर भी गगानदी शीघ्रता से समुद्र में ही जाती है, क्योंकि वह रत्नों का भण्डार है ।

३. श्रीमतो ह्यरण्यान्यपि भवति राजधानी ।
—नीतिवाक्यामृत ३२।३६

श्रीमनों के भयकर अटवी भी राजधानी बन जाती है ।

४. लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति, प्रायेण परवेदनाम् ।
शेषे धराभरकलान्ते, जेते नारायण मुक्ताम् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६७

लक्ष्मी वाले लोग प्रायः परपीडा को नहीं जाना करते । देगो ! पृथ्वी के भार से कलान्त शेषनाग पर भी नारायण मुक्त से गोये रहते हैं ।

५. ईश्वराणा हि विनोदरसिकं मन ।

—किरातार्जुनीय

धनिको का मन विनोदरसिक होता है ।

६. कोई भला आदमी अचानक धनी नहीं बन गया । जो धनी बनने की शीघ्रता में है, कमी निर्दोष नहीं रह सकता ।

—वाह्विल

७. लूट-लूट इस जगत को, वनते धनी कुवेर ।

बिना पडे खड्डा कही, नहीं लग सकता ढेर ॥

—दोहासदोह

८. मशीन की गहायना में एक मजदूर, आदमी में ३०० गुणा अधिक काम कर लेता है । यदि एक मिल में दो हजार मजदूर काम करते हों, तो छ लाख मनुष्यो जितना काम होना है । मक्का अधिकाल लाभ मिल-मालिक नेजाते हैं एवं एशोजाराम में बन्द्याद करने हैं ।

—'उज्ज्वलवाणी से'

९. धनी बनना चाहनेवाले को मितव्ययी होना जरूरी है । मंचेस्टर के धनी 'वेकरवुड' एक पौंड पैदा करके एक गिलिंग (२१वां हिस्सा) खर्च करते थे ।

१०. भाग्यवान वह, जिसका धन गुलाम है ।

अभागा वह, जो धन का गुलाम है ।

—वाल्टेयर



१. शाहजहाँ के पाम ७०० मन 'नोना', १८०० मन 'चाँदी', ८० रत्तल 'हीरे', १०० रत्तल 'माणिक' और ६०० रत्तल 'गोती' थे। एक करोड़ के 'कपडे' एवं पञ्जीम नाम में अधिक के 'गिट्टी के बत्तन' थे। उनके पाम ७ फुट लम्बा और ४ फुट चौड़ा एक 'रत्न-जटिन (नहाने का) टब' था, जिसकी कीमत आज की मूल्य-गणना में दस अन्व रुपये होती है।

—अध्ययन के आधार पर

२. टेक्सस (न. अमेरिका) के 'हेरोल्डसन लफायतेहट' की सम्पत्ति बीस अरब डालर है। उनकी दैनिक आय दो लाख चालीस हजार डालर है।

● हैदराबाद (दक्षिण) के निजाम की सम्पत्ति एक अरब डालर है।

● आमास्ता एक अरब सत्तर करोड़ के स्वामी हैं।

● हेनरी फोर्ड अद्यत्तालीस करोड़ पौंड के मालिक हैं। वार्षिक आय दो करोड़ चालीस लाख पौंड है।

इनो प्रसन्न राकफेलर एवं ब्रिटिश-नरेम आदि भी विश्व के बड़े धनियों में गिने जाते हैं।

—जगभग २२ वर्ष पूर्व के समाचारपत्रों से एकलिन

३. भारत के बड़े-बड़े उद्योगगृहो की कुल पूँजी—

(करोड़ रुपयो में)

नाम	पूँजी सन् १९६६-६७	पूँजी सन् १९६९-७०
१. टाटा	५०५.३६	६२८.५०
२. विरला	४५७.८४	६२९.६०
३. मार्टिन वर्न	१५३.००	१७६.००
४. वागट	१०४.३१	१३९.९०
५. थापर	९८.८०	११५.७०
६. सूरजमल नागरमल	९५.६२	१०३.९०
७. मफतलान	९२.७०	११६.७०
८. ए. मी. सी.	८९.८०	१२०.७०
९. बालचन्द्र	८१.११	१००.७०
१०. श्रीराम	७४.१३	१०७.९०

—नवभारतटाइम्स, २७ अगस्त १९७२

४. तीन प्रकार के इभ सेठ—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ—

अम्बावाडी सहित हाथी डूबे—इतना रत्न-पुञ्ज जिसके पाम हो, वह उत्तम, इतना सोना जिसके पाम हो वह मध्यम और इतनी चादी जिसके पाम हो वह कनिष्ठ ।

—प्राचीन-संग्रह के आधार पर



१. भक्ते द्वेषो जडे प्रीतिः, प्रवृत्तिर्गुरुलङ्घने ।
मुग्धे कटुकता नित्य, धनिना ज्वरिणामिव ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६७

भक्त के प्रति द्वेष, जग में प्रेम, गुरुलघन की प्रवृत्ति और मुग्ध में कटुता, ज्वर-ग्रस्त पुरुषों की तरह धनिकों में भी ये चीजें प्रायः होती ही हैं। यहाँ सभी सदस्यों के दो दो अर्थ हैं। जंगे—भक्त—भक्ति करने-वाला और भोजन, जड़—मृत और जन; गुरुलघन—बड़ों का अपमान और गरिष्ठभोजन का लंपन, मुग्धकटुता—मुग्ध में कटुवाणी और कटुवापन।

२. प्रायेण धीमनां लोके, भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।
जीर्वन्त्यपि हि काष्ठानि, दग्धिद्राणा महीपते ॥

—विबुरनीति-२।५१

हे राजन् ! धनिकों में प्रायः शक्ति को शक्ति नहीं होती। गरीबों को काष्ठगण भी दहम हो जाते हैं।

३. ययामिपं जले मत्स्यैर्भक्ष्यते स्वापदंभुवि ।
आकाशे पक्षिभिस्त्वेव तथा नवंद्र वित्तवान् ॥

—पञ्चतन्त्र, १।२३४

जैसे—साम को जल में मत्स्य, पृथ्वी पर दिग्गज पशु जीव आकाश में पक्षी भक्षण करते हैं, उसी प्रकार धनिका का सभी लोग चूमते हैं।

४. ईसा का कहना है कि मुई के देह में से ऊँट का निष्पन्नता महज है, पर ईसावालों को स्वयं मिथुना काटित है।

—तूका २८।२५, ईसाई धर्मग्रन्थ

१. अन्तरं नैव पश्यामि, निर्धनस्य मृतस्य च ।

निर्धन में और मृतक में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता ।

२ वर वनं व्याघ्रगजेन्द्रमेवितं, द्रुमालयं पक्वफलाम्बुसेवनम् ।

तृगोषु शय्या शतजीर्णवल्कलं, न वन्धुमध्ये धनहीन-जीवनम् ॥

—चाणक्यनीति-१०।१२

व्याघ्रादि युक्त वन में निवाम, वृक्ष का घर, फल और पानी का भोजन तृणो पर शयन तथा जीर्ण-वल्कल का परिधान—ये सभी काम अच्छे हैं, किन्तु वन्धुओं में धनहीन होकर जीना अच्छा नहीं ।

३. नयेन नेता विनयेन शिष्य, शीलेन लिङ्गी प्रशमेन साधु ।

जीवेन देह मुकृतेन देही, वित्तेन गेही रहितो न किञ्चित् ॥

नयहीन नेता, विनयहीन शिष्य, आचारहीन लिङ्गो-वेषधारी, प्रशमहीन नाथु, जीवनहीन शरीर तथा धर्महीन जीव वी तरह धनहीन गृहस्थ भी कुछ नहीं अर्थात् निकम्मा है ।

४. गगनमिव नष्टतार, गुष्कसर श्मशानमिव रौद्रम् ।

प्रियदर्शनमपि रुक्षं, भवति गृह धनविहीनस्य ॥

—पञ्चतन्त्र ५।६

तागविहीन आकाश एव मूषे तालाव की तरह निर्धन मनुष्य का घर शीतले में अच्छा होने पर भी श्मशानवत् उरावना तथा रुखा ना प्रतीत होता है ।

५. टकाधर्म टकाकर्म, टका ही परम पदम् ।

यस्य गृहे टका नास्ति, हा टका ! टक-टकायते ॥

६. तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म,
सा बुद्धिरप्रहिता वचन तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहित. पुरुषः स एव,
त्वन्य क्षणेन भवतीति विचित्रमेतन् ॥

—भट्टहरि-नीतिशतक ४०

वे ही सब इन्द्रियां हैं, वही कर्म है, वही अप्रतिहत-बुद्धि है और वही वाणी है। आश्चर्य है, फिर भी धन की उगमा ने रहित वही आदमी क्षणभंग्र में दूमरा-सा प्रतीत होने लगता है।

७. कौड़ी के मन्त्र जहान में, नकशे-नगीन हैं,
कौड़ी न हो तो कौड़ी के, मन्त्र तीन-तीन हैं।

—उद्दामेर

८. गतवयसामपि पृथा, येषामर्थो भवन्ति न तरणाः ।
अर्थे न नु ये हीना, वृद्धाग्ने यौवनेऽपि म्यु ॥

—पञ्चतन्त्र १।१०

जिनके पास धन है, वे युवावस्था में भी जवान बने रहने हैं और जिनके पास धन नहीं है वे जवानी में भी बूढ़े ने प्रतीत होने लगते हैं।

९. सम्पत्त अनेक मित्र बना लेती है लेकिन निर्धन अपने पत्नी में भी विद्युत्त हो जाता है।

—वाद्दबिन

१०. निर्धनता—

(क) निर्धनता कोई पाप नहीं है।

—हाथटं

(ख) धन दुर्गुणों पर पदों डाल देना है, परन्तु नदगुण निर्धनता में आश्रय पाते हैं।

—विषोऽग्निम

(ग) समाधि साम्प्रतिक निर्धनता यह है कि हम दूसरों को युवाग्ने या अर्थिक ने अधिक प्रदान करते हैं और खुद को युवाग्ने या अर्थ में अन्त।

—धूमरेणु



१ मोहन ! पाम गरीब के, को आवत को जात ?
एक विचारो सास है आत-जात-दिन-रात ॥

२ गरीब रो बेनी परमेध्वर ।

—राजस्थानी कहावत

३ माया ने माया मिलै, कर-कर लवा हाथ ।
नूलमीदाम गरीब की कोई न पूछे बात ॥

४ दो फाटे शरीर को मुषा देते हैं—गरीब की इच्छा और कमजोर का गुन्ता ।

५ गरीब वह नही, जिनके पास कम है, बल्कि वह है, जो अधिक चाहता है ।

—डैनियल

६ गरीब गधार मा सर्प नें मोटानी शर्म पडे ।

७ मोटा कहे मोवाला नो भाजी, श्रोता कहे सा हाजी-हाजी ।

८ गरीब बोले ते टपला पडे अने मोटा बोले त्यारे तालिओ पडे ।

९ सारा ने सागमटे (नपरिवार) नोनरा ने गरीब ने कोई गणे नहि ।

—गुजराती कहावतें

७ गरीब री लुगाई गांवरी भोजाई ।

● सोहरै ऊट माथे सहु कोई वेटे ।

—राजस्थानी कहावतें

बाहर निकल आयी। दोनों युवतियों ने स्वामीजी ने कहा कि घर में बाहर निकलने लायक उनके पाम कपड़े नहीं हैं। उनके वयान की गवाही स्वयं उनके शरीर दे रहे थे। स्वामीजी को देखकर मिपाही तो भाग गया, मगर विवेकानन्द और उनके गाधियों ने उस रात चमारों के चबूतरे में ही लोगों को उपदेश दिया।

—हिन्दुस्तान, ३० अगस्त १९७१ (सप्ताहकीव लेख से)

४. अमरीका में १८ साल में कम अवस्था के लगभग एक करोड़ बीम लाग बच्चों के परिवार इतने गरीब हैं कि वे अपने बच्चा के लिए पर्याप्त अन्न-वस्त्र और चिकित्सा की व्यवस्था नहीं कर सकते।

—(राष्ट्रपति जानसन) हिन्दुस्तान, २४ जून १९६८

५. कन्थासप्टमिद प्रयच्छ यदि वा स्वाङ्के गृह्णामार्भकं,
रिक्तं भूतलमत्र नाथ ! भवत पृष्ठे पत्नानोच्चयः ।
दम्पत्योरिति जल्पतानिधि यदा चोरः प्रविष्टस्तदा,
लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदाभ्रगन्तः ॥

मर्दों में ठिठुरती हुई पत्नी ने कहा—हे नाथ ! अपनी गुरदों का एक टुकड़ा मुझे दे दो, मेरी गोद में मोझे बच्चे को गर्दों तक रहो दे। यदि गुरदों नाममात्र ही बच गयी है तो फिर आप ही उस बच्चे को अपने पाम मुला लो। आपसे नीचे फूग और पतल है, मगर मेरे नीचे गुरद भी नहीं है।

नयोग ऐसा हुआ कि पत्नी जब यों अपना रोना रा रही थी, एक चोर लोगों करने के लिए उस घर में आया और पति-पत्नी की हृदयवेदक कहानी सुनकर अपनी गति-मति ऐसा भूला कि दूसरा के गर्दों में माई हुई कपड़ों की गठरी को बड़ी द्योटकन रोना हुआ तहाँ में गया गया।

—हिन्दुस्तान, ३० अगस्त १९७१ (सप्ताहकीव लेख) पर आधाग्नि

१. शून्यमपुत्रस्य गृह, चिरशून्य नास्ति यस्य सन्मित्रम् ।
मूर्खस्य दिशा शून्या, सर्वं शून्य दरिद्रस्य ॥

—मृच्छकटिक १।८

अपुत्र का घर शून्य है, सच्चे मित्र के बिना व्यक्ति का समय शून्य है, मूर्ख की दिशाएँ शून्य हैं, किन्तु दरिद्र व्यक्ति का सब कुछ शून्य है ।

२. उत्पद्यन्ते विलीयन्ते, दरिद्राणा मनोरथाः ।

बालवैधव्य-दग्धाना, कुलस्त्रीणा कुचा इव ॥

बालविधवापन की ज्वाला में जने हुए कुलीन स्त्रियो के स्तनों की तरह दरिद्र व्यक्तियों के मनोरथ उठने हैं और मिट जाते हैं ।

३. हेतु-प्रमाणयुक्तं, वाक्य न श्रूयते दरिद्रस्य ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

दरिद्र व्यक्ति का हेतु-प्रमाणयुक्त वाक्य भी कोई नहीं सुनता ।

४. द्वाविमौ पुरुषौ राजन् । स्वर्गस्योपरितिष्ठत ।

प्रभुश्च क्षमया युक्तो, दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥

—विदुरनीति १।६३

ये दो आदमी स्वर्ग में उहर्ते हैं—शक्तिशाली होकर धमा करनेवाला और दरिद्र होकर दान देनेवाला ।

५. को वा दरिद्रो ? हि विशालतृष्णा ।

श्रीमांश्च को ? यस्य ममन्ति तोष ॥

—शंकर प्रश्नोत्तरी-५

दरिद्र कौन है ? विशाल तृष्णावाला ।

श्रीमान् कौन है ? जिसको सन्तोष है, वह ।

६. छः दमड़ी में राजा भोज—

राजा भोज को एक लकड़हारा मिला । राजा ने पूछा—तुम कौन हो ?

लकड़हारा—राजा भोज ।

राजा—तुम्हारी आय कितनी है ?

लकड़हारा—छः दमड़ी ।

राजा—सर्न का क्या हिमाय है ?

लकड़हारा—एक दमड़ी बोटगे को (माँ-बाप को), एक आसामी को (पुत्रो को), एक मंत्री को (स्त्री को), एक स्वजाने को एव एका स्वय को देता हूँ तथा एक अतिथि-नस्कार में लगाता हूँ ।

७. छः प्रकार के दरिद्र—

(१) तन में, (२) मन में, (३) धन में, (४) वचन में, (५) बुद्धि में,
(६) सदाचार में ।



१. दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ।

—घटखर्पर

दरिद्रता का दोष गुणों के समूह का नाश करनेवाला है ।

२. दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम् ।

—चाणक्यसूत्र २५७

दरिद्रता पुरुष का जीते हुए मरण है ।

३. दारिद्र्यान्मरणाद्वा, मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम् ।

अल्पक्लेशं मरणं, दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ॥

—मृच्छकटिक १।११

दरिद्रता और मरण की तुलना में मुझे मरण ही अच्छा लगता है, दरिद्रता नहीं । क्योंकि मरण में अल्प क्लेश होता है और दरिद्रता में अनन्त दुःख ।

४. हे दारिद्र्य ! नमस्तुभ्य, सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः ।

पश्याम्यहं जगत्सर्वं, न मे पश्यति कश्चन ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

हे दरिद्रता ! तुझे नमस्कार है, तेरे प्रसाद से मैं तो सिद्ध हो गया । क्योंकि मैं समूचे जगत् को देखता हूँ अर्थात् सबके नामने मांगता रहता हूँ और मुझे कोई भी नहीं देयता ।

५. दारिद्र्य और दारिद्र्य का संवाद—

दारिद्र्य—

५. मे दारिद्र्य । मुलकखणा, इक मुझ वात सुणेह ।
 म्हे परदेशां संचरा, तू घर-सार करेह ।

दारिद्र्य—

मंचरत्रो सयणां नराणां, छोडं तेह अयाण ।
 थे परदेशां मंचरो (तो) म्हे पिण आगेवाण ॥

—राजस्थानी दोहे

६. दग्ध ग्वाण्डवमर्जुनेन वलिना दिव्यद्रुमं सेवित,
 दग्धा वायुमुतेन, रावणपुरी लङ्का पुनः स्वर्णभू ।
 दग्ध पञ्चशर पिनाकपतिना तेनाऽप्ययुक्तं कृतं ।
 दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनापि दग्धं नहि ॥

—भोजप्रबन्ध

वीर अर्जुन ने दिव्यवृक्षो ने विभूषित ग्वाण्डववन को भस्म किया,
 वीर हनुमान ने रावण की स्वर्णमयी लका नगरी को भस्म किया और
 महादेव ने भी कामदेव को भस्म करके अयुक्त किया । रोद है कि
 जगत् को सन्तानित करनेवाले इस दारिद्र्य से किसी ने भी भस्म
 नहीं किया ।



१ विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति वार्षिक राष्ट्रीय आय—

नाम	आय रुपये में
बर्मा	४३०
भारत	५५२
पाकिस्तान (वग़ालसयुक्त)	५६०
श्रीलंका	६४५
जापान	४२६०
फ्रांस	१०,०००
इंग्लैण्ड	१०,०८०
ऑस्ट्रेलिया	११,६४०
अमरीका	२२,०००

—भारतीय अर्थशास्त्र, खण्ड २, पृष्ठ ३३

२. भारी आय—

मुग़लेआजम—(फ़िल्म) ३६ सप्ताहों में सब त्वरित निकाल कर
१ करोड़ ७५ लाख का नफ़ा कर चुका।

—रंगभूमि से

३ आयकर (इन्कमटैक्स)—चक्रवर्ती लाभ का २०वां भाग, वामुदेव
१०वां भाग एवं माडलिक राजा छठवां भाग लिया करते थे। वर्तमान
भारत सरकार के आय-कर का हिमाच, हिंदुस्तान, २ मार्च १९६८ के
अनुसार दस प्रकार है—

चार हजार रुपये तक की आमदनी पर कर नहीं ।

५००० रु० पर २५० रु०,

१०००० रु० पर ७५० रु०,

१५००० रु० पर १५०० रु०,

२०००० रु० पर २५०० रु०,

२५००० रु० पर ४००० रु०,

३०००० रु० पर ६००० रु०,

५० हजार रु० पर १६००० रु०,

६० हजार रु० पर २८००० रु०,

१ लाख रु० पर ४७५०० रु०,

२॥ लाख रु० पर १५०००० रु०,

टाई लाग से ऊपर की आमदनी पर ७५ प्रतिशत ।

सम्पत्ति कर—५० लाख पर १ लाख ६२ हजार ।

मृत्यु कर—३० लाख पर १५ लाख २२ हजार ।

—सन् १९६६ की सरकारी रिपोर्ट के आधार पर



१. इदमेव हि पण्डित्य, चातुर्यमिदमेव हि ।
इदमेव मुबुद्धित्व-मायादल्पतरो व्यय ॥
यही पण्डितता, चतुरता और मुबुद्धिमत्ता है कि आमदनी से कम खर्च किया जाये ।
2. Cut your coat according to your cloth
कट योर कोट एकोर्डिंग टू योर क्लोथ ।
—अप्रेजी कहावत
अपनी आमदनी के अनुसार खर्च करो ।
३. खर्च व अदाजे दखल कुन ।
—पारसी कहावत
आमदनी को देख कर खर्च ।
४. बीस पाँड की आमदनी में यदि खर्च उन्नीस पाँड उन्नीस मिलिंग छ पेन्स है तो मुन्न होगा और यदि बीस पाँड उन्नीस मिलिंग छ पेन्स है तो दु स होगा ।
—मिफायर
५. आयमनालोच्च्य व्ययमानो वैश्रवणोऽपि ध्रमणायत एव ।
—नीतिवाक्यामृत १८।१०
आमदनी को न देखकर खर्च करनेवाला वैश्रवण (कुपेर) भी फकीर हो जाता है ।

६. नित्यं हिरण्यव्ययेन मेरुरपि क्षीयते ।

—नीतिवाक्यामृत ८।५

हमेशा व्यय करने से धन का मेरु भी क्षीण हो जाता है ।

७ अस्मी रो आवद चौरासी रो खर्च ।

- साहजी तूरा-नेमा पूरा ।
- घर तग-ब्रह्म जवरजंग ।
- आनो टोगसी-नो दीन्हे है ।

—राजस्थानी कहावती

८. सन् १९६८-६९ के बजट के अनुसार भारत-सरकार की कुल आमदनी ४२९९ करोड़, ५९ लाख थी तथा खर्च ४७९९ करोड़, ५९ लाख हुआ ।

—हिन्दुस्तान, २ मार्च १९६८

९. संसार का वार्षिक रक्षाव्यय १५ हजार खरब रु०—

संयुक्त राष्ट्र-सहायता ने सम्प्रान्त की होठ तथा सुरक्षा बजट में निरन्तर वृद्धि के सामाजिक और आधिकारिकों के अध्ययन के लिए एक विशेषज्ञ समिति गठित की थी । उसने सत वर्ष अगुबर में महासंघर्ष की एक रिपोर्ट दी । उसके अनुसार १९६१ में १९७१ के बीच के दस वर्षों में संसार का रक्षा-व्यय ५०० खरब डॉलर (३७५० खरब रुपये) में बढ़ कर ६००० खरब डॉलर (१५००० खरब रुपये) वार्षिक हो गया है ।

—हिन्दुस्तान १ अगस्त १९७२



१. व ला तुवज्जिर तव् जीरन् 50 ।

—कुरान १७।२६

फिज़ूल-खर्ची न करो ।

२. न तो अपना हाथ गर्दन से बाँध रख और न (फिज़ूलखर्ची से) उसे बिलकुल खुला फैलादे ।

—कुरान १७।२६

३. धन कमाने की अपेक्षा खर्च करने में अधिक बुद्धिमत्ता चाहिए । अयोग्य स्थान में खर्च करने से धन का दुरुपयोग होता है ।

४. किसी भी चीज़ में पैसा लगाने में पहले अपने आप में दो प्रश्न पूछो—
क्या मुझे इस चीज़ की जरूरत है ? क्या इसके बिना मेरा काम चल सकता है ?

—सिद्धनी स्मिय

५. जान मुरेनी दो वक्तियाँ जता कर कुद्व लिग्न रहे ये । दो शायबताँ उनने कुद्व चन्दा लेने आये । आते ही एक वत्ती बुझा दी एव उन्हें आशानीत चन्दा दिया । वत्ती बुझाने का कारण पूछने पर वोले—दो वक्तियाँ लिगने के लिए थी, आपमें बातचीत एक वत्ती के प्रकाश में भी हो सकती है, व्यर्थ व्यय करना मेरे निद्वान्त में विपरीत है ।



१. ऋण लेने का अर्थ है, दुःख मोल लेना ।

—टसर

२. आदमी के लिए कर्ज ऐसा है, जैसा चिटिया के लिए साप ।

३. न विपविपमित्याहु—ब्रह्मस्व विपमुच्यते ।

विपमेकाकिनं हन्ति, ब्रह्मस्व पुत्र-पौत्रकम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डार, पृष्ठ १०२

विप विप नहीं है, चान्तविक विप ऋण है । क्योंकि विप तो केवल लाने वाले को मारता है, किन्तु ऋण उसके पुत्र-पौत्रो को भी ।

४. ऋणी शोना ही नवमे बड़ी निर्यन्ता है ।

—एम. जी. लोडसर

५. ऋण लेनेवाला ऋण देनेवाले का दाग है ।

६ अधमर्णोप्राहकस्यादुत्तमर्णमुदायक ।

—हीमकोप-३।५४६

ऋण लेनेवाला अधमर्ण और देनेवाला उत्तमर्ण कहलाता है ।

७ म्त्रियों को मोचना चाहिए कि हमारे षेपमृगा एवं श्रद्धार के लिए पवित्रेय कर्मदार तो नहीं बन रहे ?

८. मरवार पाछे तीन वर्ष बाद सुद्वारा पच्छे तथा धेगर्भ तीकर यही पाछे कोई शिवालयवा कच्छाकर ऋणमुक्त हो जाय, लेकिन धर्मदारप्रानुसार अन्ततर्गो गत भी कर्ज को धृतादि विना प्राप्ति ऋण-मुक्त नहीं हो सरगा ।

६. एक व्यापारी को बड़ा घाटा लगा। वह राजा भोज के यहाँ से एक बड़ी रकम ऋण के रूप में लेकर घर की ओर चला। रास्ते में वह एक रात तेली के घर रुका। व्यापारी पशु-भाषा समझता था। उसने तेली के दो बैलों की बातें सुनी। एक ने कहा—मैं इस तेली का कर्ज सुबह तक चुका कर इस योनि से छूट जाऊँगा। दूसरे ने कहा—यदि १००० रु० की शर्त पर राजा भोज के बैल की मेरे साथ दौड़ हो जाय तो जीत जाऊँ और मैं भी ऋण-मुक्त हो जाऊँ। पहला बैल अगले दिन सुबह व्यापारी के सामने ही मर गया। उसके मरते ही व्यापारी ने रात का नारा हाल तेली को कह सुनाया। यह सुनते ही तेली ने राजा के बैल के साथ दौड़ की होड़ लगाई। दौड़ में तेली का बैल जीत गया। १००० रु० तेली को मिल गये। रुपये मिलते ही बैल मर गया। यह देखकर व्यापारी ने राजा को रुपये लौटाते हुए बैलों का सारा हाल सुनाया और कहा—राजन् ! इस जन्म में तो मैं यह कर्ज हरगिज चुका नहीं सकता और अगले जन्म के लिए कर्ज का बोझ उठाना मुझे उचित नहीं लगता।

—फल्याण-सत्कथा अंक से

१०. अधिक ऋणवाले—

(क) बहु दुःखिया ने दुःख नहीं, ने बहु ऋणीया ने ऋण नहीं।

—गुजराती कहावत

(ख) चडिया सौ ते नट्ठा भउ।

—प जाबो कहावत

११. भारत पर विदेशों का ऋण—

१९४७ में जब भारत स्वतन्त्र हुआ, उन समय भारत का विदेशों में १,७०० करोड़ रुपये जमा थे, अर्थात् प्रत्येक भारतवासी ५० रुपये का पावनेदार था। 'स्टेट्समैन' १२ जुलाई १९७१ के अनुसार अप्रैल १९७१ के अन्त तक भारत ६,६०२ करोड़ रुपये का विदेशी कर्जदार बन चुका है अर्थात् प्रत्येक भारतीय १५० रुपये का देनदार हो चुका है।

—नवभारत टाइम्स १६ नवम्बर १९७१

(श्री रामेश्वर टाटिया के लेख से)



१. उधार न दो और न लो । देने में पैसा और मित्र दोनों लो जाते हैं तथा लेने में विषयन मारी कुण्ठित हो जाती है ।

—शेक्सपियर

२. उधार देने के विषय में—

(क) नष्टे विष्टे च देण्याया, सूतकारं विशेषतः ।

उधारके न दातव्य, सूतनाशो भविष्यति ॥

नष्ट, विष्ट, बेध्या और बुआरी—इनको उधार (ऋण) धन नहीं देना चाहिए, देने से नृत्तपन का ही नाश हो जाएगा ।

(ख) रिक्तेदारो को दिष्ट, स्पये अगरे उधार ।

नो गन्धो । दृष्टमन वने, अत्र दे रिक्तेदार ॥

—बोहासंदोह

(ग) उधारी से नोले नश्चा हाय गीने ।

—मगढी फहाषत

उधार देना शान्त नृत्तमान करना है ।

(घ) उधार नीजे र, दम्पण कीजे ।

● उधार रिपो द, गिनायत समायो ।

● उधार इनको नोले सोत वैवर्गी दे ।

—राजस्थानी बहादुर

३. उधार देने के विषय में—

(क) उधार नोले विर शोभन न उशाना शोभा नगी है ।

—वेसिंग

(ख) उधार लिया हुआ पैसा गम का सामान बन जाता है ।

(ग) जिसे उधार लेना प्रिय लगता है, उसे बदा करना अप्रिय लगता है ।

(घ) फूस का तपना और उधार का खाना ।

—हिन्दी कहावतें

(ङ) उधारनी मा ने कूतरा परणे ।

—गुजराती कहावत

(च) उधार घर की हार ।

—राजस्थानी कहावत

४. नगद और उधार—

(क) ए वर्ड इन हैंड इज वर्थ टू इन दि वुश ।

—अंग्रेजी कहावत

नो नकद न तेरह उधार ।

(ख) सपने रा सात, परतग्व रा पांच ।

—राजस्थानी कहावत

(ग) रोकडा आज नें काले उधार ।

● उधार तो कहे ओ । खूण वंसीने रो ,
नगद कहे जी । जी । खा खीचडी नें घी ।

—गुजराती कहावतें

(घ) मांग ग्याओ, कमा ग्याओ, चाहे उधाय ग्याओ ।

—राजस्थानी कहावत

५. उधार के प्रशसक—

(क) उधारे हाथी बंधाय, रोकटे बकरी पण न बंधाय ।

—गुजराती कहावत

(ख) नाग्व लगारा नोवर्जे, बड-पीपल रो सान्व ।

नटिया मुहो नेणमी, तावो देण नलाक ॥

(उधार लेकर न देनेवालों के लिए)



१. मैनी ए लिटल मैक्स ए मिक्स ।

—अंग्रेजी कहावत

बूंद-बूंद से तालाब भर जाता है ।

२. अन्दक अन्दक खेले शवद व कतरा-कतरा खेले गरदद ।

—पारसी कहावत

बूंद-बूंद से नाला और कण-कण से मन ।

३. जलत्रिन्दुनिपातेन, क्रमया पूर्यते घट ।

—सुनापितरत्न-राष्ट्रमंजूषा

जल की एक-एक बूंद गिरने से घटा भर जाता है ।

४. कालेन मंचीयमान. परमाणुरपि मजायते मेन. ।

—नीतियावधामृत १।३०

मंचय करने-करने कालान्तर में परमाणु भी भेस बन जाता है ।

५. कोठी-कोठी मंचता कियो धाय, तांकरे-काकरे पाल बघाय,

टोपे-टोपे नरोवर भराय ।

—गुजराती कहावत

६. कोठी-कोठी करनां नंठ नारां ।

—राजस्थानी कहावत

७. कर करन ते दीजो भाई ते शेषट (संग्रह) दीजो भाई ।

—गुजराती कहावत

- ८ धन का सहजमग्रह करने के लिए गृहणियाँ घर-खर्च में से कुछ बचाती हैं, गृहस्थलोग जीवन-बीमा करवाते हैं, माँ-बाप बच्चों के 'गोलख' बनाते हैं तथा सरकार और बड़े-बड़े व्यापारी लोग अपने नौकरों के वेतन का कुछ भाग काटते हैं। अल्पवचतयोजना का भी मूल ध्येय यही है।



१. व्याज ने घोटां न पहोने ।

● व्याज ने विसामो नहि ।

—गुजराती कहावतें

२. मिनग कमावै चार पोर, व्याज कमावै आठ पोर ।

—राजस्थानी कहावत

३. व्याज भला-भलानी लाज मूकावै ।

—गुजराती कहावत

४. ६५ वर्ष पूर्व गुप्तगम ने मवान गिरये साबर १६५६ मे उने तुटाने मरा । चप्र व्याज के हिसार मे २२ बगोड ३८ लाग ६७ हजार ७८३ रुपये हुए ।

५. एक रामे लका लीधी लो भाभा राम (आनो) ।

चटे न्या मुं वाली गे ।

—गुजराती कहावतें

६. मूलमू व्याज प्यागे ।

—राजस्थानी कहावत

७. हथीय अजसो एत दिा त्रंदायों के पहा ने आटा, चावल एक लकड़ी उटार के आये । गयो समय हाडी मे मत देगएर नही पायी । हथीय व्याज का धना लाकर ७ गोर हा गये ।

—“इसकाय धर्म क्या कहत है ?” क जापार पर

चौथा कोष्ठक

१

आत्मा

१. जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया ।
जेण वियाणइ मे आया । त पडुच्च पडिसखाए ॥

—आचाराग-५।५

जो आत्मा है, वह विज्ञाता है । जो विज्ञाता है, वह आत्मा है । जिमसे जाना जाता है, वह आत्मा है । जानने की इस शक्ति में ही आत्मा की प्रतीति होती है ।

- २ जो अहंकारो, भणित अप्पलक्खणं ।

—आचाराग चूर्णि-१।११

यह जो अन्दर में 'अहं' की चेतना है, यह आत्मा का लक्षण है ।

३. यत्राहमित्यनुपरितप्रत्यय, स आत्मा ।

—नीतिवाक्यामृत ६।४

जहाँ "अहं" ऐसा मुदृढ निश्चय हो, वह आत्मा है ।

४. जिम हस्ती को वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं, भात भगवान् कहते हैं, उमे योगी आत्मा कहते हैं ।

—रामकृष्ण

- ५ जिसे अपने जीवन के लिए मन, प्राण, और शरीर की गर्ज नहीं, अपने ज्ञान के लिए मन और इंद्रियों की गर्ज नहीं और अपने आनन्द के लिए पदार्थाग्र के दाहसम्पर्श की गर्ज नहीं, उसी तत्त्व का "आत्मा" नाम दिया गया है ।

—अरविर् घोष

अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परे सिया ?

—धम्मपद-१२।४

आत्मा ही आत्मा का नाथ (स्वामी) है, दूसरा कौन उसका नाथ हो सकता है ?

जारिमिया मिद्धप्पा, भवमत्तियजीव तात्तिमा हांति ।

—नियमसार-४७

जैसी मुक्त आत्मा मिद्धां (मुक्त आत्माओं) की है । मूलस्वरूप में वे ही मन्मारुप्य प्राणियों की है ।

८. हृदिथस्स य कुंधुम्म य ममं चैव जीवे ।

—मगवती ७।८

आत्मा भी हृदि में हागी और गु बुआ-दोनों की आत्मा एक समान है ।



१. अरुवी सत्ता, अपयस्स पय नत्थि ।

—आचारांग-५।६

आत्मा का मूलस्वरूप अरुपी है। उसको कहने के लिए कोई शब्द नहीं है। वास्तव में वह अवाच्य है।

२. सब्बे सरा नियट्ठत्ति,
तक्का जत्थ न विज्जड ।
मई तत्थ न गाहिया ॥

—आचारांग ५।६

आत्मा के वर्णन में सबके सब शब्द निवृत्त हो जाते हैं—ममाप्त हो जाते हैं। वहाँ तर्क की गति भी नहीं है और न बुद्धि ही उसे ठीक तरह ग्रहण कर पाती है।

३. नैपा तर्केण मत्तिरापनेया ।

—कठोपनिषद्-२।६

यह आत्म-ज्ञान कोरे तर्क-वितर्कों से झुठलाने जैसा नहीं है।

४. अमूर्तञ्चेतनो भोगी, नित्य-सर्वगतोऽक्रिय ।
अकर्ता निर्गुण सूक्ष्म, आत्मा कपिलदर्शने ।

—स्याद्वादमंजरी १५ टीका

सांख्यदर्शन में आत्मा बहनी है, चेतनायुक्त है, कर्मकर्म भोगनेवाली है, नित्य है, सर्वव्यापी है, क्रियाशून्य है, अकर्ता है, निर्गुण है और सूक्ष्म है।

५. ने न सहे, न रुवे, न गंधे, न रमे, न फामे ।

—आचारांग-५।६

आत्मा न शब्द है, न रूप है, न गन्ध है, न रस है और न स्पर्श है ।

६. आत्माऽगृह्यो, न हि गृह्यते, अशीर्यो न हि शीर्यते ।

अमगो, न हि सज्यते, अमितो न हि व्ययते, न रिप्यते ॥

—बृहदारण्यक उपनिषद्-३।६।२६

आत्मा अग्राह्य है, अतः वह पकड़ में नहीं आता, आत्मा अशीर्य है, अतः वह क्षीण नहीं होता, आत्मा अनग है, अतः वह किसी में विष्ट नहीं होता, आत्मा अमित है—व्ययनरहित है, अतः वह व्ययित नहीं होता, नष्ट नहीं होता ।

७. नो इन्द्रियगोष्ठं, अमृतभावा,
अमृतभावा यि य होइ निचवं ।

—उत्तराध्ययन-१४।१६

आत्मा आदि अमृत तत्त्व इन्द्रियग्राह्य नहीं होते और जो अमृत होते हैं, वे अविनाशी-नित्य भी होते हैं ।

८. अणिदिवगुणं जीव, दुन्नेय मंसचयगुणा ।

—दशवैकालिक-निघुंक्ति भाष्य ३४

आत्मा के गुण अविन्द्रिय-उत्पन्न हैं, अतः उन्हें नर्म-नक्षुक्षो में देना पाना कठिन है ।



१. नत्थि जीवस्स नासो त्ति ।

—उत्तराध्ययन २।२७

आत्मा का कभी नाश नहीं होता ।

२. गिण्चो अविणासि सासओ जीवो ।

—दशवैकालिक नियुंक्ति-भाष्य ४२

आत्मा नित्य है, अविनाशी है एवं शाश्वत है ।

३. न जायत्ते म्रियते वा कदाचिद्, नार्यं भूत्वा भविता वा न भूय ।
अजो नित्य शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥२३॥

—गीता अ० २

यह आत्मा न कभी जन्म लेती है, न कभी मरती है अथवा न यह आत्मा होकर के दुबारा होने वाली है । क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुण्यतन है ॥२०॥

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न इसको जल जला सकती है न इसको जल गोला कर सकता है और न इसको वायु सुखा सकती है ॥२३॥

४. आत्मा की परिमितता—

(क) चान्नापशतभागस्य, शतधा कल्पितस्य च ।

भागो जीव स विज्ञेयः, न चानन्त्याय कल्पते ॥

—श्वेताश्वतरे उपनिषद् ५।६

बालाग्र के सौवें भाग के सौवें भाग जितना जीव होता है, यह अनन्त परिणामवाला है।

(व) अद्गूष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा ।

मदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद्-३।१३

अद्गूष्ठ मात्र परिमाणवाला अन्तर्यामी परमात्मा मनुष्यों के हृदय में नम्यक् प्रकार में स्थित है।

५ आत्मा की अलिङ्गिता—

(क) न इत्थी, न पुग्मे न, अन्नहा ।

—आचारांग-१।६

आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न मनु मक है।

(ग) नैव स्त्री न पुमानेव, न चैवाय नपुमक ।

यद् यच्छरीरमादत्ते, तेन-त्तेन न युज्यते ॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद् १।१०

यह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न मनु नपुमक है। जो-जो शरीर धारण करता है, उस-उस नाम में युक्त हो जाता है।

(ग) वामाग्नि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराग्नि ।

तथा शरीराग्नि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि वही ॥

—गीता २।२२

अर्थ—मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए वस्त्रों को धारण कर लेता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को छोड़कर नए शरीरों को धारण कर लेता है।

१. अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
 अप्पा कामदुहाधेणू, अप्पा मे नन्दरां वण ॥३६॥
 अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य ।
 अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठओ ॥३७॥

—उत्तराध्ययन २०

मेरी (पाप में प्रवृत्त) आत्मा ही वैतरणी नदी और कूटमात्मली वृक्ष के समान (कष्टदायी) है । और (सत्कर्म में प्रवृत्त) कामधेनु मेरी आत्मा ही एय नन्दनवन के समान (सुखदायी) भी है । ३६।

आत्मा ही सुख-दुःख की कर्ता और भोक्ता है । सदाचार में प्रवृत्त आत्मा मित्र के तुल्य है और दुराचार में प्रवृत्त होने पर वही शत्रु है । ३७।

२. आत्मानमेव मन्येत, कर्त्तारि मुख-दुःखयो ।

—धरकसंहिता

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आत्मा को ही मुख-दुःख की कर्ता माने ।

३. स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमदनुते ।
 स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते ॥

—चाणक्यनीति ६।६

आत्मा स्वयं कर्म करती है और स्वयं उगता फल भोगती है । स्वयं संसार में भ्रमण करती है और स्वयं उससे मुक्त होती है ।

४. मे मुयं च मे अज्भक्तियं च मे,
वंच-पमोवखी तुज्भ अज्भक्त्येव ।

—आचारांग-५।२

मैंने मुना है और अनुभव भी किया है कि वन्दन की मुक्ति आत्मा के अन्दर ही है ।

५. उद्धरेदात्मनात्मान, नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य, येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनन्तु शत्रुत्वे, वर्त्तातात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

—गीता-अ० ६

आत्मसंयम द्वारा आत्मा का उद्धार कर्ने । कुत्सित प्रवृत्तियों द्वारा आत्मा को विषाद—दुःख मत पहुँचाओ । आत्मा ही आत्मा की बन्धु है और आत्मा ही आत्मा की शत्रु है ॥५॥

जिम्हने आत्मा को अर्थात् मन-इन्द्रियों को आत्म-संयम द्वारा जीत लिया है, उसके लिए उसकी आत्मा बन्धु है और जिम्हके मन-इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं हैं, उनके लिए उनकी आत्मा शत्रु है ॥६॥

६. एगप्पा अजिए सत्तू ।

—उत्तराग्ययन-२३।३८

स्वयं की प्रविजित—असंयत आत्मा ही स्वयं का एक शत्रु है ।

७. न न अरी कंठल्लिता करेई,
जं मे करे अणगिया कुरप्पा ।

—उत्तराग्ययन-२०।४८

मैंने पाटनेवाला शत्रु भी अपनी जानि नहीं करया, त्रिपती जानि दुःखानार मे प्रगुत अपनी आत्मा कर गयी है ।



१. आत्मा व अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो, मन्तव्यो निदिव्यासित्त्वः ।
आत्मनो वा अरे दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या, विज्ञानेन इद सर्व-
विदितम् ॥

—बृहदारण्यक उपनिषद्-२।४।५

आत्मा का ही दर्शन करना चाहिए, आत्मा के सम्बन्ध में ही चुनना चाहिए, मनन-चिन्तन करना चाहिए और आत्मा का ही निदिव्यासन-ध्यान करना चाहिए । एकमात्र आत्मा के ही दर्शन में, श्रवण से, मनन-चिन्तन में और विज्ञान में—सम्यक् जानने में नव कुद्द जान लिया जाता है ।

२. आत्मावलोकने यत्न , कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता ।

—योगशास्त्र ५।७।४६

कल्याण की इच्छा रखनेवाले को आत्मदर्शन करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

३. पुष्पे गन्ध तिले तैलं, काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम् ।
इक्षी गुड तथा देहे, पथ्यात्मानं विवेकतः ॥

—चाणक्य नीति ७।२१

अंते—पुष्प में गन्ध, तिल में तैल, काष्ठ में अग्नि और इक्षु में गुड विद्यमान है, वैसे ही देह में आत्मा विद्यमान है । उसे विवेकपूर्वक देखो ।

४. अणोरणीयान् महतो महीया-नात्मा गुहाया निहितोऽस्य जन्तो ।
तमऽकनु पश्यति वीतशोको, घातुप्रसादान्महिमानमीशम् ॥

—कठोपनिषद् २।२०

आत्मा अणु में भी अणु (छोटी) है और महान् में भी महान् (बड़ी) है ।
प्रत्येक प्राणी के भीतर छिपी है । जो निरीह है, उसे अपने मन और
इन्द्रियो की शक्ति में इसके दर्शन होने हैं ।

५. रागद्वेषादि कल्लोल-रलोल यन्मनोजलम् ।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं, तत्तत्त्वं नेतरो जनः ॥

—समाधिशातक ३५

राग-द्वेषादि की कल्लोलो ने जिनका मनरूप जल नचल नहीं होता,
वही व्यक्ति आत्मा के तत्त्व को देख सकता है, दूसरा नहीं ।

६. नष्टे पूर्वविकल्पे तु, यावदन्यस्य नोदय ।
निविकल्पकर्चतन्यं, स्पष्ट तावद्विभामते ॥

—सधुवापयवृत्ति

पूर्व विकल्प नष्ट होने के बाद, जब तक दूसरा विकल्प उत्पन्न नहीं होता,
उम समय तक निविकल्पआत्मा स्पष्टरूप में दृष्टिगोचर होती है ।

७. घान्तो दान्त उपरतस्त्रितिक्षुः,
समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मान-पश्यति ।

—गृहवारण्यक उपनिषद्-४।४।२३

सम, दम, उपरति, त्रितिक्षा (श्रद्धा) तथा समाधानका पदगुणतिमुक्त
विज्ञान में आत्मा वा आत्मा में दर्शन करता है ।



१. एतदात्मविज्ञानं पाण्डित्यम् ।

—बृहदारण्यक उपनिषद् ३।५।१

वस्तुतः आत्म ज्ञान ही पाण्डित्य है ।

२. अज्ञातस्वरूपेण, परमात्मा न बुध्यते ।

आत्मैव प्राग् विनिश्चयेऽ, विज्ञानं पुरुष परम् ॥

—ज्ञानार्णय, पृष्ठ ३१६

अपने स्वरूप को नहीं जाननेवाला परमात्मा को नहीं जान सकता ।
अतः परमात्मा को जानने के लिए पहले अपनी आत्मा को ही निश्चय-
पूर्वक जानना चाहिए ।

३. चाग्र्वैग्री शब्दभरौ, शास्त्र—व्यारयानकौशलम् ।

वैदुष्यं चिदुपा तद्वत्, भुक्तये न तु मुक्तये ॥

अविज्ञाते परे तत्त्वे, शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ।

विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे, शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ॥

—द्विवेकचूडामणि-६०-६१

आत्मज्ञान के बिना विद्वानों की वाक्कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता,
शास्त्र-व्याख्यान की कुशलता और विद्वता—ये सब चीजें भोग का ही
कारण हो सकती हैं, मोक्ष का नहीं ॥६०॥

आत्मनश्च न जानने पर शास्त्राध्ययन व्यर्थ है तथा उसे ज्ञान देने पर
भी शास्त्राध्ययन व्यर्थ है ॥६१॥

४. ज्यां लगे आत्म तत्त्व चीन्ह्यो नही, त्यां लगे साधना सर्व भूठी ।
—नरसी भगत

५. वद-गियमाणि घरता, मीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठवाहिरा जे, गिण्वाण ते ण विदति ॥
—समयसार-१५३

भले ही व्रत-नियम को धारण करें, तप और शील का आचरण करें, किन्तु जो परमार्थरूप ज्ञान-बोध में धून्य हैं, वे कभी निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकते ।

६. आत्मजानान् पर कार्ये, न वृद्धी धारयेच्चिरम् ।
कुर्यादर्थवशात् किञ्चिद् वाक्कायान्यामतत्पर ॥
—समाधिशतक ५०

आत्मज्ञान के अतिवृत्त को भी कार्य का चिन्तन नहीं करना चाहिए, प्रयोजनवश कोई कार्य करना ही पड़े तो अनागतव रत्पर केवल वचन-काया द्वारा करना चाहिए ।

७. अग्नं मुक्ते अदनी किञ्चो-नधी गोई एण शब्धे मे कहने सो मटे, तो
में मट्टेगा—'आत्मनिर्भरता'—'आत्मज्ञान' ।
—रामतीर्थ

८. दुक्को णज्जड अण्णा ।
—मोक्षपाट्ट-६५

ज्ञाना वी चट्टिनाई में जानी जानी है ।

९. तस्मै तपो दम तर्मेनि प्रतिष्ठा ।
—केतोवनिपद्-८१८

आत्मज्ञान ही प्रतिष्ठा तर्मेनि इतिहास मीन बाणे पर लीं है—
तप, दम (इतिहास-व्रत) तथा तर्मेण तर्मे ।

१०. आत्मज्ञान के लिए इन्द्र को १०१ वर्षों तक ब्रह्मचर्य पालना पडा ।

—छान्दोग्योपनिषद् ८

११. कह सो घिप्पइ अप्पा ? पण्णाए मो उ घिप्पए अप्पा ।

—समयसार २६६

यह आत्मा किम प्रकार जानी जा सकती है ? आत्म-प्रज्ञा अर्थात् भेद-विज्ञानरूप बुद्धि में ही जानी जा सकती है ।

१२ आत्मविद्या ब्राह्मणों में क्षत्रियों में आई ही—ऐसा समझ है । छान्दो-ग्योपनिषद् (५।३।७) में अपने पुत्र 'श्वेतकेतु' में प्रेरित होकर 'आरणि' 'पंचाल के राजा प्रवाहण' के पास गया । आत्मविद्या देते हुए राजा ने कहा—मैं तुम्हें जो आत्मविद्या और परलोकविद्या दे रहा हूँ, उस पर आज तक क्षत्रियों का अधिकार न्हा है, आज पहली बार वह ब्राह्मणों के पास जा रही है ।

भागवत-११।२।१६ में ऋषभप्रभु को सर्वक्षत्रियों का पूर्वज कहा है । (ऋषभं पाथिव ध्रुष्ट, सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्) यही ऋषभप्रभु नरतक्षेत्र में जैनधर्म के आदिमूर्ति हैं । इन्हीं ने आत्मविद्या का प्रारम्भ हुआ है ।

१३. पट्दर्शन ना जुआ-जुआ मता, माहो माहो नाघा खता,
एक नो थाप्यो वीजो हणो, अन्ययो आगने अधिको गणो ।
अवत्ता ! एज अचारो कुओ, भगटो भागी नो कोई न मुओ ॥१॥
देहाभिमान हतो पा नेर, विद्या भणता वाव्यो नेर,
चर्चा द्रवता अघमण ययो, गुरु धया थी मण मां गयो ।
अनत्ता ! एम हलका थी भारी होय, आत्मज्ञान मूल गो न्योय ॥२॥

—अप्या भयन के जराती पद्य



१. यः आत्मवित् स सर्वविद् ।

जिम्हने आत्मा को जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया ।

२. तरति शोकमात्मविद् ।

—छांदोग्योपनिषद् ७।१।३

जो आत्मा को--अपने वापकी जान नेता है, वह दुःख-सागर को तैर जाता है ।

३. तमेव विद्वान् न विभाय मृत्यो,
आत्मानं धीरमजर युवानम् ।

—अथर्ववेद-१०।८।४४

जो धीर, अजर, अमर, मरु तरण रहनेवाली आत्मा को जानता है, वह कभी मृत्यु से नहीं डरता ।

४. नीतिज्ञा नियतिज्ञा, वेदज्ञा, अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः ।
ब्रह्मज्ञा अपि तन्मया, स्वज्ञानजानिनो विरता ॥

जगत में नीति के जानकार हैं, नियति-ज्ञानद्वार के जानकार हैं, वेदों व अन्य शास्त्रों के जानकार हैं, ब्रह्मज्ञानी भी मित जति हैं, लेकिन आत्मा को जाननेवाले विन्ने हैं ।

५. पठन्ति तनुरो वेदान्, धर्मशास्त्राण्यनेकदा ।

आत्मानं नैव जानन्ति, दुर्यो पाकरमं यथा ॥

—साणक्यनीति १४।१२

जैसे—भोजन में रहता हुआ भी चाटू उसके रस को नहीं जानता, उसी प्रकार बहुत से व्यवित चारों वेद और अनेक धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, फिर भी आत्मा का ज्ञान नहीं कर पाते ।

- ६ श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्य , शृण्वन्तोऽपि बहवो य न दिद्युः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुगिण्ट ।

—कठोपनिषद् २।७

यह आत्मज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म है । बहुतों को तो यह पहने मुनने को भी नहीं मिलता, बहुत में लोग मुन तो लेते हैं, किन्तु कुछ जान नहीं पाते । ऐसे गूढतत्त्व का प्रवक्ता कोई आश्चर्यमय विरला ही होता है, उमको पानेवाला तो कोई कुशल ही होता है और कुशल गुण के उपदेश से कोई विरला ही उसे जान पाता है ।

- ७ जे अज्भत्य जाणइ, से वहिया जाणइ,
जे वहिया जाणइ, मे अज्भत्य जाणइ ।

—आचाराग १।७

जो अध्यात्म को (आत्मा के मूलस्वरूप को) जानता है वह बाह्य को (पुद्गलादि द्रव्यो को) जानता है और जो बाह्य-पदार्थों को जानता है, यह आत्मा के मूलस्वरूप को—ज्ञायात्म को जानता है ।

८. ग याणति अप्पणो वि, फिन्नु अण्णोमि ।

—आचारंगिबुणि-१।१।३

जो आत्मा को नहीं जानता, वह दूसरों को क्या जानेगा ?



१. आत्मरक्षण गुदरत का सबसे पहला कानून है और आत्मबलिदान सीम्यता का सर्वोच्च नियम ।

२. अप्पाट्टु त्वलु मययं रक्त्वयच्चो, नच्चिदिहि सुसमाहिहि ।
अरक्विओ जाइपह उवेड, मुरक्विओ सच्चुहाण मुच्चु ॥

—दशवंशकालिक, सूतिका २ गाथा १६

नव इन्द्रियों को बंध में करके आत्मा की पापों में सदा रक्षा करनी चाहिए ।

३ आपदर्थे धन रक्षेद्, दागान् रक्षेद् धनैरपि ।
आत्मानं नतनं रक्षेद्, दारैरपि धनैरपि ॥

—चाणक्यनीति १।६

आपत्काल के लिए धन की रक्षा करो । धन में स्त्री की रक्षा करो तथा स्त्री एवं धन में भी सदा आत्मा की रक्षा करो ।

४. अतर्हिमं गु दुहेण नदभट्टं ।

—सुप्रकृतांग २।२।३०

आत्महित का अवसर मुश्किल में मिलता है ।

५. अरत्ताण पग्गिच्चण् ।

—सुप्रकृतांग १।१।३२

आत्मरक्षा के लिए संसमर्पण हीकर विचरें ।

६. आत्मरक्षायां कदाचिदपि न प्रमाद्यते ।

—नीतिवाक्यामृत २५।७२

मनुष्य को आत्मरक्षा करने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिए ।

७. त्यजेद्वैक कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुल त्यजेत् ।

ग्राम जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत् ॥

—चाणक्यनीति ३।१०

कुलरक्षा के लिए एक व्यक्ति का, ग्रामरक्षा के लिए एक कुल का और देशरक्षा के लिए एक ग्राम का त्याग कर देना चाहिए । किन्तु आत्मरक्षा के लिए यदि ममूची पृथ्वी का भी त्याग करना पड़े, वह भी कर देना चाहिए ।

८. यज्जीवन्योपकाराय, तद्देहन्यापकारकम् ।

यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम् ॥

—इष्टोपदेश १६

जो कार्य आत्मोपकारी है, वह शरीर का अपकार करनेवाला है एवं जो कार्य शरीरोपकारी है, वह आत्मा का अपकार करनेवाला है ।



१०. (क) अप्पाणुरक्की चरेऽप्यमत्तो ।

—उत्तराध्ययन ४।१०

अपनी आत्मरक्षा करनेवाला अप्रमादी होकर विचरे ।

(ख) तत्रो आयग्क्त्वा पण्णत्ता, त जहा—

धम्मियाए पडिच्चोयणाए पडिचोएत्ता भवइ, नुसिणीए
वा मिया, उट्ठत्ता वा आया एगतमव्वकमेज्जा ।

—स्यानांग ३।३।१७०

तीन प्रकार के आत्मरक्षक गहे हैं—(१) अनुकूल-प्रतिकूल उपमगं करनेवाले अनार्थं पुष्प को धर्मोपदेश देनेवाला, (२) उपदेश देने पर न माने तो गुप्त रहकर ध्यान करनेवाला, (३) ध्यान न कर मके तो विगिमुग्ध अन्य एजान्त ध्यान में चला जानेवाला ।



१. आत्म-सम्मान दुर्गुणों को वश में रखने की पहली लगाम है ।

२. आत्म-सम्मान समस्त गुणों की आधारशिला है ।

—सरजॉन हरशल

३. सब बातों से पहले आत्म-सम्मान है ।

—पीयागोरस

४. यदि आत्म-सम्मान खो दिया तो सब कुछ खो दिया ।

५. सर्वत्र स्वस्यात्मानुमानेन वर्तितुं युक्तम् ।

—विष्णुसर्गशीयनाटिका

सभी स्थितियों में मनुष्य को अपनी आत्मा के अनुमान में ही व्यवहार करना चाहिए ।

६. वित्तात् पुत्र प्रियः पुत्रात्, पिण्डः पिण्डात् तयेन्द्रियम् ।

इन्द्रियाच्च प्रियः प्राणः, प्राणादात्मा पर प्रिय ॥

—पञ्चतन्त्र

धन में पुत्र, पुत्र में दारीर, दारीर में इन्द्रियाँ और इन्द्रियों से प्राण प्यारे हैं । किन्तु आत्मा प्राणों से भी अधिक प्रिय मानी गई है ।

७. जिओ और जी चाहे जैसे जिओ, पर अन्तर-आत्मा को दामिन्दा मत होने दो ।

८. पूत्र में नीचा और कीन होगा ? पर वह भी अपना निम्कार नहीं महती । वास्तव में ही सिर पर चढ़ी है ।

—रामचरित मानस

१०. (क) अप्पागुरक्खी चरेऽप्पमत्तो ।

—उत्तराध्ययन ४।१०

अपनी आत्मरक्षा करनेवाला अप्रमादी होकर विचरे ।

(ख) तओ आयरक्खा पणत्ता, तं जहा—

घम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता भवइ, तुसिणीए
वा मिया, उट्ठत्ता वा आया एगतमवक्कमेज्जा ।

—स्यानांग ३।३।१७०

तीन प्रकार के आत्मरक्षक रहे हैं—(१) अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्ग करनेवाले अनार्य पुरुष को धर्मोपदेश देनेवाला, (२) उपदेश देने पर न माने तो चुप रहकर ध्यान करनेवाला, (३) ध्यान न कर सके तो विधिभूगन अन्य एवान्न स्यान् मे बना जानेवाला ।



१. आत्म-सम्मान दुर्गुणों को बश में रखने की पहली लगाम है ।

२. आत्म-सम्मान समस्त गुणों की आधारशिला है ।

—सरज्ञान हरशल

३. सब बातों से पहले आत्म-सम्मान है ।

—पीयागोरस

४. यदि आत्म-सम्मान खो दिया तो सब कुछ खो दिया ।

५. सर्वत्र स्वस्यात्मानुमानेन वर्तितुं युक्तम् ।

—विक्रमोर्वशीयनाटिका

सभी स्थितियों में मनुष्य को अपनी आत्मा के अनुमान में ही व्यवहार करना चाहिए ।

६. वित्तात् पुत्र. प्रियः पुत्रात्, पिण्ड. पिण्डात् तयेन्द्रियम् ।

इन्द्रियाच्च प्रियः प्राण, प्राणादात्मा पर प्रिय ॥

—पञ्चदशी

धन से पुत्र, पुत्र से शरीर, शरीर से इन्द्रियाँ और इन्द्रियों से प्राण प्यारे हैं । किन्तु आत्मा प्राणों से भी अधिक प्यार माननी गई है ।

७. जिंको और जी चाहे जैसे जिंको, पर अन्तर-आत्मा को दामिन्दा मन होने दो ।

८. पून में नीचा और कौन होगा ? पर वह भी जाना निरुत्तर नहीं घड़ती । नात मानते ही मित्र पर चढ़ती है ।

—रामचरित मानस



१. आत्मविश्वास वीरता की जान है ।

—एमसन

२. आत्मविश्वास जैसा दूनना मित्र नहीं, आत्मविश्वास ही भावी उन्नति का मूल पाया है ।

३. महान कार्य करने के लिए जल्दी चीज है—आत्मविश्वास ।

—जानसन

४. जरा भी धाप जाएँ, आत्मविश्वास माच लेते जाएँ ।

५. जम्हेवमप्या उ हविज्ज निच्छिओ,
चउज्ज देहं न हू घम्ममासणं ।

—दशवंशकालिक-बुलिका १११६

जिनकी आत्मा मुनिश्चित होती है, वह देह को छोड़ देता है पर धर्म-शान्त को नहीं छोड़ता ।

६. जिनमें आत्मविश्वास नहीं है, उनका अन्य चीजों के प्रति विश्वास कैसे उत्पन्न हो सकता है ?

—विशेषात्मक

७. जे अत्तागं अब्भाडवसुड, मे नोर्गं अब्भाडवसुड ।

—आचाराग-१।४।२

जो व्यक्ति आत्मा का जगत्पण (अन्तोत्तर) करता है, वह योरा का उत्पन्न करनेवाला है ।

८. आत्मा का अस्तित्व—ये शब्द पुनरुक्त हैं, कारण आत्मा माने अस्तित्व ही है।

—विनोबा

९. आत्मविकास—

आत्मविकास का पीछा सांसारिक विषयवासना की मूर्ति पर नहीं उगता।

—रामतीर्थ

१०. आत्मशक्ति—

नो निन्द्वेज्ज वीरिय।

—आचारांग ५।३

आत्मशक्ति को कभी मत छिपाओ।



१. छाती पर गोली भेलने से भी आत्मशुद्धि कठिन है ।

—गांधी

२. आत्मशुद्धि की सबसे पहली सीढ़ी यह है कि हम अपनी अशुद्धि को कबूल करें ।

—गांधी

३. आत्मान स्नपयेन्नित्यं, ज्ञाननीरेण चारुणा ।

—तत्त्वामृत

ज्ञानरूप पवित्र जल से आत्मा को नहलाओ ।

आत्मा को नरम सोना बनाओगे, तब ही उसमें दया-शील-सन्तोष आदि हीरे जड़े जायेंगे ।

४. जैसे—पढ़ने-लिखने का, देखने-सुनने का, बोलने-चलने का तथा खाने-पीने का मार्ग गरीबों एवं श्रीमंतों के लिए एक ही होता है । उसी प्रकार आत्म-शुद्धि का मार्ग भी सबके लिए सहसा है ।

५. आत्मशुद्धि का मार्ग—अन्धे, बहरे, गूंगे और लगड़े बनो (पर स्त्री-परधन एवं परदोष मत देखो ! परनिन्दा-स्वप्रशंसा मत सुनो ! कर्कश एवं असत्य मत बोलो तथा दुर्व्यसनी में मत जाओ !) तुम्हारी आत्मा शुद्ध हो जाएगी ।

—'उपदेशसुमनमाला' से संकलित

६. मुद्धी अशुद्धि पञ्चत्ता, नाञ्जो अञ्जं विसोधये ।

—धम्मपद-१२।६

दुद्धि और अधुद्धि अपनी आत्मा में ही होती है, दूसरा कोई किन्हीं अन्य को शुद्ध नहीं कर सकता ।

७ क्वचित् कषायं क्वचन प्रमादे, कदाग्रहै क्वापि च मत्सराद्यै ।
आत्मानमात्मन् । क्लुपीकरोपि, विभेषि धिङ् नो नरकादधर्मा ॥

—अध्यात्म-फलपद्म

कभी कषायों द्वारा, कभी प्रमादों द्वारा, कभी कदाग्रह एवं मत्सरादि दुर्गुणों द्वारा तू अपनी आत्मा को क्लुपित कर रहा है । तुझे धितकार है कि तू नरक में नहीं डरता ।



१. पुरिसा । अत्ताणमेव अभिणिगिञ्ज्भ एवं दुक्खा पमुच्चसि ।

—आचारांग ३१३

हे पुरुष । अपनी आत्मा का ही निग्रह कर । ऐसा करने से ही तू दुःखों से मुक्त होगा ।

२. कसेहि अप्पाण जरेहि अप्पाणं ।

—आचारांग ४१३

आत्मा को कृश करो अर्थात् तन-मन को हल्का करो ।

आत्मा को जीर्ण करो अर्थात् भोगवृत्ति को जर्जर करो ।

३. अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु डुद्दमो ।

अप्पा दतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ॥

वर मे अप्पा दतो, सजमेण तवेण य ।

माहं परेहिं दम्मंतो, वधणोहिं वहेहि य ॥

—उत्तराध्ययन १।१५-१६

विपरीत मार्ग में जानेवाली आत्मा का ही दमन करो, क्योंकि आत्म-दमन बहुत कठिन है । आत्मा का दमन करनेवाला इसलोक-परलोक में मुखी होता है । १५ ।

परवश होकर दूसरों से वध-बन्धनों द्वारा दमन किए जाने की अपेक्षा अपनी इच्छा से समय-ज्ञप द्वारा आत्मा का दमन करना ही मेरे लिये श्रेष्ठ है । १६ ।

४. आत्मानं भावयेन्नित्यं, ज्ञानेन विनयेन च ।

—तत्त्वामृत

आत्मा को ज्ञान और विनय से नदा भावित करने रहना चाहिए ।

५. रागद्वेषो प्रवृत्तिरस्या-न्निवृत्तिरतन्निरोधनम् ।
ती च ब्राह्मार्थसबद्धौ, तस्मात् ताश्च परित्यजेत् ॥

—आत्मानुशासन

राग-द्वेष प्रवृत्तिरूप है एव उनका निरोध करना निवृत्ति है । राग-द्वेष बाह्यवस्तुओं से सम्बन्धित है अतः बाह्यवस्तुओं का परित्याग करना चाहिए ।

६. आत्मा सयमितो येन, तं यम- किं करिष्यति ?

—आपस्तम्बस्मृति

जिम्ने आत्मा का संयम कर लिया उनका यम क्या करेगा ?

७. अन्नान दमयति पंडिता ।

—मज्झिमनिकाय २।३६४

पण्डितजन आत्मा का दमन किया करते हैं ।

८. अनिग्रहृष्पा य रनेसु गिद्धं,
न मूलो छिद्रद्वयघणं से ।

—उत्तराध्ययन २०।३६

आत्मा का निग्रह न करनेवाला और रग में गूढ़ व्यक्ति गर्म-व्यसनो के मूल को नहीं छेद सकता ।

९. अत्ताने चे तथा कथिरा यथाञ्जमनुमासति । --धम्मपद-१२।३
जैसा अनुमान मुझ दूसरो पर करना चाहते हो, वैसा ही अपने ऊपर भी करो ।

१०. अप्यगो य पत्र नामं, कुतो अन्नाणमासिउ ?

—सुद्धताङ्ग १।२।१७

जो अपने पर अनुमान नहीं कर सकता, वह दूसरो पर अनुमान काय कर सकता है ?



१. अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाण, जइत्ता सुहमेहए ॥

—उत्तराध्ययन ६।३५

अपनी आत्मा से ही युद्ध करो । बाह्य युद्ध में क्या पडा है ? आत्मा से आत्मा को जीतकर सुख की वृद्धि करो ।

२. एग जिणेज्ज अप्पाणां, एस से परमो जओ ।

—उत्तराध्ययन ६।३४

एक आत्मा पर ही विजय प्राप्त करो । यह सर्वश्रेष्ठ विजय है ।

३. जे एगं नामे, से बहु नामे ।

—आचाराग १।३।४

जो एक अपने को नमा लेता है, (जीत लेता) है, वह समग्र ससार को नमा लेता है ।

४. सव्वमप्पे जिए जिय ।

—उत्तराध्ययन ६।३६

एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है ।

५. एगे जिए जिया पंच, पच्च जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ता णां, सव्वसत्तू जिणामहं ॥

—उत्तराध्ययन २।३।६

एक को जीत लेने से पाच को जीता, पाच को जीत लेने से दस को और दस को जीतकर मैंने सब शत्रुओं को जीत लिया ।

६. एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इ दियाणि य ।
ते जिणित्तू जहानायं, विहरामि अहं मुणी ।

—उत्तराध्ययन २३।३८

एक आत्मा दुर्जय शत्रु है, इसे जीतने से चार कषाय (क्रोध-मान-माया-लोभ) पर विजय हो जाती है । इन पांचो (आत्मा एव कषाय) पर विजय होने से पाच इन्द्रियाँ भी जीत ली जाती हैं और आत्मा-कषाय-इन्द्रियाँ-इन दस शत्रुओं को जीत लेने पर, हे महामुने । मैं मुक्त-पूर्वक विचर रहा हूँ ।

७. जितात्मासर्वार्यं संयुज्यते ।

—छाण्डोग्यसूत्र १०

जिम्ने आत्मा को जीत लिया है, उसके सब अभीष्ट अर्थसिद्ध हो जाते हैं ।



१. प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत, नरश्चरितमात्मन ।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्य, किन्नु सत्पुरुषैरिति ॥

—शाङ्गधर

मनुष्य को प्रतिदिन अपना आचरण देखना चाहिए और सोचना चाहिए कि मेरा आचरण पशुओं के समान कितना है और सत्पुरुषों के समान कितना है ?

२. के वा अह आसी, के वा इओ चुओ ह्विस्सामि ?

—आचाराग-२।१

मैं कौन था एव यहा से च्यवकर क्या होऊँगा ?

३. जो भायइ अप्पाणां, परमसमाही हवे तस्स ।

—नियमसार१२३

जो अपनी आत्मा का ध्यान करता है, उसे परमसमाधि की प्राप्ति होती है ।

४. जो पुव्वरत्तावररत्तकाले, सपेहए अप्पगमप्पएणां ।
किं मे कड किं च मे किच्चसेस, किं सक्कणिज्ज न समायरामि ॥
किं मे परो पासड किं च अप्पा, किं वाऽहं खलियं न विवज्जयामि ।
इच्चेव सम्म अणुपासमाणो, अणागय नो पडिवव कुज्जा ॥

—दशवैकालिकचूलिका २।१२-१३

साधु पहली और पिछली रात के समय अपनी आत्मा द्वारा आत्मा को देखे कि मैंने क्या-क्या करने योग्य कार्य किए हैं ? क्या-क्या कार्य करने दोष हैं तथा वे कौन-कौन से कार्य हैं, जो कर सकने पर भी नहीं कर रहा हूँ ? १२।

मुझे दूसरे कैसा पाते हैं और मेरी आत्मा कैसा पाती है ? और मैं अपनी किन-किन भूलों को छोड़ रहा हूँ—इस प्रकार अपनी आत्मा को अच्छी तरह देखनेवाले को भविष्य में दोष नहीं लगता । १३।

५. निरामयो निराभासो, निर्विकल्पोऽहमानत ।
निर्विकारो निराकरो, निरवद्योऽहमव्यय ॥

—अपरोक्षानुभूति

मैं निरोग हूँ, निराभास हूँ, निर्विकल्प हूँ, नश्र हूँ, निर्विकार हूँ, निराकार हूँ, पापरहित हूँ और अव्यय-अक्षय-शाश्वत हूँ ।

६. एगो मे सामदो अप्पा, एगणदंसणलक्खणो ।
मेसा मे वहिरा भावा, सव्वे सजोगलक्खणा ॥

—नियमसार १०२

ज्ञान-दर्शनस्वरूप मेरी आत्मा ही शाश्वत तत्त्व है, इसमें निश्र जितने भी (राग-द्वेष-कर्म-शरीर आदि) भाव हैं, वे सब संयोगजन्य वास्तव-भाव हैं, अतः वे मेरे नहीं हैं ।

७. उवओग एव अहमिन्को ।

—नियमसार-३७

मैं (आत्मा) एवमात्र उपायोगमय-ज्ञानमय हूँ ।

८. अह अव्वण वि, अहं अवट्ठण वि ।

—ज्ञाता धर्मकथा-११५

मैं (आत्मा) अक्षय-अश्रितानी हूँ, अवस्थित-स्थिर हूँ ।

६. आदा हु सरणं ।

—मोक्षपाठ-१०५

आत्मा ही मेरा शरण है ।

१०. चिदानन्दरूप. शिवोऽहं शिवोऽहम् ।

—वेदान्तदर्शन

अनन्तज्ञान, अन तआनन्द एवं अनन्तकल्याणरूप शिव में ही हूँ ।

११. यच्च सर्वजनज्ञैयं, सोहमस्मीति चिन्तयेत् ।

—हरितस्मृति

जो सभी प्राणियों द्वारा जानने योग्य है, वह परब्रह्मरूप ईश्वर में ही हूँ ।

१२. यः परमात्मा म एवाहं, योह स परमस्तत ।

अहमेव मयोपास्यो, नास्य कंचिदिति स्थितिः ॥

जो परमात्मा है, वह मैं ही हूँ, जो मैं हूँ, वही परमात्मा है । वस्तुतः मैं ही मेरा उपास्य—उपामना करने योग्य हूँ, दूसरा कोई नहीं ।

१३. अहमेवचित्सरूप-श्चिद्रूपस्याश्रयो मम स एव ।

नान्यत् किमपि जडत्वात्, प्रीति सदृशेषु कल्याणी ॥

—निश्चयपञ्चाशत्

मैं ही चित्त—ज्ञानस्वरूप हूँ, चिद्रूप आत्मा का जो आधार चेतनत्व है, वही मेरा है । अन्य वस्तुएँ जड होने से कोई भी मेरी नहीं है । समान रूपवालो की प्रीति ही कल्याणकारिणी होती है ।

१४. एकोऽह निर्मम शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचर ।

वाह्या संयोगजा भावा, मता सर्वेऽपि सर्वथा ॥

—दृष्टोपदेश २७

मैं एक निर्ममत्व, शुद्ध, ज्ञानी एव योगीन्द्रो के दृष्टि का विषय हूँ, संयोग से उत्पन्न सारे पदार्थ मेरे मे सर्वथा गिन्न—वाह्य हूँ ।

१५. न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधि कुतो व्यथा ।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवतानि पुद्गले ॥

—इष्टोपदेश २६

मेरी मृत्यु ही नहीं, फिर भय कहाँ से ? मेरे रोग ही नहीं, फिर पीड़ा कहाँ से ? न मैं बालक हूँ, न वृद्ध हूँ और न जवान—ये सब अवस्थाएँ पुद्गल में होती हैं, मैं तो आत्मा हूँ ।

१६. पुद्गले पुद्गलास्तृप्ति, यान्त्यात्मा पुनरात्मना ।
परतृप्तिसमारोपो, जानिनस्तन्न युज्यते ॥

—अध्यात्मसार

पुद्गलो में पुद्गल तृप्त होते हैं और आत्मा में आत्मा तृप्त होती है, अतः जानियो को परवस्तु में तृप्त होने का विचार करना योग्य नहीं है ।

१७. तन्मे मनः शिवमंकल्पमस्तु ?

—यजुर्वेद ३५।६

मेरे मन के संकल्प शुभ एवं कल्याणमय हो ।

१८. दुःखे-मुने वैरिणि वन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्त्वबुद्धे, मम मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ ।

—परमात्मज्ञानिका

हे नाथ ! जिसकी ममत्त्व ममत्वबुद्धि नष्ट हो गई है ऐसी मेरा यह मन दुःख-मुग्न में, साथ-मित्रमूढ में, सयोग-वियोग में तथा भयन एव वन में मग्न नमभाव में लीन बना रहे ।

१९. हृन्नाम् हृत्तनाम् हृत्तनाम् ।

—धर्या. भा. १५.२ पादोऽथमंशः

हृत्त पवित्र विचार हैं, पवित्र वपन दीर्घ और पवित्र मम हैं—
अर्थात् हमारे विचार, पञ्चन और वसं पवित्र हैं ।

६. आदा हु सरणं ।

—मोक्षपाहुड-१०५

आत्मा ही मेरा शरण है ।

१०. चिदानन्दरूप शिवोऽहं शिवोऽहम् ।

—वेदान्तदर्शन

अनन्तज्ञान, अन तआनन्द एवं अनन्तकल्याणरूप शिव में ही हूँ ।

११. यच्च सर्वजनैर्ज्ञेय, सोहमस्मीति चिन्तयेत् ।

—हरितस्मृति

जो सभी प्राणियों द्वारा जानने योग्य है, वह परब्रह्मरूप ईश्वर में ही हूँ ।

१२. यः परमात्मा स एवाहं, योह स परमस्तत ।

अहमेव मयोपास्यो, नास्य कंचिदिति स्थितिः ॥

जो परमात्मा है, वह मैं ही हूँ, जो मैं हूँ, वही परमात्मा है । वस्तुतः मैं ही मेरा उपास्य—उपासना करने योग्य हूँ, दूसरा कोई नहीं ।

१३. अहमेवचित्सरूप-श्चिद्रूपस्याश्रयो मम स एव ।

नान्यत् किमपि जडत्वात्, प्रीतिः सदृशेषु कल्याणी ॥

—निश्चयपञ्चाशत्

मैं ही चित्—ज्ञानस्वरूप हूँ, चिद्रूप आत्मा का जो आवार चेतनत्व है, वही मेरा है । अन्य वस्तुएँ जड होने से कोई भी मेरी नहीं है । ममान रूपवालो की प्रीति ही कल्याणकारिणी होती है ।

१४. एकोऽहं निर्मम. शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचर ।

वाह्या. संयोगजा भावा, मता सर्वेऽपि सर्वथा ॥

—दृष्टोपदेश २७

मैं एक निर्ममत्व, शुद्ध, ज्ञानी एवं योगीन्द्रो के दृष्टि का विषय हूँ, संयोग से उत्पन्न सारे पदार्थ मेरे से सर्वथा भिन्न—वाह्य है ।

१५. न मे मृत्युः कुतो भीति-र्न मे व्याधि कुतो व्यथा ।
नाहं बालो न वृद्धोऽह, न युवैतानि पुद्गले ॥

—इष्टोपदेश २६

मेरी मृत्यु ही नहीं, फिर मय कहां से ? मेरे रोग ही नहीं, फिर पीडा कहां मे ? न मैं बालक हूँ, न वृद्ध हूँ और न जवान—ये सब अवस्थाएँ पुद्गल में होती हैं, मैं तो आत्मा हूँ ।

१६. पुद्गले पुद्गलास्तृप्ति, यान्त्यात्मा पुनरात्मना ।
परतृप्तिसमारोपो, ज्ञानिनस्तन्न युज्यते ॥

—अध्यात्मसार

पुद्गलो ने पुद्गल तृप्त होते हैं और आत्मा से आत्मा तृप्त होती है, अतः ज्ञानियो को परवस्तु में तृप्त होने का विचार करना योग्य नहीं है ।

१७. तन्मे मन शिवमकल्पमस्तु ?

—यजुर्वेद ३४।६

मेरे मन के संबन्ध शुन एव कल्याणमय हों ।

१८. दुःखे-सुखे वैरिणि वन्धुवर्गो, योगे वियोगे भवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्त्वबुद्धे, नम मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ !

—परमात्मदाप्रशिक्षा

हे नाथ ! जिसकी समस्त ममत्वबुद्धि नष्ट हो गई है ऐमा मेरा यह मन दुःख-सुख में, शत्रु-मित्रनघृह में, मयोग-वियोग में तथा भवन एव वन में नरा समभाव में लीन बना रहे ।

१९. ह्यस्तनाम् ह्यस्तनाम् ह्यस्तनाम् ।

—यजुः हा. ३५।२ पारमी धर्मग्रन्थ

त्रय पवित्र विचार करें, पवित्र बचन शीर्षों और पवित्र कर्म करें—
अर्थात् हमारो विचार, वचन और कर्म पवित्र हों ।

२०. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा,
भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।

—यजुर्वेद २५।२१

हे यजनीय देवगण ! हम कानों से शुभ ही सुने और आँखों से शुभ ही देखें ।

२१. जीवेम शरदं शतं बुध्येम शरदं शतं,
रोहेम शरदं शतं, पूषेम शरदं शतं,
भवेम शरदं शतं, भूषेम शरदं शतं,
भूयसी शरदं शतात् ॥

—अथर्ववेद १६।६७।२-८

हम सौ और सौ से भी अधिक वर्षों तक जीवन यात्रा करते रहे, ज्ञान की वृद्धि करते रहे । उत्कृष्ट उन्नति प्राप्त करते रहे पुष्टि और दृढता प्राप्त करते रहे । आनन्दमय जीवन व्यतीत करते रहे और समृद्धि, ऐश्वर्य तथा सद्गुणों में अपने आपको मूषित करते रहे ।

२२. उदायुषा स्वायुषोदस्थाम् ।

—यजुर्वेद ४।२८

हम उत्कृष्ट और शुभजीवन के लिए उद्योगशील हो ।

२३. यथा न. सर्वमिज्जगदयक्षमसुमना असत् ।

—यजुर्वेद १६।४

हमारी जीवनचर्या ऐसी हो—जिममें यह सारा जगत् हमें व्याधियों से बचाकर प्रसन्नता देनेवाला बने ।

२४. मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पि ।

—ऋग्वेद ८।४८।१४

हम पर न तो निद्रा हावी हो, और न व्यर्थ की बकवास करनेवाला निन्दक ।



१. चोऽयमात्मा इदममृतम्, इदं ब्रह्म, इदं सर्वम् ।
—गृहदारण्यक उपनिषद्-२।५।६
आत्मा ही अमृत है, आत्मा ही ब्रह्म है, आत्मा ही यह सब कुछ है ।
२. स्वस्मिन् सदभिलाषित्वा-दभीष्टजापकत्वन ।
स्वयं हितप्रयोकृत्या-दात्मैव गुरुरात्मन ॥ —इष्टोपदेश ३४
अपने में मद्भावना करानेवाला होने से, इच्छित वस्तु का ज्ञान कराने-
वाला होने से और स्वयं को हित में लगानेवाला होने-से आत्मा ही
आत्मा का गुरु है ।
३. अयमात्मा स्वयं साक्षात्, गुणरत्नमहाणव ।
सर्वज्ञ सर्वदृक् सार्व, परमेष्ठी निरञ्जन ॥
—ज्ञानार्णव, पृष्ठ २२०
यह आत्मा स्वयं साक्षात् गुणरत्नी रत्नों में भग्य हुआ समुद्र है । यह
सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वत्र गतियाला, परमेश्वर में तीन और सर्वत्रकाय की
कायिमा में रहित (निरञ्जन) है ।
४. न्यादुष्कित्वाय, नभुमा उतायं, तीय किनाऽयं रमवां उतायम् ।
—दृग्देव ६।४७।१
या अप्पात्मरत न्यादिष्ट है, पीटा है, छेज है और ग्गीना है ।
५. मंत्रीन-वीगी में ४०० गुणी मीठी होती है । एत वैजातिन द्रवका
प्रयोग कर रहा था । चीन में भोजन करने बैठा तो एक चीजें मीठी
बगी । (एत समय ३०० गुणी मीठी ही थी) बारहोंक आदि पदार्थों में
में भी ऐसा मिठाई मिल सकता है, जो कि आत्मा की महिमा का
हृदय हो गया ?



१. एगे आया ।

—स्थानांग १।१

आत्माएँ यद्यपि अनन्त हैं, फिर भी चैतन्यगुण की समानता से आत्मा एक है—ऐसे कहा गया है ।

२. अट्ठविहा आया पण्णत्ता, तजहा—

दवियाया, कसायाया, जोगाया, उवओगाया, णाणाया, दसणाया, चरित्ताया वीरियाया ।

—भगवती १२।१

आत्माएँ आठ कही हैं—

(१) द्रव्यआत्मा (२) कषायआत्मा (३) योगआत्मा (४) उपयोग-आत्मा (५) ज्ञानआत्मा (६) दर्शनआत्मा (७) चारित्र्यआत्मा (८) वीर्य-आत्मा ।

३ अन्तर-बाहिरजप्पे, जो वट्ठइ सो हवइ बाहिरप्पा ।

जप्पेसु जो ण वट्ठइ, सो उच्चवइ अतरंगप्पा ॥

—नियमसार १५०

जो अन्तर एव बाहिर के जल्प (वचनविकल्प) में रहता है, वह बाहिरात्मा है और जो किसी भी जल्प में नहीं रहता, वह अन्तरात्मा कहलाता है ।

५. वहिर्भावानतिक्रम्य, यस्यात्मन्यात्मनिश्चय ।
 सोन्तरात्मा मतस्तज्ज्ञे-विभ्रमध्वान्त भास्करे- ॥१॥
 आत्मबुद्धि पारीरादौ, यस्य स्यादात्मविभ्रम ।
 वहिरात्मा न विज्ञेयो, मोहनिद्रास्तचेतनः ॥२॥
 चिद्रूपानन्दमयो, विशेषोपाधिर्वाजिन शुद्धः ।
 अत्यक्षोऽनन्तगुण , परमात्मा कौनित्तस्तज्ज्ञे- ॥३॥

वाह्यभावो से ऊपर उठकर जिसके अन्तर में आत्मा का निश्चय हो गया है, अज्ञान-अन्यकार या नाश करने के लिए मूर्ख के तुल्य ज्ञानी पुरुष उसे अन्तरात्मा कहते हैं । १ ।

जो शरीर में आत्मा की बुद्धि रखता है, मोहनिद्रा के कारण जिसकी चेतना विन्युक्त हो गई है एवं जो आत्मा में नन्देहमीन है, यह ध्ववित्त वहिरात्मा माना जाता है । २ ।

जो ज्ञानरूप आनन्द में मुक्त है, विशेषउपाधि में रहित है, शुद्ध है, इन्द्रियो को जीवनेवाला है तथा अनन्त गुणमम्पन्न है—उसे ज्ञानियो ने परमात्मा कहा है । ३ ।



१. इन्द्रियाणि प्रमाथीनि, हरन्त्यपि यनेर्मन- ।

—श्रीमद्भागवत ७।१२।७

अत्यन्त तंग करनेवाली इन्द्रियां यति-सन्यामी के मन को भी हर लेती हैं अर्थान् विषयो की ओर ले जाती हैं ।

२. जिह्वैकतोऽप्युपकर्षति कर्हितर्षा-
 शिनोऽन्यतस्त्वगुदर श्रवण कुतश्चित् ।
 घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक्क्व च कामशक्ति-
 र्वद्व सात्स्य इव गेहर्षति लुनन्ति ।

जैसे—विभिन्न स्रोतों (सपत्नियों) गृहस्वामी को भिन्न-भिन्न दिशाओं में खींच ले जाती है, वैसे—जीभ अपने स्वामी शरीर को एक ओर खींचती है तो प्यास अपनी ओर ले जाती है । जननेन्द्रिय उसको एक ओर प्रेरित करती है, उमी प्रकार—स्पर्श, पेट और कान उसे दूसरी ओर प्रेरित करते हैं । घ्राणेन्द्रिय उसको भिन्न दिशाओं में खींचती है तो चपल आँखें और कामशक्ति उसको अन्यत्र ही ले जाती हैं ।

३. शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च,
 पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धा ।
 कुरङ्ग—मातङ्ग—पतङ्ग—मीन—
 भृङ्गा नर पञ्चभिरञ्चितः किम् ॥

—विवेकचूड़ामणि ७८

सदृशदि एक-एक इन्द्रियों के विषयो ने बधे हुए मृग, हाथी, पतंग, मध्वती और भ्रमर मृत्यु को प्राप्त होने हैं। तो फिर इन पाँचों से जकड़ा हुआ मनुष्य कैसे बच सकता है ?

४. एक मदन में पाँच का, पृथक्-पृथक् आदेश।
गम्भय चन्दन ! क्यों नहीं, होना केश विधेय ॥

—दोहा-द्विसती

५. उन्द्रियवशवर्ती चतुरङ्गवानपि नश्यति ।

—कोटलीय-अर्थशास्त्र

इन्द्रियों के विषयो में आगमन व्यक्ति चतुरङ्गवान् होता हुआ भी नष्ट हो जाता है।



१. दुर्दंता इदि पच, संसाराए सरीरिण ।
ते चंवे णियमिया सता, एज्जाणाए भवन्ति हि ॥
—ऋषिभाषित १६१
दुर्दान्त, इन्द्रियाँ प्राणियों को संसार में भटकानेवाली हैं एव वे ही समयित होने पर मोक्ष की हेतु बन जाती हैं ।
२. सारथीव नेत्तानि गहेत्वा, इन्द्रियाणि रक्खन्ति पण्डिता ।
—दीर्घनिकाय २।७।१
जिस प्रकार सारथि लगाम पकड़कर रथ के घोड़ों को अपने वश में किये रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी-साधक ज्ञान के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं ।
३. कद अल्फ हमन् जक्का हा ।
—कुरान ६१।६
निश्चय ही उस आदमी का जन्म सफल हुआ, जिसने अपनी इन्द्रियों को पवित्र किया ।
४. इन्द्रियो को वश करना सुज्ञपुरुषो का काम है और उनके वश हो जाना मूर्खों का काम है ।
—एपिकटेट्स
५. वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।
—गीता २।६०
जिम पुरुष के इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है ।

६ जहाँ बुद्धि और भावना का मेल नहीं आता, वहाँ इन्द्रियनिग्रह का बर्भाव है ।

—विनोबा

७ विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना—
 न्तैऽपि स्त्रीमुग्धपकज मुनलित हृष्ट्वैव मोह गता ।
 शाक्यन्त सघृण पयोदधिद्युत ये भुञ्जते मानवा—
 न्नेषामिन्द्रियनिग्रहां यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरे ॥

—भृगुहरि-शृंगारशतक ६५

वेदों वायु, जल और पत्तों को चाकर जीनेवाले विश्वामित्र-पराशर आदि बड़े-बड़े ऋषि भी स्त्रियों के मनोहर मुग्ध-वचन को देखकर मोहित हो गए, तो फिर धी-दूध—दधिभिन्न चावलों या मोहन करनेवाले मनुष्य अपनी इन्द्रियों का दमन कर ही कैसे सकते हैं ? उनमें यदि इन्द्रिय निग्रह हो जाय, तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्र में तैरने लग जाय ।



१. जीयन्ता दुर्जया देहे, रिपवश्चक्षुरादय ।
जितेषु ननु लोकोऽय , तेषु कृत्स्नस्त्वया जित ॥

—फिराताजुनीय ११।३२

अपने शरीर में रहे हुए चक्षु आदि इन्द्रियाँ दुर्जय शत्रु हैं । इन्हें सर्व-प्रथम जीतना चाहिए । इन्हें जीत लेने पर समझो कि तुमने सारा ससार जीत लिया ।

२. सुच्चिचय सूरौ सो चेव पडिओ, तं पसंसिमो निच्चं ।
इन्द्रियचोरेहिं सया, न लुट्टियो जस्स चरणधन ॥

—प्रकरणरत्नाकर

वही शूर है, वही पण्डित है, हम सदा उसी की प्रशंसा करते हैं, जिसका चरण-धन इन्द्रियरूप चोरो द्वारा नहीं लूटा गया ।

३. श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च, भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नर ।
न हृष्यति ग्लायति वा, स विज्ञेयो जितेन्द्रिय ॥

—मनुस्मृति २ ६८

निन्दा-स्तुति सुनकर, सुखद-दुखद वस्त्रादि को छूकर, मुरूप-कुत्प को देखकर, सरस-नीरस वस्तु को खाकर एव सुगन्ध-दुर्गन्ध वस्तु को सूघकर जिसे हर्ष-विषाद नहीं होता, उसे जितेन्द्रिय समझना चाहिए ।



१. कान गुणजनों के गुण एवं गुणों का ज्ञान सुनने के लिए है, स्वप्रमत्ता और परनिन्दा सुनने के लिए नहीं।

—धनमुनि

२. बोला भी बोला, सुणता भी बोला, जो न मुण्यो वृक्षज्ञान !

—मारवाडी भजनमाला

३. काना में ठेठी घान राखी है।

—राजस्थानी बहापत

४. रो भये कान मी जयामो वो सुयातर सुशक वर देते हैं।

—कौशला

५. भारत में १ करोड़ २५ लाख ८० हजार स्त्रीयों बच्चे बहरे हैं।

(डा. घाई वी. कपुर)

—नवभारत टाइम्स, २ फरवरी १९६२

६. बोलो पूछें बोली ने काई राधा होली ने।

—राजस्थानी बहापत

७. पत्तिलकी ! पाए लागु-नी कहे कयामिया है।

पत्तिलकी मजे में हो, या तरे भरीता करने नाम्।

(बंजन हाप में से)

८. बहरे के प्रश्नोत्तर—

बहरे जासकी जास मी है मरे लर, अपने प्रश्नों का उत्तर पढ़कर ही विभी में दाए बहरे है।

एक बहरा अपने बीमार मित्र से मिलने गया किन्तु वह मर चुका था। बहरे ने उपस्थित लोगों से पूछा कि भाईजी किस तरह हैं? लोगो ने कहा—वे तो मर चुके। बहरे ने सोचा, कुछ ठीक बतला रहे हैं, अतः तपाक से कह दिया, बहुत खुशी की बात है, भगवान ने अच्छा किया। लोग हँसने लगे, लेकिन बहरा नहीं समझा और पूछने लगा—किसका इलाज चल रहा है? उपस्थित मजाविये ने कहा—यमराजजी का। बहरा अमुक डाक्टर का नाम समझकर बोल पड़ा—ये डाक्टर बहुत अच्छे हैं, इनके हाथ मे यश भी है। तबीयत नरम-गरम हो तो आप भी इन्ही की दवा लिया करें। (हँसी बढ़ती जा रही थी)

सहजभाव से बहरे ने पुनः प्रश्न किया—भाईजी को पथ्य क्या दिया जाता है? उत्तर मिला—कंकर-पत्थर। इसने दलिया-खिचड़ी आदि समझकर कहा—पथ्य विल्कुल ठीक है। आप लोग भी मौके-मौके इसी का प्रयोग किया करें। अस्तु! भाईजी सोते कहाँ हैं? उत्तर दिया गया—श्मशान मे। बहरे ने कमरा आदि समझकर कह डाला—स्थान सुरक्षित है। बाल-बच्चो को भी यही सुला दिया करें। उपस्थित लोगो के हँसी के मारे पेट दुखने लगे। आखिर ज्यो-त्यो समझाकर बहरे को घर भेजा।



१ आंखें मारे शरीर का दीपक है ।

—गांधी

२ आंख कैमरा है, इसने अच्छी फोटो लीं।

३. आंख-कान में चार आंगन रो फरक ।

● आंत्या देवी परमराम, कद्रे न भूठी होय ।

—राजस्थानी कहावतें

४. जिज्ञा की अपेक्षा नेत्रो को तीव्र रगो ।

—गवैन्टिस

५. मन का भाव बदलते ही आंख बदलती है, आंग देनते !

६. यथा नेत्र तथा शीलं, यथा नासा तथा र्जवम् ।

आंखों के रंग-रंग के अनुसार ही मनुष्य का स्वभाव होता है एवं नाक की मजलता-बदला के अनुसार मनुष्य का हृदय गरम-थक होता है ।

७. तेज्ज्यो धीर अपराधी आंग नहीं मिलते । पहला अपने प्रभाव को दखाना चाहता है और दूसरा अपनी कमजोरी को छिपाता ।

८. गाय पश्यन्ति गन्धेन, वेद्रे पश्यन्ति च द्विजा ।

नारैः पश्यन्ति राजान-दक्षिण्यमितरे जनाः ॥

—पंचतन्त्र ३।१५

गाय म-ध से, राजा गंध से, राजा नृपतिना से और क्षत्रियों को आंखों से दया करते हैं ।

१० जिसकी आँख नहीं उसकी साख नहीं ।

● आँख का काम भौह से नहीं होता ।

—हिन्दी कहावतें

११. न पूसा वामलोचनम् ।

—संस्कृत पद्य

पुरुषों का वामनेत्र फरकना अच्छा नहीं । जबकि स्त्रियों का अच्छा है ।

१२. एक आँख में किसी खोलै र किसी मीचे

—राजस्थानी कहावत

१३. लक्ष्मण का चक्षु संयम —

नाह जानामि केयूरे, नैव जानामि कुण्डले ।

नूपुरे त्वभिजानामि, नित्य पादाभिवन्दनात् ॥

—वाल्मीकिरामायण ६।२२

मैं सीता के केयूर (भुजब्रंड) को नहीं जानता, कुंडल को नहीं जानता, केवल नूपुर को पहचानता हूँ, क्योंकि प्रतिदिन उनके चरणों को ही वन्दना किया करता हूँ । (इस कथन में पता चलता है कि लक्ष्मण का चक्षु-संयम अद्भुत था) ।



१ को वा महान्धो ? मदनातुरो यः ।

—शंकरप्रदतीतरो ६

प्रश्न—बड़ा अन्धा कौन ?

उत्तर—कामातुर व्यक्ति ।

२ रत्तिधा दीदृधा, जच्चधा माण-माय-कोदृधा ।

कामधा लोदृधा, इमे कमेण विमेषधा ॥

१. राध्वान्ध २. दिग्मान्ध, ३. जन्मान्ध, ४. मानान्ध, ५. मायान्ध,
६. प्रोधान्ध, ७. कामान्ध, ८. लोभान्ध-ये प्रमथ-विमेषे अन्धे माने
गए ह्ये ।

३. न पश्यन्ति जन्मान्धः, कामान्धो नैव पश्यति ।

न पश्यन्ति मदोन्मत्ता, अर्थी दोषान् न पश्यन्ति ॥

—घाणव्यतीति ६।८

जन्म का अन्धा नहीं देखता, कामान्ध नहीं देखता, मदोन्मत्त नहीं देखने
तथा याचक योगी को नहीं देखता ।

४ आधा भी आधा गुनांगा भी आधा, जो प्रभु-दर्शन नाय ।

—माणवाही भजनमाला

५. आधी चार्ले मीरगी, पर-पर ग ने दय ।

● आधी धर्म गुना गाव, पापी को घन परदे जाय ।

● आधी नृतं द विमार्पे ।

८. जवान को इतना तेज मत चलने दो कि वह मन से आगे निकल जाय ।

९. नीकली होठे, चढी कोठे ।

—गुजराती कहावत

१०. यह जवां नही, लोहे की शमसीर है,
जो कह दिया, पत्थर की लकीर है ।

● छुरी कातुरी का, तलवार का घाव लगा सो भरा ।
लगा है जखम जवा का, वो रहता है हमेशा हरा ॥

—उर्दू शेर

११. तीन इंच लम्बी जवान छ, फिट ऊंचे आदमी को मार सकती है ।

—जापानी कहावत

१२. लम्बी जवान छोटी जिन्दगी ।

—अरबी कहावत

१३. जीभ नें वरजजे, नीकर दांत पडावशे ।

● जीभ करे छे आल-पपाल, ने खांसडा खाय सिर-कपाल ।

● जीभ सी मण घी खाय पण चीकणी न थाय ।

चमक हजारो वर्ष पाणी माँ रहे पण आग जाय ज नही ।

—गुजराती कहावतें

१४. रसना में तीन इन्द्रियाँ—अन्य इन्द्रियो के गोलको मे एक-एक इन्द्रिय ही होती है, पर जिह्वा मे तीन इन्द्रियाँ (इन्द्रियो की शक्तियाँ) हैं । इसलिए अन्य सब इन्द्रियो की अपेक्षा-जिह्वेन्द्रिय अतिप्रबल है । यह रमनेन्द्रिय है, स्पर्शेन्द्रिय है और वागीन्द्रिय भी है । जिह्वेन्द्रिय से रसास्वादन कर सकने हैं, शीत-उष्ण-मृदु-कठिन स्पर्श को जान सकते हैं और बोल भी मकते हैं । अतः एक रसनेन्द्रिय को जीतने से अन्य सब विषय और इन्द्रियाँ जीती जाती हैं । श्रीमद्भागवत ११।८।२१ मे कहा भी है—

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्, विजितान्येन्द्रियः पुमान् ।

न जयेद् रसनं यावज्जित सर्वं जिने रमे ॥

अन्य दन्द्रियो को जीत लेने पर भी मनुष्य जब तक जिज्ञा को नहीं जीत लेता, तब तक जितेन्द्रिय नहीं हो सकता । जिग्ने रम-म्वाद को जीत लिया, उसने सबको जीत लिया ।

१५ गन्धामी को एक मकन नदी चाय बिनाया करता था । एक दिन चीनी के बरतने मूल में नफत डाल दिया । गन्धामी ने खुदचाप साय भी ली । पता मगने पर भयन दीटना दुखा थाया क्षीर पूदन लगा—बाबाजी ! आपने गारी चाय कैसे पी ली ? बाबाजी ने कहा—भाई ! मोटा लेने वाला पट नो गारा-मीठा करता नहीं, ये नो बोन म दलाल (बीभ) के मूकान है ।

१६ गृगा भी गंगा, बोलता भी गृगा, जो न कर्गो प्रभुगान ।

—मारवाड़ी भजनवाला



७. मन की ताकत—विश्व मे दो बड़ी ताकतें हैं । एक मन की और दूसरी तलवार की । दोनो मे मन की ताकत बड़ी है । इसके द्वारा जो कुछ चाहो, कर सकते हो । देखो ! मुसोलिनी एक गरीब लोहार का लडका था, जिसने इटली की वागडोर हाथ मे ली । हिटलर एक वीर सिपाही था, जो जर्मनी का भाग्यविधाता हो गया । अमेरिका के धनकुवेर राकफेलर सडको पर मामूली चीजे बेचते थे, जो ससार मे सबसे बडे धनी बने । मैं मही कहता हूं कि तुम राजनैतिकसंसार मे नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी, महात्मा गांधी एवं पंडित जवाहरलाल नेहरू बन सकते हो । आर्थिक-विश्व मे हैनरीफोर्ड, राकफेलर और निजाम हैदरावाद बन सकते हो । साहित्यिक-दुनिया मे शेक्सपियर, वर्नाडिशा, कालिदास एवं टैगोर बन सकते हो । साघकजीवन मे महावीर, गौतम, जम्बूकुमार और स्थूलिभद्र बन सकते हो । एक क्षण मे उन्नति-अवनति, पतन-उत्थान एव सुख-दुःख मन के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं ।

—सकलित



१ विचित्ररूपा मलु चित्तवृत्तय ।

—किरातानुनीय

चिन्त की वृत्तियाँ विचित्र रूपवाली होती हैं ।

२. क्षणमानन्दितामेति, क्षणमेनि विषादिनाम ।

क्षण मोह्यत्वमायाति, सर्वन्मिन् नटवन्मन ।

—योगसाहिष्य ११-८३८

मन की स्थिति नट के समान है—यह क्षणभर में आनन्दी, क्षणभर में विषादी एवं क्षणभर में मोह्य—ऐसे रूप बदलता ही रहता है ।

३. चिन्त नदी उभयतो बाहिनी, बहति पृथग्य बहति पाषाण न ।

—शेखरसंनभाष्टक

चित्त नदी दोनों तरफ बहनेवाली है—पुत्र की तरफ और पार की तरफ ।

४. मनो मधुकरो मेघो, मानिनी सरतो मन्तु ।

मर्ततो मा मद्यो मन्मयो, मन्तारा दन नन्दनना ।

—मुसादिनष्टभारतानार, पृष्ठ ६३

मन्तार आदिकाँ—ये रम कीर्ति बलवत् रूप लक्षणाँ हैं—(१) मन (२) मधुकर-भारत (३) मेघ (४) मानिनी-नदी (५) सरत-नन्दन (६) मन्तु-मन्त (७) मर्त-मन्त (८) मन्त-मन्त (९) मन्त-मन्त (१०) मन्त-मन्त ।

५. अविज्ञानेति दन्धो हि, घनान् प्रकृतं मन ।

—किरातानुनीय

दन्धु मन्त की न दन्धाने पर ही वह सब प्रकृत है ।

१. बन्धाय विषयासक्त, मुक्त्यै निर्विषय मनः ।

मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्ध-मोक्षयो ॥

—घाणक्यनीति १३।१२ तथा बृहन्नारदीय पुराण १।४७।४

यह मन ही मनुष्य को बाधने-छोड़नेवाला है। विषयासक्त होने पर बांधता है एव निर्विषयदशा में मुक्त बनाता है।

२. न देहो न च जीवात्मा, नेन्द्रियाणि परतप ।

मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्ध-मोक्षयो ।

—देवीभागवत १।१५

मनुष्यो को बाधने-छोड़ने वाला न शरीर है, न जीवात्मा है और न इन्द्रिया हैं, मुख्यतया मन ही बन्ध-मोक्ष का कारण है।

३. नायं जनो मे सुख-दुःख हेतु, न देवतात्मा-ग्रह-कर्म-काला ।

मनः पर कारणमामनन्ति, ससारचक्र परिवर्तयेद् यत् ।

—श्रीमद्भागवत १।१२३।४३

मेरे सुख-दुःख के कारण न तो ये मनुष्य हैं और न देवता, न शरीर है और न ग्रह-कर्म-काल आदि। मन ही सुख-दुःख का मुख्य कारण माना गया है, क्योंकि यही सारे ससार-चक्र को चला रहा है।

४. निर्मलमन जन सो मोहि पावा,

मोहि कपट छल-छिद्र न भावा ।

—रामचरितमानस

५. मनस्तु सुख-दुःखाना, महतां कारण द्विज !
जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्, सर्वं भवति निर्मलम् ।
भ्रमन् सर्वेषु तीर्थेषु, स्नात्वा-स्नात्वा पुनः-पुनः ,
मनो न निर्मलं यावत्, तावत्सर्वं निरर्थकम् ॥

—देवीभागवत १।१५

हे ब्राह्मण ! मन महान् पुन-पुनो ना कारण है । इसके निर्मल होने पर नव बुद्ध निर्मल हो जाता है । पुनः-पुनः नहा नहा कर नभी तीर्थों में भ्रमण करने पर भी जब तक मन निर्मल नहीं है, तब तक समस्त प्रियार्थं निरर्थक हैं ।

- ६ स्वहृद्वे चित्तो बुद्ध्यः स भवन्ति, नाटे चित्तो घातव्यो यान्ति नाशम् ।

स्वहृद्वे और निचिदान्चित्त में बुद्धिवां उत्पन्न होती है । चित्त के विचारधर्म होने पर भाग्यं नाष्ट होने लग जाती है ।

७. नुम्बे दूदि नुधानियत, नुम्बे विणमयंजगत् ।

—नत्तवित्तास

हृदय वास्त ही तो संसार समूह में सींचा हुआ प्रतीत होता है और यदि यह अज्ञान ही तो संसार उत्पन्न में बना हुआ लगता है ।



१. मनोयोगो वलीयाँश्च, भाषितो भगवन्मते ।

जैनदर्शन में मनोयोग बलवान माना गया है ।

२. वाग् वै मनसो ह्यसीयसी । अपरिमिततरमिव मन परिमिततरैव हि वाक् ।

—शतपथब्राह्मण १।४।७।७

मन से वाणी कही छोटी है, दोनों में मन कही अपरिमित और वाणी अधिक परिमित है ।

३. मनसा वाग् धृता । मनो वा इद पुरस्ताद् वाच ।

—शतपथब्राह्मण ३।२।४।११

वाणी को मन पकड़े रहता है । वाणी से मन पहले आता है ।

४. वस्तु रम्यमरम्यं वा मन संकल्पत ।

—नलविलास

वस्तु अच्छी-बुरी वास्तव में मन की मान्यता के अनुसार ही होती है ।

५. सर्वं स्वमकल्पवशात्लघुर्भवति वा गुरु ।

—योगवाशिष्ठ ३।७०।३०

सब कोई अपने मन के संकल्प से ही छोटे-बड़े बनते हैं ।

६. सिद्धि वा यदि वासिद्धि, चित्तोत्साहो निवेदयेत् ।

कर्म की सिद्धि होगी या असिद्धि—यह मन का उत्साह बता देता है ।

७. मनः कृतं कृतं लोके, न शरीर-कृतं कृतम् ।

—सद्युयोगवशिष्टसार

मन से किया हुआ काम ही वास्तव में किया हुआ है, शरीर से किया हुआ नहीं ।

८. मनमेव कृतं पाप, न चाप्या न च कर्मणा ।

येनैवालिङ्गिता कान्ता, तेनैवालिङ्गिता मुता ॥

मन के भाव में ही पाप माना जाता है, वचन और कर्म से नहीं । पत्नी और पुत्री के आनिमन में भाव की ही निष्प्रता है ।

९. मन के जीने जीत है, मन के हारे हार ।

—हिन्दी पद्य

१०. मन अपनी निज कृति में अपने ही में स्वयं तो नरक और नरक को स्वयं बना गयत्रा है ।

—मित्तल

११. प्रमत्तवत्तम मत्तवि ने मन ही मन मानवी नरक एव सर्वोत्सर्ग स्वयं में जाते की नैयारी रखती । तदवमत्स्य मान अत्तमुत्तं की शत्रु में हम मन ने ही नारक मानवी नरक में जाता है जबकि मन से अनाथ में विनाशराम अमली मत्स्य प्रथम नरक में जाने लगे जाते ।

—पद्मसुनि

१२. शरीर की विचारों भी मुख्यतया मन के पीछे—रेणित मन से बाधने से शरीर-शरीर आदि शरीर बाधों लग जाते हैं । मन संश्लेष होना पर धरती अन्धकार, जीव स्थिर और पर-प्रारम्भ की विचारों सेनी ही जाती है नीचे रखे ही जाते हैं । मन के पीछे ने मन पड़े ही जाते हैं । यह मन कृष्ण ही है । आ मान की गरि बढ़ जाते हैं—वेतन मान ही जाता है । कुछ प्रेम में अन्ध संश्लेष मत्त होते पर मान के स्थानों से नरक बनके लगता है । मन में भाव एक जाते में लोके विचार लाने

हो जाते हैं। कई माताएँ एव पत्नियाँ पुत्र-पति की मृत्यु के समय मनोदुःख से स्तब्ध हो जाती हैं, तब उन्हें रलाने की कोशिश की जाती है, अन्यथा उनके पागल हो जाने की या मर जाने की आशंका रहती है।

—आत्मविकास, पृष्ठ २८८

१३. मन का पानी पर अद्भुत असर—तीन व्यक्तियों ने पौधों पर जल सींचा। एक के सींचे पौधे कुम्हला गये, दूसरे के सींचे हुए लहलहा गये और तीसरे के सींचे हुए मूल रूप में रहे। वैज्ञानिकों द्वारा तीनों के मन का अध्ययन किया गया, तब पता चला कि पानी सींचते समय पहले के मन में क्रूरता-निर्दयता थी, दूसरे के मन में करुणा एव मैत्री भावना थी तथा तीसरे के मन में न क्रूरता थी और न करुणा।

—जैनभारती ७ मई १९७२ के आधार से



१. मन बिना मेलो नहीं, ब्राह्म बिना बेलो नहि, ने गुरु बिना चेलो नहीं ।

- मन बिना नुं मनवुं नकामुं ने हेत बिना नुं हलवुं नकामुं
- मन बिना नुं मनवुं ते भीते भटकावुं ।

—गुजराती कहावते

२. मन मिलिया रा भेला, नहि तो चलो अकेला ।

- मन होय तो मालवे जाय परी ।
- मन बिना रा पावणा, घी घाय के तैन ?
- चकरी मीगण्या देवै पण रो-रो देवै ।
- रोयतो जायें जिको मरगो रो भृगावणी न्यायै ।
- उठाया बुसा गितोत निकार करे ।
- दूक मू गाठपोरा गिस्ता फ दिन जाने ।

—राजस्थानी कहावते

३. व उ मयें वृते लो अरं पण्य ।

—प्रायेश ४।४।४

अरं व उ मयें वृते लो अरं पण्य मे मयें वृते ।

४. सच्चे दिल बिन हो नहीं—सकता अच्छा काम ।
एक काम मालिक करे, एक नौकर करे हराम ॥

—दोहा-सबोह

५. खुशी नो सोदो ते हाथी नो होदो ।

- पराणो प्रीति थाय नहिं, वाव्या कणवीए गाम वसे नहिं,
ने जवरदस्ती नो सोदो नभे नहिं ।
- मारी ने मुसलमान करवो तेमां लाभ नहिं ।
- सासू सिखामण दे अने वहू कीडियो गणे ।
- वात करवा माडे, त्यारे तारा गणे ।

—गुजराती कहावतें

६. मन चगा तो कठौती मे गगा ।

—संत रैवोस

७. मन पक्का तो पखाने मे मक्का ।

—हिन्दी कहावत

८. फेन्सी पासेथ व्यूटी ?

—अंग्रेजी कहावत

मन मिले उसकी जाति क्या पूछना ?

९. मनरा लाड खावणा तो ओछा क्यू खावणा ?

—राजस्थानी कहावत

१०. मुनना सवकी और करना अपने मनकी ।

—हिन्दी कहावत



१. नित्तमेतदमनीकरणीयम् ।
एत नित्त को निर्मल बनाना चाहिए ।
२. दिल साफ कमूर साफ ।

—हिन्दी बहायत

३. मनः शुद्धयैव शुद्धि न्याद्, देहिना नात्र संगयः ।
वृथा तद्व्यतिरेकेण, कायम्यैव कदर्शनम् ॥

—ज्ञानानन्द पृष्ठ २३४

इसमें कोई संदेह नहीं कि मन की शुद्धि ही वास्तविक शुद्धि है । इसके बिना ये मन शरीर को तृप्त देना व्यर्थ है ।

४. नीर्घानामपि तन्नीधं, विशुद्धिर्मनसः परा ।

—सुन्दरपुराण-वामोत्तर-अ ६

मन की पराशक्ति सभी नीधों में परा तथा है ।

५. निज चक्षुःश्रुत्यादिषु तद्वज्रे अक्षयज्जन्त ।
अत्र तज्जाग्रे गच्छा, यत्र दिशुः शैलज्जन्त ॥

—सुन्दरपुराण

निर्मल मन बिना जब से शुरू की जाए शुद्ध मनकार की परमेश्वर की सेवा है और जब जगत् के ज्ञान के साथ ही शक्ति मिले है ।

६. गित्तशुद्धि के चार समुच्चय—

(१) देहात्मोक्त—शरीर के अन्तर्गत का नियंत्रण ।

- (२) वेदनावलोकन—साता-असाता का विचार ।
- (५) चित्तावलोकन—चित्त सकाम-समोह-असमाधियुक्त है या इससे विपरीत—इस विषय का विचार ।
- (४) मनोवृत्त्यवलोकन—खाली तालाब आदि में जीव-जन्तुवत् मन में टुर्भाव आ जाते हैं, उनका ध्यान रखना ।

—महात्मा बुद्ध

७. मन का निरीक्षण आवश्यक—

- (क) आइने में चेहरा देखकर एक नजर मन पर भी डाल ।
- (ख) तू आइने के बदले दिल में मुंह देख ताकि अन्दर का हाल दीखे ।
- (ग) एक टोपी के पीछे दो चेहरे मत लिये फिरो ।
- (घ) अच्छे चेहरे के पीछे भद्दा दिल भी हो सकता है ।

—हिन्दी कहावतें



१. भर गई पूछ रोमात करे, पशुना का भग्ना बाकी है ।
बाहर-बाहर तुम नंबर चुके, मन अभी नंबरना बाकी है ॥
—दिनकर
२. मस्जिद तो बत्ताली पल भर में, उमा की हुरारतवाली ने ।
यह मन तो पुगना पापी है, क्यों में नमाजी बन न मया ॥
—दुष्काम
३. घुंटे नेने कने घुंटी, घुंटा जिला रदं. नमम् ।
घुंटाणि विरायूणि, घुंटा नान्तर्गत मन ॥
नेत्र दिन गण, हार दिन गण, दासो महिा जीम विम गदं, क्षीर
विश्रियो मे आयु मो विह गई वेरिा जगमंन अभी एक नरी पिगा ।
४. मथिन राई मे नुन्न, भग जाता है हुन ।
कौने निरने बगर हा, राई में भी हुन ॥
बनन-किया के पाग नी. मर कररा निराय ।
जो मन में भी पाव हो, कौन करे उनाय ।
—रोहा पंडीत
५. ह्र में शिना अधि रासो गिना, रदो या भावा बनां मभव टागा
नी नदिह उदाग्या रग्या । हरी प्रवाद मन मे शिना अधि रास
होना, उकने नी अधिा रमंन पाव नी वास रग्या होनी ।

१. वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च, नियमाश्च तपासि च ।

न विप्रदुष्टभावस्य, सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

—मनुस्मृति २।६७

जिसका मन अपवित्र है, उम मनुष्य के वेदाध्ययन, दान, यज्ञ, नियम और तप कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते ।

२. किं जिनेन्द्रेण रागाद्यैर्यदि स्व कलुपं मनः ?

—योगसार

यदि हमारा मन रागादिदोषों से कलुपित है तो जिनेन्द्रभगवान भी क्या कर सकते हैं ?

३. मन मँले सब किछु मँला, तनि धोतँ मन हच्छा न होई ।

—गुरुप्रन्यसाहिव, महल्ला ३

४. जैसे-चिकनी पट्टी पर लिखा नहीं जाता, उसी प्रकार मन को शुद्ध बनाए बिना उस पर उपदेश का असर नहीं होता ।

५. अगर मन है मँला न तन को सवार ,
पिया है जो अन्धा तो कैसा शृगार ?

६. पटुठचित्तो य चिणाइ कम्मं ।

—उत्तराध्ययन ३२।५६

दुष्ट चित्त कर्मों का उपार्जन करता है ।



१. पतित पशुरपि हूये, निःसर्तुं चरणचालन कुम्भे ।
 धिक् न्वा नित्त ! भवाद्ये-रिच्छामपि नो विभर्षि नि मर्तुम् ।
 तुम्हें मैं गिरा हुआ पशु भी उनमें मैं निनलने के लिए पद-पदाज कर रहा
 है, किन्तु दे नित्त ! तुम्हें धिक्कार है कि न भयनापर मैं नित्तने की
 इच्छा भी नहीं करता ।
२. निनागुप्त पहनी चेतता, निच ! तूं पहनी चेत ।
 इण वन्धा रे कवने, रात्रे वृत्ती रंत ॥
 निनागुप्त पहनी चेतता, निच ! तूं पहनी चेत ।
 इण वन्धा रे कवने, रात्रे वृत्ती रंत ॥
३. मन कुत्रोजोगः सपदि वद मे सत्यपदवी,
 नरे वा नार्था वा गमनमुनयदाप्यनुचितम् ।
 यतस्ते कवीश्वर्य महदभिगतो हान्व्यतश्चो,
 जनन्तोमे मागान्तरमनुसर हि ब्रह्मपदणीम् ॥
 क्षरे मन ! तू कहाँ जाने का प्रयास कर रहा है ? तुम्हें मैं मेरी सत्यपदवी
 नरे-थोनों ही उपाह जाकर नप नर जोड़े के कारण तू हान्व्य का पाप बना
 है, पर यहाँ जाता मेरे लिए अनुचित है, पर यहाँ जाकर मैं न ब्रह्मपद-
 तुम्हें ब्रह्म नपवान का अनुसरण करना चाहिए ।



१. वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च, नियमाश्च तपासि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य, सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

—मनुस्मृति २।६७

जिसका मन अपवित्र है, उम मनुष्य के वेदाध्ययन, दान, यज्ञ, नियम और तप कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते ।

२. किं जिनेन्द्रेण रागाद्यैर्यदि स्व क्लुप मनः ?

—योगसार

यदि हमारा मन रागादिदोषो से क्लुपित है तो जिनेन्द्रभगवान भी क्या कर सकते हैं ?

३. मन मैले सब किछु मैला, तनि धोतै मन हच्छा न होई ।

—गुरुग्रन्थसाहिब, महल्ला ३

४. जैसे-चिकनी पट्टी पर लिखा नहीं जाता, उसी प्रकार मन को शुद्ध बनाए बिना उस पर उपदेश का असर नहीं होता ।

५. अगर मन है मैला न तन को सवार,
पिया है जो अन्धा तो कैसा शृगार ?

- ६ पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्म ।

—उत्तराध्ययन ३।५६

दुष्ट चित्त कर्मों का उपार्जन करता है ।



१. पतित पशुर्गपि कूपे, निःसर्तुं चरणचानन कुम्ते ।
धिक् त्वां चित्त ! भवाद्ये-रिच्छामसि नो विभपि नि गतुंम् ।
कुंठ में गिरा हुआ पशु भी उगमें ने निचने के लिए पग-पछाछा करता है, किंतु रे चित्त ! तुझे धिक्कार है कि तू भयगात्र ने निचने की इच्छा भी नहीं करता ।
२. निरागुत्त पहली चेतता, चित्त ! तू पहली चेत ।
उण धन्वा रे जारे, रातं वतूनी रंत ॥
३. मन कुशोद्योगः गपदि चद मे गम्यपदवी,
नरे वा नार्या वा गमनमुभवप्राप्पनुत्तितम् ।
गमन्ते बलीवन्द मकुदपिगतो हान्यपदवी,
जनन्तोमे मागात्त्यमनुत्तर हि द्रष्टव्यपदवीम् ॥
अरे मन ! तू पहली जाने का प्रयत्न कर रहा है ? पुण्यो न वा मित्रो मे-दोषो ही जगत् जकर नपु मर होने के कारण तू हान्य का दात बना है, अब कहां जाना मेरे लिए क्षुणित है, अतः गमना मे न जाकर तुझे द्रष्टव्य भवमान का अनुभव करना चाहिए ।



१. मनोरोधः पर ध्यानं, तत्कर्मक्षयसाधनम् ।

—महाभारत

मन का निरोध करना उत्कृष्ट ध्यान है एव कर्मक्षय का साधन है ।

२. चित्तस्स दमथो साधु, चित्तं दंतं सुखावह ।

—धम्मपद ३५

साधुओ ! चित्त का दमन करो ! दमन किया हुआ चित्त सुख देनेवाला होता है ।

३. हस्तं हस्तेन सपीड्य, दन्तं दन्तान् विचूर्ण्य च ।

अङ्गान्यङ्गैः समाक्रम्य, जयेदादी स्वकं मनः ।

—मुक्तिकोपनिषद् २।५।६

आत्मार्थिपुरुष को चाहिए कि वह हाथ से हाथ को पीड़ित करके, दातो से दाँतो को पीसते हुए और समस्त शरीर से तत्पर होकर सर्व-प्रथम अपने मन को जीत ले ।

४. न चञ्चलमनोऽनुभ्रामयेत् ।

—चरकसहिता २६।२७

चञ्चल मन को स्वच्छन्दरूप से न भटकाने ।

५. हे साधो ! मन का मान तियागउ,

काम-क्रोध-संगति दुर्जन की, ताते अह-निशि भागउ ।

—गुरुनानक

६. माथो मूडयो मन ने मूंड, नहि तो पडती नरकरी कूंड ।

—राजस्थानी कहावत

७. केनन कहाँ विगारिया, जो मूंडे सौ वार ।

मन को काहे न मूंडिया, जामे विषय-विकार ॥

● तन को जोगी सब करे, मन को विरला कोय ।
सहजे सधविधि पाइए, जो मन जोगी होय ॥

—कवीर

८. अरे मुधारक । जगत की, चिन्ता मत कर वार ।

तेरा मन ही जगत है, पहले इसे मुधार ॥

९. मन लोभी मन लालची, मन चञ्चल मन चोर ।

मन के मने न चानिए, पलक-पलक मन और ॥

१०. मन के मने न भानिये, मन के मते हजार ।

जो यह गुड मांगे कबो, दोजे नमक उधार ॥

—कवीर

११. हियो हव जो हाथ, कुनही केता भिनो ।

चन्दन बुजनां साथ, कानो न नामे 'किमनिया' ।

—तोरठामंघह

१२. जो 'गहीम' मन हाथ है, मगसा बहु बिन जाय ।

जल में ज्यो छाया परी, काया भीजत नांहि ॥

१३. मन अन्तर श्रोने नय कोटी, मन गाने बिन भगति न होटी ।

—कवीर

१४. मन गाने धानु मरिजाई, बिन मूजे कने हरि पाई ।

—गुरुप्रण्यमाह्विब मरुन्ता ३

१५. मन जाई तो ज्ञान दे, दृष्टान्त राम मरीर ।

गंभे प्रिया ज्ञान के, बिस विध निजले तीर ॥



१. चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
 तस्याह निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥
 असंशयं महाबाहो ! मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
 अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

—गीता अध्याय ६

अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण ! मन चंचल है, हैरान करनेवाला है एवं दृढवली है । उसका निग्रह वायुवत् अत्यन्त दुष्कर है । ३४ ।
 कृष्ण बोले—हे अर्जुन ! नि सन्देह—यह मन चंचल एव दुर्निग्रह है ।
 इसे अभ्यास तथा वैराग्य से पकडा जा सकता है । ३५ ।

२. अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।

—पातञ्जलयोगदर्शन १।१२

अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन का निरोध होता है ।

३. मन की औपधि अभ्यास है, विश्राम नहीं ।

—पोप

४. सेट वीन्ड्स टू यूअर जील वाई डिसक्रीशन ।

—अंग्रेजी कहावत

मन के घोड़े के विवेक की लगाम ।

५. वही सह सवारों में पाता है नाम,
 जो कावू में घोड़े की रखे लगाम ।

—उद्देशर

१. श्रोत्रं त्वक्-चक्षुषी जिह्वा, नासिका चैव पञ्चमी ।
 पायूपस्थं हस्तपाद वाक् चैव दशमी स्मृता ॥ ६० ॥
 एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुरोर्नोभयात्मकम् ।
 यस्मिन् जिते जितावेतौ, भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ६१ ॥

—मनुस्मृति अध्याय २

१. कान, २. चमडी, ३. नेत्र, ४. जिह्वा, ५. नासिका, ६. पायु-गुदा
 ७ उपस्थ-मूत्रेन्द्रिय, ८ हाथ, ९. पैर, १०. वाणी-ये दश इन्द्रियाँ हैं ।
 पहली पांच बुद्धीन्द्रियाँ एव दूसरी पाँच कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं ।
 ग्यारहवाँ मन है-यह अपने स्वभाव से ही उभयात्मक है अर्थात् दोनो ही
 इन्द्रियगणो का-प्रवर्तक है । इस मन को जीत लेने पर दोनो ही प्रकार
 के इन्द्रियगण जीत लिए जाते हैं ।

२. मरणगुत्तयाएण जीवे एगगं जणइ ।
 एगगचित्तेणं जीवे संजमाराहए भवइ ॥

—उत्तराध्ययन २६।५३

मन का गोपन करने से जीव धर्म में एकाग्रता प्राप्त करता है ।
 एकाग्रचित्त जीव मनोगुप्त होकर समय का आराधक होता है ।

३. अध्यात्म विद्याधिगमः, साधुसंगम एव च ,
 वासनासंप्रित्यागः, प्राणस्पन्दनिरोधनम् ।
 एतास्ना युक्तय पुष्टा , प्राणस्पन्दजये किल ॥

—योगवाशिष्ठ ४।१।२७

अध्यात्मविद्या की जानकारी, सामुदायिक, सामाजिकों का परिचय और प्राणरक्षक-निरोध अध्यात्म मन की चञ्चलता का रोक्ना—ये सभी विद्याएँ (युक्तियों) मन को जीत लेने पर ही निश्चितरूप से सात्त्विक की घोषणा करनेवाली होती हैं ।

४. ज्ञान स्वधर्मो नियमो यमश्च, श्रुत च कर्माणि च सद्ग्रन्थानि ।
नर्वे मर्तोनिगृह्यक्षणात्ताः, परो हि योगो मनसि नमाधि ।

—श्रीमद्भागवत ११।२६।४६

ज्ञान, अध्यात्म धर्म का पालन नियम, यम, वेदाध्ययन, सत्कर्म, एवं सद्ग्रन्थों आदि श्रुतों का अनुशीलन-इन सबका अंगिम कर्म यही है कि मन का नियंत्रण हो जाए । क्योंकि मन ही नमाधि ही सर्वोत्कृष्ट योग है ।

५. यम यथा यम्य नमादिषु स्यात्, हि नम्य कार्यं नियमैर्यमंश्च ।
एव मनो नम्य च दृष्टिकर्तुं किं तस्य कार्यं नियमैर्यमंश्च ।

—अध्यात्मसूत्रम्

नियमों का मन यथा में ही नमादियुक्त है, उन्हीं नियमों एवं यमों से यम्य ? तथा नियमों मन दृष्टे विनाशों से प्रसन्न है, उन्हीं भी नियमों और यमों से यम्य ?

६. ज्ञानमायता मनो यम्य न एव सुखमश्नुते ।

—रत्नसूत्रम् १३।१३

जहाँ ज्ञानसे मन को यम्य न हो यम्य से यम्य तिरा है ।

७. मनो विज्ञाना यमनो विज्ञाना ।

मन का जीतना यम्य ज्ञान से ही जीतना है ।

८. यम यो नो विज्ञाने, ज्ञानस्यै, यद्वदन्ति यमो न शोचते ।

जहाँ मन को यम्य ज्ञान से ही यम्य, यो यद्वदन्ति यमो न शोचते ॥

९. ये ज्ञानमायता मनो यम्य न एव सुखमश्नुते ।

जहाँ ज्ञानसे मन को यम्य न हो यम्य से यम्य तिरा है ।

यम यो नो विज्ञाने, यमो न शोचते ।

जहाँ मन को यम्य ज्ञान से ही यम्य, यमो न शोचते ॥

—रत्नसूत्रम्



१ दादी-पोती जा रही थी। थकावट के कारण पोती दादी को हैरान करने लगी, इतने में एक ऊँटवाला आगया। बुढ़िया ने उसमें कहा कि इसे थोड़ी दूर ऊँट पर चढाले। उसने कहा—मैं तो जवान लडकी को नहीं चढाता। आगे जा कर ऊँटवाने का दिल विगडा। वह कुछ दूर जाकर रास्ते में खड़ा रह गया। इधर बुढ़िया के मन में विचार आया कि यदि लडकी को लेकर वह भाग जाता, तो फिर मैं क्या करती? यो सोचती हुई बुढ़िया कुछ आगे चली। इतने में ऊँटवाला आ मिला और कहने लगा—बूढ़ी माई! तेरी पोती को चढा दे ऊँट पर। बुढ़िया ने कहा—जो तुम्हें कह गया वह मुझे भी कह गया, चला जा चुपचाप।

२. नेमीचन्दजी मोदी की बर्मपत्नी अपने पीहर किशनगढ में थी। रात को वारह वजे पुत्र (सज्जनमिह) का जन्म हुआ। वह बेहोश हो गई। लगभग डेढ घण्टे बाद होश आया, तब उसने अपने पति के कथनानुसार दृढ सकल्प किया कि पुनजन्म की खबर पतिदेव को अभी की अभी मिले।

मोदीजी इन्दौर में थे एवं गहरी नीद में सो रहे थे। उनकी अचानक आँखें खुलीं और आवाज-सी गुनाई दी कि पुत्र का जन्म हो गया। घडी देखी तो पीने दो वज रहे थे। दो दिन बाद किसनगढ से पत्र आया, उसमें पुत्र-जन्म का समय वारह वजे लिखा था। मोदीजी खुश हुए, किन्तु पीने दो घण्टे का फर्क क्यों रहा? इस गशय में

निमग्न थे। एत-उठ महीने बाद जब मज्जन की मा पीठर में इन्दी-
वार्ड, तब पता लगा कि पाने दो पटा तक यह प्रयोग थी।

३. कम के मनोवैज्ञानिक ने १०० मिल्मीमीटर दूर रहकर एक मनुष्य को
मन में निर्देश दिया कि सो जाओ। वस, निर्दिष्ट व्यक्ति पैछ पैछा
तत्काल मेंट गया एवं उमे नीर जा गयी। कुछ समय के बाद निर्देशक
ने कहा—उठ जाओ! कहने की ही हीनी थी, मारा हुआ व्यक्ति
अचानक उठ पटा हुआ। निगधरती मनुष्य के (जो इस प्रयोग की
सत्यता की परामने के लिए गया गया था) पूछा। तुम नीरे परो पीर
शोक कर उठे सरो? उत्तर मिला कि मुझे तिमो ने कहा—तुम सो
जाओ। फिर मुझे आत्म्य जाने लगा एवं मैं नी गया। सोने सोने पुन-
आवाज धार्ड कि—उठ जाओ जरी! वस, मैं उठ गया।

—श्रुति के आधार पर



विलपावर-दृढसंकल्प

१. वीर नेपोलियन शरीर मे दुर्बल था, लेकिन विलपावर से सारे यूरोप मे तहलका मचा दिया। उसने कहा था—“इम्पोसिबल इज दी वर्ड फाउण्ड ओनली इन दी डिक्सनरी ऑफ फूल्म” (Impossible is the word found only in the dictionary of fools) असम्भव शब्द केवल मूर्खों के शब्दकोष में मिलता है।
२. पेगम्बर मुहम्मद अरब के जाहिल आदमियों मे (जो उन्हें मारने को तैयार थे) “खुदा एक है” यह उपदेश देते थे। स्वामी दयानन्द मस्जिदों मे ठहर कर इस्लामी मत का खण्डन करते थे। भगवान महावीर हिंसात्मक यज्ञ-यागों के खिलाफ निर्भयतापूर्वक अहिंसाधर्म का मडन करते थे। इन सभी का मुख्यसहायक विलपावर ही था। और तो क्या? महात्मा गांधी ने विलपावर से भारत जैसे महान देश को आजाद बना दिया। एक कवि ने कहा है—व्हेयर देयर इज ए विल, देयर इज ए वे (Where there is a will, there is a way) अर्थात् मनोबल चाहे जहाँ से मार्ग निकाल सकता है।
३. नाहौर के सर गंगाराम भूल मे इजीनियर की कुर्मी पर बैठ गये। इजीनियर अट-शट बकने लगा। उन्होंने इजीनियर बनने का दृढ संकल्प कर लिया एव एकनम्बर इजिनियर बने।

—मध्ययन के आधार पर



१. इन्द्रान का मन एक दान है, आत्मा नाली है । चतुर माची को चाटिए कि वह अपने बाग में अरुणें पत्त-फूल तथा-सूक्ष्म बादि लगाकर उतरी जान बटाये ।
२. यह मन एक तन्वाट की दुवान है और आत्मा तन्वाट है । कुशल-हलवाट को चाटिए कि वह अपनी दूतान में बगनी पी-पीनी-आटा बादि को व्यवहार में लाए ।
३. यह मन एक बन्ना है और आत्मा इनका बाप है । बाप का पत्र है कि यह अपने बन्ने का कुछ लाट-लाट कर एवं उमे मागे पीने-पकवाने के लिए अरु द्रे माटे पसार दे, किन्तु यदि बन्ना बदमासी करने लग, तो उनके पत्त-तवाने में भी मरोष न बदे ।
४. यह मन एक नीप है और शरीर इनकी बाची है । केवल शरीर पर जाती माग्ने ने माट नहीं मगा ।
५. यह मन एक उम बासा है । इसमें अनुद्ध-विचार एवं पतन वासवीति-तेजाब आदि मन आन हो ।
६. यह मन एक दृष्टि है इस माग्ना पीपी जगदा मग्ना बरेगा । अशरीर में दृष्टि प्राप्त कर क उम पदों के अर्थ को सूत्र से दृष्टि कर का जगद मग्ना दितो । दृष्टि पीपी मग्ना । एतसी (२) दृष्टि बग्ना मग्ना ।
७. यह मन एक वासुदेव नाम मग्ना की विद्या से विद्यय प्राप्त । यह शीपी ही मग्ना है । इस मग्ना मग्ना की विद्या से शीपी मग्ना । शीपी आदि विद्यय शरीर पर अग्ना ।

८. यह मन आत्मा रूपी नाव का लगर है। जब तक यह ससार की मोह-माया में बधा रहेगा, आत्मा ससारसमुद्र से पार न हो सकेगी।
९. समुद्र में तूफान आने के समय जलचर-जंतु समुद्र तल में जा बैठते हैं। यह मन समुद्र है, इसमें तूफान आए, तब जानियों को चाहिए कि वे आत्मध्यान में रमण करें।
१०. यह मन एक चलती हुई चक्की है, इसे यदि शुभविचाररूप धान्य न मिला, तो यह विकारी बनकर स्वयं को पीस डालेगी। एक अंग्रेज ने कहा भी है—
Empty mind is the devil's work shop.
एम्पटी माइण्ड इज दी डेविल्ज वर्कशाप।
खाली मस्तिष्क शैतान की कर्मशाला है।
११. यह मन एक दर्पण है इस पर क्रोध की फूँक लगते ही यह धु धला हो जाएगा।
१२. जिनदास का घोड़ा—चम्पानगरी में जिनदास श्रावक था। राज्य ऋद्धि की वृद्धि करनेवाला राजा का घोड़ा उसके यहाँ रखा हुआ था। जिनदास उस पर चढ़कर साधुओं के दर्शन करने जाया करता था। दर्शन करके तालाब तक घूमने जाता, वहाँ से आकर साधुओं के यहाँ सामायिक करता और फिर अपने घर आ जाता। प्रतिदिन इस प्रकार करने से घोड़ा इतना अम्यस्त हो गया कि तीनों जगह अपने आप रुक जाता। शत्रु राजा ने उस घोड़े को प्राप्त करने के लिए एक घूर्त को भेजा। उसने जैनश्रावक का ढोंग करके जिनदास को अत्यन्त प्रभावित कर लिया। एक दिन रात के समय इसे घोड़े की रगवानी सोंपकर जिनदास किसी आवश्यक कार्य के लिए बाहर चला गया। पीछे घूर्त के मनचाहे हो गए। वह घोड़े पर सवार होकर भागा। घोड़ा साधुओं के स्थान पर आ ठहरा। फिर दौड़ा तो तालाब पर जा पहुँचा। फिर चाबुक मारा तो साधुओं के स्थान पर आ गया। फिर एड़ी

८. यह मन आत्मा रूपी नाव का लगर है। जब तक यह ससार की मोह-माया में बंधा रहेगा, आत्मा ससारसमुद्र से पार न हो सकेगी।
९. समुद्र में तूफान आने के समय जलचर-जंतु समुद्र तल में जा बैठते हैं। यह मन समुद्र है, इसमें तूफान आए, तब ज्ञानियों को चाहिए कि वे आत्मध्यान में रमण करें।
१०. यह मन एक चलती हुई चक्की है, इसे यदि शुभविचाररूप घान्य न मिला, तो यह विकारी बनकर स्वयं को पीस डालेगी। एक अंग्रेज ने कहा भी है—
Empty mind is the devil's work shop.
एम्पटी माइण्ड इज दी डेविल्ज वर्कशाप।
खाली मस्तिष्क शैतान की कर्मशाला है।
११. यह मन एक दर्पण है इस पर क्रोध की फूँक लगते ही यह धुंधला हो जाएगा।
१२. जिनदास का घोड़ा—चम्पानगरी में जिनदास श्रावक था। राज्य ऋद्धि की वृद्धि करनेवाला राजा का घोड़ा उसके यहाँ रखा हुआ था। जिनदास उस पर चढ़कर साधुओं के दर्शन करने जाया करता था। दर्शन करके तालाब तक घूमने जाता, वहाँ से आकर साधुओं के यहाँ सामायिक करता और फिर अपने घर आ जाता। प्रतिदिन इस प्रकार करने से घोड़ा इतना अम्यस्त हो गया कि तीनो जगह अपने आप रुक जाता। शत्रु राजा ने उस घोड़े को प्राप्त करने के लिए एक घूर्त को भेजा। उसने जैनश्रावक का ढोंग करके जिनदास को अत्यन्त प्रभावित कर लिया। एक दिन रात के समय इसे घोड़े की रखवाली सौंपकर जिनदास किसी आवश्यक कार्य के लिए बाहर चला गया। पीछे घूर्त के मनचाहे हो गए। वह घोड़े पर सवार होकर भागा। घोड़ा साधुओं के स्थान पर आ ठहरेगा। फिर दौटाया तो तालाब पर जा पहुँचा। फिर चाबुक मारा तो साधुओं के स्थान पर आ गया। फिर एड़ी

ग्रन्थ-सूची :

- | | |
|--|------------------------------|
| १. अगुत्तरनिकाय | १६. आत्मविकास |
| २. अत्रिसहिता | २०. आत्मानुशासन |
| ३. अथर्ववेद | २१. आपस्तम्बस्मृति |
| ४. अध्यात्मकल्पद्रुम | २२. आवश्यकनिर्युक्ति |
| ५. अन्ययोगव्यवच्छेद—
द्वान्त्रिशिका | २३. आवश्यकसूत्र |
| ६. अपरोक्षानुभूति | २४. इतिहासतिमिरनाशक |
| ७. अभिज्ञानशाकुन्तल
(शाकुन्तल) | २५. इष्टोपदेश |
| ८. अभिधानचिन्तामणि
(हेमकोष) | २६. इस्लामधर्म क्या कहता है? |
| ९. अभिधानराजेन्द्रकोष | २७. उज्ज्वलवाणी |
| १०. अमिनगति-श्रावकाचार | २८. उत्तररामचरित |
| ११. अमूल्यशिक्षा | २९. उत्तराध्ययनसूत्र |
| १२. अष्टकप्रकरण-(वादाष्टक) | ३०. उद्भटसागर |
| १३. अष्टाङ्गहृदय | ३१. उद्द्वेग |
| १४. आइने-अकबरी | ३२. उपदेशतरंगिणी |
| १५. आकर्षणशक्ति | ३३. उपदेशप्रासाद |
| १६. आचाराग-चूर्ण | ३४. उपदेशमुमनमाला |
| १७. आचारागसूत्र | ३५. ऋग्वेद |
| १८. आचार्यशिवनारायण की
रिपोर्ट | ३६. ऋषिभाषित |
| | ३७. ऐतरेयब्राह्मण |
| | ३८. ओघनिर्युक्ति |
| | ३९. औपपातिकसूत्र |
| | ४०. कठोपनिषद् |

४१. कवामरिन्सागर
 ४२. कल्पतरु
 ४३. कल्याण—सत श्रोक
 ४४. कल्याण—वानकअक
 ४५. महावने—
 (क) अफ्रीजी महावत
 (ख) टटानियन "
 (ग) इरानी "
 (घ) डू "
 (ङ) गृजराती "
 (च) चीनी "
 (छ) जापानी "
 (ज) पंजाबी "
 (झ) पाञ्ची "
 (ञ) बंगला "
 (ट) मराठी "
 (ठ) राजस्थानी "
 (ड) मद्रास "
 (ण) सिन्धी "
 ४६. कालसयनमुनि
 ४७. विमानाभुंजीय
 ४८. विमानसयनी
 ४९. कुमारमम
 ५०. कालसयनीय
 ५१. विमानसयनीय
 ५२. विमानसयनीय
 ५३. विमानसयनीय
५४. गरुडरवाद
 ५५. गरुडमुखा
 ५६. गीता (श्रीमद्भगवद्गीता)
 ५७. गुणसयनीय
 ५८. घटसयनीय का नीतिमार
 ५९. चन्द्रचरित (मैन्कुन)
 ६०. चन्द्रचरित
 ६१. चन्द्रचरित
 ६२. चाणक्यनीति
 ६३. चाणक्यनीति
 ६४. छान्दोग्य-उपनिषद्
 ६५. जात
 ६६. जीवन्मुक्त्य
 ६७. जैन पापद्वय चरित
 ६८. जैन-भारती
 ६९. जैनविज्ञान-दीपिका
 ७०. ज्ञानप्रकाश
 ७१. ज्ञानाण्ड
 ७२. ज्ञानसूत्र
 ७३. ज्ञानसूत्र
 ७४. ज्ञानसूत्र (विश्वप्रकाश)
 ७५. ज्ञानसूत्र-उपनिषद्
 (संस्कृत-विज्ञान)
 ७६. ज्ञानसूत्र-विज्ञान
 ७७. ज्ञानसूत्र
 ७८. ज्ञानसूत्र-उपनिषद्
 ७९. ज्ञानसूत्र-उपनिषद्

८०. धेरगाथा
 ८१. दक्षस्मृति
 ८२. दशकुमारचरित्र
 ८३. दशवैकालिकचूलिका
 ८४. दशवैकालिक-निर्युक्ति
 ८५. दशवैकालिकमूत्र
 ८६. दशाश्रुतस्कन्ध
 ८७. दीघनिकाय
 ८८. दृष्टान्तगतक
 ८९. देवीभागवत
 ९०. देग-विदेग की अनोखी
 प्रथाएं
 ९१. दोहा-द्विशती
 ९२. दोहा-संदोह
 ९३. धम्मपद
 ९४. धर्मकल्पद्रुम
 ९५. धर्म के नाम पर
 ९६. धर्मयुग (साप्ताहिक)
 ९७. नन्दीटीका
 ९८. नलत्रिलास
 ९९. नवभारत टाइम्स (दैनिक)
 १००. नालन्दा-विशालशब्दसागर
 १०१. नियमसार
 १०२. त्रिगीय-भाष्य
 १०३. त्रिचयपञ्चाशत्
 १०४. नीतिवाक्यामृत
 १०५. नीतिशास्त्र
१०६. नैपथीयचरित्र (नैपथ)
 १०७. न्युयार्क ट्रिब्यून हेराल्ड
 १०८. पंचतत्र
 १०९. परमात्म-द्वात्रिंशिका
 ११०. परागरस्मृति
 १११. पहेलवी टैक्स्ट्स
 ११२. पातजलयोगदर्शन
 ११३. प्रकरणरत्नाकर
 ११४. प्रज्ञापना
 ११५. प्रशमरति
 ११६. प्रसंगरत्नावली
 ११७. प्रास्ताविकश्लोकगतक
 ११८. बृहल्कल्पभाष्य
 ११९. बृहल्कल्प-सूत्र
 १२०. बृहदारण्यकोपनिषद्
 १२१. बृहन्नारदीय-पुराण
 १२२. बृहस्पतिस्मृति
 १२३. वाडविल
 १२४. ब्रह्मवैवर्त पुराण
 १२५. ब्रह्मानन्दगीता
 १२६. भक्तिमूत्र
 १२७. भक्तामर-विवृति
 १२८. भगवतीसूत्र
 १२९. भर्तृहरि-नीतिशतक
 १३०. भर्तृहरि-त्रैराग्यशतक
 १३१. गारुड
 १३२. गारुड

१३३. भारतेनज्ञान-कोष	१७७. योगवादिनिष्ठ
१३४. भारतीय अर्थशास्त्र	१७८. योगशास्त्र
१३५. भाषानन्दोक्तनागर	१४६. योगशिवोपनिषद्
१३६. भोज प्रवन्ध	१६०. योगशास्त्र
१३७. मज्झिमनिकाय	१६१. गृध्रवंश
१३८. मनुस्मृति	१६२. रश्मिमान्ना
१३९. मनोनुद्यानन	१६३. राजप्रसन्नोपबृध
१४०. मरुजायन्ती	१६४. रामचरितमानस
१४१. महाभारत	१६५. लघुयोगवादिनिष्ठमात्र
१४२. मारवाणो-भजनमान्ना	१६६. लघुसायवृत्ति
१४३. भित्तनाम निर्माणन रचना (मद्रसी धर्मशास्त्र)	१६७. लूका (वाल्डविन)
१४४. वृत्तिकोपनिषद्	१६८. लोकप्रदाय
१४५. मृग्योपनिषद्	१६९. लोकोक्तिगां—
१४६. मद्राशासनसंहिता	(क) अरुची लोकोक्ति
१४७. मुनिश्रीजयगीमवती का मण्ड	(ख) नेक ..
१४८. मुन्दकसंहिता	(ग) लैटिन ..
१४९. भण्डवत	(घ) लोनिप ..
१५०. मोक्षशास्त्र	१७०. सामु पुत्राण
१५१. मनुष्येऽ	१७१. वान्मोहितराजायन
१५२. वाङ्मयनस्मृति	१७२. विद्वान्मोक्षोप-नाटिका
१५३. वाचस्पतिविरचितं P R O (मद्रसी धर्मशास्त्र)	१७३. विनिद्रा (सैमानिक)
१५४. सु. एन. ऐनोप्राप्तिर उग्र	१७४. विद्वान् के लिये आरिष्कार
सु. एन. ११. मण्ड ११.१० ७१	१७५. विद्वान्मोक्ष
१५५. सु. एन. पी. १०. १०. १०	१७६. विवेकचक्रमणि
१५६. मोक्षशास्त्र	१७७. विषेष्टविद्याम
	१७८. विषेष्टावस्था
	१७९. विद्वान्मोक्ष

८०. धेरगाथा
 ८१. दक्षस्मृति
 ८२. दशकुमारचरित्र
 ८३. दशवैकालिकचूलिका
 ८४. दशवैकालिक-निर्युक्ति
 ८५. दशवैकालिकसूत्र
 ८६. दशाश्रुतस्कन्ध
 ८७. दीघनिकाय
 ८८. दृष्टान्तशतक
 ८९. देवीभागवत
 ९०. देश-विदेश की अनोखी
 प्रथाएं
 ९१. दोहा-द्विशती
 ९२. दोहा-सदोह
 ९३. धम्मपद
 ९४. धर्मकल्पद्रुम
 ९५. धर्म के नाम पर
 ९६. धर्मयुग (साप्ताहिक)
 ९७. नन्दीटीका
 ९८. नलविलास
 ९९. नवभारत टाइम्स (दैनिक)
 १००. नालन्दा-विशालशब्दसागर
 १०१. नियमसार
 १०२. निशीथ-भाष्य
 १०३. निश्चयपञ्चाशत्
 १०४. नीतिवाक्यामृत
 १०५. नीतिसार
 १०६. नैपथीयचरित्र (नैपथ)
 १०७. न्युयार्क ट्रिब्यून हेराल्ड
 १०८. पंचतत्र
 १०९. परमात्म-द्वित्रिशिका
 ११०. पराशरस्मृति
 १११. पहेलवी टैक्स्ट्स
 ११२. पातजलयोगदर्शन
 ११३. प्रकरणरत्नाकर
 ११४. प्रज्ञापना
 ११५. प्रशमरति
 ११६. प्रसंगरत्नावली
 ११७. प्रास्ताविकश्लोकशतक
 ११८. बृहलकल्पभाष्य
 ११९. बृहलकल्प-सूत्र
 १२०. बृहदारण्यकोपनिषद्
 १२१. बृहन्नारदीय-पुराण
 १२२. बृहस्पतिस्मृति
 १२३. वाइविल
 १२४. ब्रह्मवैवर्त पुराण
 १२५. ब्रह्मानन्दगीता
 १२६. भक्तिमूत्र
 १२७. भक्तामर-विवृति
 १२८. भगवतीसूत्र
 १२९. भर्तृहरि-नीतिशतक
 १३०. भर्तृहरि-वैराग्यशतक
 १३१. भर्तृहरि-शृंगारशतक
 १३२. भवभूति के गुणरत्न

१८०. विश्वदर्पण
 १८१. वीरभर्जुन
 १८२. वेद
 १८३. वेदान्तदर्शन
 १८४. व्यवहारभाष्य
 १८५. व्याख्यान का मसाला
 १८६. व्यासस्मृति
 १८७. व्रताव्रत की चौपाई
 १८८. शंकरप्रश्नोत्तरी
 १८९. शतपथ ब्राह्मण
 १९०. गान्तमुधारस
 १९१. शाङ्खधर
 १९२. शिशुपालवध
 १९३. शुक्रनीति
 १९४. सुश्रुत
 १९५. श्राद्धविधि
 १९६. श्रीमद्भागवत (भागवत)
 १९७. श्री विलक्षणअवधूत-स्वरो-
 दयवग
 १९८. श्वेताश्वतरोपनिषद्
 १९९. संयुक्तनिकाय
 २००. सवेगद्रुमकन्दली
 २०१. सभातरंग
 २०२. समयसार
 २०३. समवायागसूत्र
 २०४. समाधिगतक
 २०५. सरलमनोविज्ञान
 २०६. सरिता
 २०७. सर्वयाशतक
 २०८. सहलतस्तरी
 २०९. सांख्यकारिका
 २१०. सामायिकसूत्र
 २११. सिन्दूर प्रकरण
 २१२. सुभाषितरत्नखण्ड-मंजूषा
 २१३. सुभाषितरत्न-भाण्डागार
 २१४. सुभाषित सचय
 २१५. सूक्तरत्नावलि
 २१६. सूत्रकृतांगसूत्र
 २१७. सोरठा-संग्रह
 २१८. सोवियत भूमि
 २१९. स्कन्धपुराण
 २२०. स्थानागसूत्र
 २२१. स्याद्वादमंजरी
 २२२. स्वरशास्त्र
 २२३. हजरत बुखारी और मुस्लिम
 २२४. हठयोगप्रदीपिका
 २२५. हरितस्मृति
 २२६. हपंचरित
 २२७. हितोपदेश
 २२८. हिन्दी मिलाप (दैनिक)
 २२९. हिन्दुस्तान (दैनिक)
 २३०. हिन्दुस्तान (साप्ताहिक)

